हिन्दी उपन्यास शिल्प और प्रयोग

(Hindi Novel Craft and Experiment)

कीर्ति शिखर

हिन्दी उपन्यास : शिल्प और प्रयोग

हिन्दी उपन्यास : शिल्प और प्रयोग

(Hindi Novel Craft and Experiment)

कीर्ति शिखर

भाषा प्रकाशन

नई दिल्ली - 110002

© प्रकाशक

I.S.B.N. : 978-81-323-5623-3

प्रथम संस्करण : 2021

भाषा प्रकाशन

22, प्रकाशदीप बिल्डिंग, अंसारी रोड,
दरियागंज, नई दिल्ली - 110002

द्वारा वर्ल्ड टेक्नोलॉजीज नई दिल्ली के सहयोग से प्रकाशित

प्रस्तावना

उपन्यास साधारण जीवन के समानान्तर चलने का पूरा प्रयत्न करता है। इसीलिए यह शिल्प के अनुशासन को, अन्य साहित्यिक विधाओं की भाँति, अधिक स्वीकार नहीं करता। इसमें कथा के प्रसार की छूट है, यहाँ वर्णन-चित्रण की निश्चित परिपाटी नहीं है और पात्रों तथा परिच्छेदों की संख्या या आकार-प्रकार पर किसी तरह की रोक-टोक नहीं है। यह जीवन की भांति समस्या पकड़ता है, उसी के अनुरूप अपना रूप ग्रहण कर लेता है। उसके अनुसार ही इसके आकार तथा तत्त्वों का विकास होता है। इसका शिल्प लचीला है। अपने लचीलेपन के कारण जीवन को सही और अधिकतम व्यक्त करने के लिए आवश्यकतानुसार, उपन्यास समय-समय पर अन्य अनेक सहयोगी विधाओं के गुणों को अपनाता चलता है। यह नाटक, इतिहास, जीवनी तथा निबन्ध की मूल विशेषताओं को यथावसर सहज भाव से ग्रहण कर लेता है।

उपन्यास पात्रों के मनोभावों को प्रखर करने के लिए नाटकीयता का आश्रय लेता है, प्रत्यक्षीकरण करता है। वह इतिहासकार की भाँति, वातावरण बनाने वाली, सामाजिक शक्तियों का अंकन करता है और जीवनी-लेखक की भाँति पात्रों के कृतित्त्व को उभारता है। इन सबके साथ उपन्यासकार निज की क्षमता भी लेकर चलता है और वह है-संवेदनात्मक कल्पना। वह पात्रों के परिवेश और उनकी गतिविधि तक सीमित न रहकर, आगे बढ़कर उनके मन के भीतर झाँकता है। जीवन में उसने जो भोगा और अनुभव किया है, जो स्वाभाविक और सहज

है, उसी के आधार पर वह पात्रों के अन्तर को उद्‌घाटित करता है। अपनी असाधारण अनुभव-क्षमता के बल पर पात्रों की नित्य सत्ता के मर्म को गोचर करना उपन्यासकार की अपनी विशेषता है।

उपन्यास के निहित काल की तीन कोटियाँ हैं। कभी उपन्यासकार काल का उल्लेख-मात्र करता है, अथवा कालान्तर में जो घटा है, उसका सार वर्णन करता है। कभी वह काल-गति के साथ पात्रों की गतिविधि का चित्रण करता है और कभी कालक्रम को पीछे छोड़ पात्रों की गहन चेतना में प्रवेश करता है। ये तीनों काल-कोटियाँ क्रमशः स्थूल से सूक्ष्म की ओर जाती हैं। इनको यदि हम सितार के तीन तार मान लें, तो इन्हीं पर आवश्यकतानुसार उँगलियाँ फेरकर कुशल उपन्यासकार रचना के गति-बोध (टेम्पो) को नियंत्रित करता है। तीसरे तार-मनोगत काल-में सबसे अधिक गूँज है। पात्रों के मनोगत काल के संकोच या प्रसार के कौशल में उपन्यासकार का रचयिता अपनी सामर्थ्य का परिचय देता है। इसके निपुण नियंत्रण से वह उपन्यास के पठन-काल को प्रभावित करता है। मनोगत काल की संवेदन क्षमता के अनुसार पाठक कभी उपन्यास में तन्मय हो जाता है, कभी रुक-रुककर पढ़ता है और कभी किसी अंश को बार-बार पढ़ता है।

पुस्तक लेखन में कई लिखित व अलिखित स्रोतों से मदद ली गई है; मैं उन सभी विज्ञ लेखकों के प्रति अपना आभार प्रकट करता हूँ। आशा करता हूँ कि पुस्तक पाठकों के लिए उपयोगी होगी।

–लेखक

अनुक्रम

	प्रस्तावना	*v*
1.	**विषय बोध**	**1**
	उपन्यास शब्द : व्याख्या एवं अर्थ	7
	भाषा शैली	9
	जीवन दर्शन व उद्देश्य	10
	प्रेमचन्दोत्तर युग	28
	उपन्यास के तत्त्व	34
	देशकाल-वातावरण	37
	भाषा-शैली	39
	हिंदी उपन्यास की आरम्भिक आलोचना	40
2.	**देवकीनन्दन खत्री**	**49**
	जीवनी	49
	व्यवसाय की शुरुआत	50
	चन्द्रकान्ता	50
	प्रमुख रचनाएँ	51
	चंद्रकान्ता की लेखन शैली	53
3.	**कलम के सिपाही मुंशी प्रेमचंद**	**55**
	जीवन परिचय	56

साहित्यिक जीवन 58
साहित्य की विशेषताएँ 60
रचनाओं की रूपरेखा 65
ईश्वर के प्रति आस्था 70
रूढ़िवाद का विरोध 71
उपन्यास का सारांश 72
कर्मभूमि 102
कथानक 106
4. रांगेय राघव 115
जीवन परिचय 115
कार्यक्षेत्र 116
सृजन-यात्रा 116
हिंदी के शेक्सपीयर 117
साहित्य की साधना 117
जानपील सिगरेट 118
रांगेय राघव की कृतियाँ 120
रांगेय राघव की कहानी कला 124
5. जयशंकर प्रसाद 126
कृतियाँ 127
कहानी संग्रह 129
बहुमुखी प्रतिभा 131
छायावाद की स्थापना 135
कंकाल 136
इरावती 146
6. यशपाल 149
जीवनी 149
अंग्रेजी राज और यशपाल जी 150
यशपाल के उपन्यासों में नारी चेतना 159
दादा कामरेड 160
दिव्या 161

अमिता 168
7. अमृतलाल नागर 174
जीचन परिचय 176
8. गौरा पंत 'शिवानी' 182
जीवन परिचय 183
कार्यक्षेत्र 184
लेखन की शुरुआत 184
प्रमुख रचनाएँ 185
शिवानी की रचनाएँ 185
समाकालीन साहित्यकारों की राय 186

1

विषय बोध

उपन्यास की परिभाषा देते हुए उसे गद्यबद्ध कथानक के माध्यम द्वारा जीवन तथा समाज की व्याख्या का सर्वोत्तम साधन बताया है। यों तो विश्वसाहित्य का प्रारंभ ही संभवत: कहानियों से हुआ और वे महाकाव्यों के युग से आज तक के साहित्य का मेरुदंड रही हैं, फिर भी उपन्यास को आधुनिक युग की देन कहना अधिक समीचीन होगा। साहित्य में गद्य का प्रयोग जीवन के यथार्थ चित्रण का द्योतक है। साधारण बोलचाल की भाषा द्वारा लेखक के लिए अपने पात्रों, उनकी समस्याओं तथा उनके जीवन की व्यापक पृष्ठभूमि से प्रत्यक्ष संबंध स्थापित करना आसान हो गया है। जहाँ महाकाव्यों में कृत्रिमता तथा आदर्शोन्मुख प्रवृत्ति की स्पष्ट झलक देखने को मिलती है, आधुनिक उपन्यासकार जीवन की विशृंखलताओं का नग्न चित्रण प्रस्तुत करने में ही अपनी कला की सार्थकता देखता है।

यथार्थ के प्रति आग्रह का एक अन्य परिणाम यह हुआ कि कथा साहित्य के अपौरुषेय तथा अलौकिक तत्त्व, जो प्राचीन महाकाव्यों के विशिष्ट अंग थे, पूर्णतया लुप्त हो गए। कथाकार की कल्पना अब सीमाबद्ध हो गई। यथार्थ की परिधि के बाहर जाकर मनचाही उड़ान लेना उसके लिए प्राय: असंभव हो गया। उपन्यास का आविर्भाव और विकास वैज्ञानिक प्रगति के साथ हुआ। एक ओर जहाँ विज्ञान ने व्यक्ति तथा समाज को सामन्य धरातल से देखने तथा चित्रित करने की प्रेरणा दी वहीं दूसरी ओर उसने जीवन की समस्याओं के प्रति एक

नए दृष्टिकोण का भी संकेत किया। यह दृष्टिकोण मुख्यतः बौद्धिक था। उपन्यासकार के ऊपर कुछ नए उत्तरदायित्व आ गए थे। अब उसकी साधना कला की समस्याओं तक ही सीमित न रहकर व्यापक सामाजिक जागरूकता की अपेक्षा रखती थी। वस्तुतः आधुनिक उपन्यास सामाजिक चेतना के क्रमिक विकास की कलात्मक अभिव्यक्ति है। जीवन का जितना व्यापक एवं सर्वांगीण चित्र उपन्यास में मिलता है उतना साहित्य के अन्य किसी भी रूप में उपलब्ध नहीं।

सामाजिक जीवन की विशद व्याख्या प्रस्तुत करने के साथ ही साथ आधुनिक उपन्यास वैयक्तिक चरित्र के सूक्ष्म अध्ययन की भी सुविधा प्रदान करता है। वास्तव में उपन्यास की उत्पत्ति की कहानी यूरोपीय पुनरुत्थान (रेनैसाँ) के फलस्वरूप अर्जित व्यक्तिस्वातंत्र्य के साथ लगी हुई है। इतिहास के इस महत्वपूर्ण दौर के उपरांत मानव को, जो अब तक समाज की इकाई के रूप में ही देखा जाता था, वैयक्तिक प्रतिष्ठा मिली। सामंतवादी युग के सामाजिक बंधन ढीले पड़े और मानव व्यक्तित्त्व के विकास के लिए उन्मुक्त वातावरण मिला। यथार्थोन्मुख प्रवृत्तियों ने मानव चरित्र के अध्ययन के लिए भी एक नया दृष्टिकोण दिया। अब तक के साहित्य में मानव चरित्र के सरल वर्गीकरण की परंपरा चली आ रही है। पात्र या तो पूर्णतया भले होते थे या एकदम गए गुजरे। अच्छाइयों और त्रुटियों का सम्मिश्रण, जैसा वास्तविक जीवन में सर्वत्र देखने को मिलता है, उस समय के कथाकारों की कल्पना के परे की बात थी। उपन्यास में पहली बार मानव चरित्र के यथार्थ, विशद् एवं गहन अध्ययन की संभावना देखने को मिली।

अंग्रेजी के महान उपन्यासकार हेनरी फील्डिंग ने अपनी रचनाओं को गद्य के लिखे गए व्यंग्यात्मक महाकाव्य की संज्ञा दी। उन्होंने उपन्यास की इतिहास से तुलना करते हुए उसे अपेक्षाकृत अधिक महत्वपूर्ण कहा। जहाँ इतिहास कुछ विशिष्ट व्यक्तियों एवं महत्वपूर्ण घटनाओं तक ही सीमित रहता है, उपन्यास प्रदर्शित जीवन के सत्य, शाश्वत और सर्वदेशीय महत्व रखते हैं। साहित्य में आज उपन्यास का वस्तुतः वही स्थान है जो प्राचीन युग में महाकाव्यों का था। व्यापक सामाजिक चित्रण की दृष्टि से दोनों में पर्याप्त साम्य है। लेकिन जहाँ महाकाव्यों में जीवन तथा व्यक्तियों का आदर्शवादी चित्र मिलता है, उपन्यास, जैसा फील्डिंग की परिभाषा से स्पष्ट है, समाज की आलोचनात्मक व्याख्या प्रस्तुत करता है। उपन्यासकार के लिए कहानी साधन मात्र है, साध्य नहीं। उसका ध्येय

पाठकों का मनोरंजन मात्र भी नहीं। वह सच्चे अर्थ में अपने युग का इतिहासकार है जो सत्य और कल्पना दोनों का सहारा लेकर व्यापक सामाजिक जीवन की झाँकी प्रस्तुत करता है।उपन्यास विशद गद्य-कथा है। यह कथा साधारण जीवन जैसी है पर गति में प्रखर है और इसके पात्र मनुष्य सरीखे होकर भी विलक्षण होते हैं। साधारण जीवन में बृहदता है, बिखराव है और कार्य-कारण-सम्बन्ध अस्पष्ट-सा है। उपन्यास में व्यक्त-जीवन अनुभूत और विश्लेषित होता है।

मनुष्य जीवन जीता है, अकेला नहीं दूसरों के साथ। कभी वह दूसरों से सहयोग करता है और कभी असहयोग। कभी उसकी संगति समाज से नहीं बैठती और कभी अपने मन से। इन उलझनों से उसके जीवन में गतिरोध उत्पन्न होता है। गतिरोध को दूर करने के लिए उसे विशेष गतिशील होना पड़ता है। उपन्यास मुख्यत: जीवन के ऐसे पक्ष को या ऐसे गतिमय जीवन को उभारता है। उपन्यास में जीवन की उलझन की चुनौती है और पात्रों के पुरुषार्थ की गति है। ऐसा जीवन, उपन्यास में काल के व्यायाम में फैलकर कथा बनता है और पात्रों का चरित्र उद्‌घाटित करता चलता है।

उपन्यास साधारण जीवन के समानान्तर चलने का पूरा प्रयत्न करता है। इसीलिए यह शिल्प के अनुशासन को, अन्य साहित्यिक विधाओं की भाँति, अधिक स्वीकार नहीं करता। इसमें कथा के प्रसार की छूट है, यहाँ वर्णन-चित्रण की निश्चित परिपाटी नहीं है और पात्रों तथा परिच्छेदों की संख्या या आकार-प्रकार पर किसी तरह की रोक-टोक नहीं है। यह जीवन की भांति समस्या पकड़ता है, उसी के अनुरूप अपना रूप ग्रहण कर लेता है। उसके अनुसार ही इसके आकार तथा तत्त्वों का विकास होता है। इसका शिल्प लचीला है। अपने लचीलेपन के कारण जीवन को सही और अधिकतम व्यक्त करने के लिए आवश्यकतानुसार, उपन्यास समय-समय पर अन्य अनेक सहयोगी विधाओं के गुणों को अपनाता चलता है। यह नाटक, इतिहास, जीवनी तथा निबन्ध की मूल विशेषताओं को यथावसर सहज भाव से ग्रहण कर लेता है।

नाटक, इतिहास और जीवनी, तीनों रचनाएँ जीवन के प्रसार को काल के आयाम में प्रस्तुत करती हैं। नाटक कालगति का अनुसरण करके भी उसे देश-विशेष में बाँधकर, पात्रों के मनोभाव को सामाजिकों के समक्ष अधिकाधिक मूर्त करने का प्रयत्न करता है। उसमें प्रत्यक्षीकरण और सम्प्रेषणीयता के तत्त्व प्रधान रहते हैं। इतिहास में राष्ट्र या समाज की विविध शक्ति-धाराओं की पारम्परिक क्रिया-प्रतिक्रिया का आख्यान रहता है। वह अपने वर्णन में व्यक्ति को

स्वतंत्र महत्त्व नहीं देता। व्यक्ति को महत्व देती है जीवनी और वहाँ पृष्ठभूमि में रहता है राष्ट्र या समाज। इस प्रकार, व्यक्ति के गहन और समाज के विशद जीवन को प्रस्तुत करने में जीवनी तथा इतिहास, आपस में पूरक हैं। ये दोनों, प्राप्त तथ्यों के आधार पर अपने वर्ण्य विषय का रूप खड़ा करते हैं। साक्ष्यों से ये निष्कर्ष निकालते हैं, पर अनुमान से बचते हैं और कल्पना के आधार पर व्यक्तित्त्व या परिस्थिति का चित्रण करना इनके क्षेत्र में निषिद्ध है।

उपन्यास पात्रों के मनोभावों को प्रखर करने के लिए नाटकीयता का आश्रय लेता है, प्रत्यक्षीकरण करता है। वह इतिहासकार की भाँति, वातावरण बनाने वाली, सामाजिक शक्तियों का अंकन करता है और जीवनी-लेखक की भाँति पात्रों के कृतित्त्व को उभारता है। इन सबके साथ उपन्यासकार निज की क्षमता भी लेकर चलता है और वह है-संवेदनात्मक कल्पना। वह पात्रों के परिवेश और उनकी गतिविधि तक सीमित न रहकर, आगे बढ़कर उनके मन के भीतर झाँकता है। जीवन में उसने जो भोगा और अनुभव किया है, जो स्वाभाविक और सहज है, उसी के आधार पर वह पात्रों के अन्तर को उद्घाटित करता है। अपनी असाधारण अनुभव-क्षमता के बल पर पात्रों की नित्य सत्ता के मर्म को गोचर करना उपन्यासकार की अपनी विशेषता है।

पात्रों के भीतरी-बाहरी जगत को प्रस्तुत करते हुए उपन्यासकार इनके विषय में जो धारणा बनाता है, उसे वह निबन्ध द्वारा संजोता है। निबन्ध का कार्य है जीवन के अनुभव और अनुभूति को विचार-रूप में बाँधना। निबन्ध में नाटक, इतिहास तथा जीवनी की भाँति कालगति का अनुकरण नहीं है, यह तो उस गति का परिणाम है। उपन्यास जीवन का काल के आयाम में चित्रण करते हुए निबन्धकार की भाँति, उसके शेष अविचल प्रभाव को भी अंकित करता है।

प्रश्न उठ सकता है, महाकाव्य की विशद कथा है, उसमें भी युग-चित्रण और पात्रों का चरित्र रहता है, फिर उपन्यास और महाकाव्य में अन्तर क्या है? क्या केवल इतना ही अन्तर है कि महाकाव्य पद्य-कथा है और उपन्यास गद्य-कथा? नहीं, दोनों की जीवन सम्बन्धी दृष्टि में मूल भेद है। महाकाव्य में कवि जीवन को प्रस्तुत नहीं करता, वरन जीवन सम्बन्धी अपनी प्रबल अनुभूति को व्यक्त करता है। उसकी सघन अनुभूति का अनुशासन पूरी रचना पर रहता है और जो जीवन उसके अन्तर्गत आता है, वह विशिष्ट और प्रतीकात्मक होता है। महाकाव्य कथा के सुनिर्मित ढाँचे और पात्रों के सुनिश्चित स्वरूप को साधन रूप में ग्रहण करता है। उपन्यास में स्थिति भिन्न है।

उपन्यास में भी विशद कथा है, समाज का चित्रण है और पात्रों का चरित्र है। किन्तु यहाँ उपन्यासकार का उद्देश्य अपनी घनीभूत भावना को नहीं, साक्षात जीवन को प्रस्तुत करना है। उसकी सफलता इसी में है कि वह परोक्ष रहकर पात्रों और कथा को स्वत: विकसित होने दे। पात्र जितने स्वतंत्र और स्वत: स्फूर्त होंगे, उतने ही वे उपन्यास के लिए उपयोगी होंगे। पात्रों की स्वायत्त सत्ता को उभारना उपन्यास का परम उद्देश्य है। उपन्यास का जीवन महाकाव्य की भाँति प्रतीकात्मक नहीं, यथार्थ होता है। तात्पर्य है, उपन्यासकार को जीवन जैसा दीखता और अनुभूत होता है, वह उसे वैसा ही ब्योरेवार चित्रित करने का प्रयत्न करता है। वह जीवन के बनावश्रृंगार की अपेक्षा उसके निरीक्षण और विस्तार पर अधिक बल देता है। उसका निरन्तर प्रयत्न रहता है कि प्रस्तुत किया गया जीवन अधिक से अधिक विश्वसनीय बन पड़े।

उपन्यास के निहित काल की तीन कोटियाँ हैं। कभी उपन्यासकार काल का उल्लेख-मात्र करता है, अथवा कालान्तर में जो घटा है, उसका सार वर्णन करता है। कभी वह काल-गति के साथ पात्रों की गतिविधि का चित्रण करता है और कभी कालक्रम को पीछे छोड़ पात्रों की गहन चेतना में प्रवेश करता है। ये तीनों काल-कोटियाँ क्रमश: स्थूल से सूक्ष्म की ओर जाती हैं। इनको यदि हम सितार के तीन तार मान लें, तो इन्हीं पर आवश्यकतानुसार उँगलियाँ फेरकर कुशल उपन्यासकार रचना के गति-बोध (टेम्पो) को नियंत्रित करता है। तीसरे तार-मनोगत काल-में सबसे अधिक गूँज है। पात्रों के मनोगत काल के संकोच या प्रसार के कौशल में उपन्यासकार का रचयिता अपनी सामर्थ्य का परिचय देता है। इसके निपुण नियंत्रण से वह उपन्यास के पठन-काल को प्रभावित करता है। मनोगत काल की संवेदन क्षमता के अनुसार पाठक कभी उपन्यास में तन्मय हो जाता है, कभी रुक-रुककर पढ़ता है और कभी किसी अंश को बार-बार पढ़ता है।

पात्रों के मनोगत काल की सूक्ष्म पकड़ करने वाले उपन्यास पाठकों की चेतना को अपने अनुरूप ढालने की क्षमता रखते हैं। ये उपन्यास आकार में बड़े या छोटे कैसे ही हों, पाठक को मानो जकड़ लेते हैं और पाठक की मंत्रमुग्ध चेतना अपने वास्तविक जीवन और उपन्यास में निहित जीवन की सीमा-रेखाओं का उल्लंघन कर, दोनों के बीच डूबने लगती है। पाठक कभी अपने जीवन के अनुभवों से उपन्यास के जीवन को आँकने लगता है और कभी उपन्यास के जीवन की संवेदना उसके साधारण व्यावहारिक जीवन को प्रभावित करने लगती है।

उपन्यास गद्य लेखन की एक विधा है। अर्नेस्ट ए. बेकर ने उपन्यास की परिभाषा देते हुए उसे गद्यबद्ध कथानक के माध्यम द्वारा जीवन तथा समाज की व्याख्या का सर्वोत्तम साधन बताया है। यों तो विश्वसाहित्य का प्रारंभ ही संभवतः कहानियों से हुआ और वे महाकाव्यों के युग से आज तक के साहित्य का मेरुदंड रही हैं, फिर भी उपन्यास को आधुनिक युग की देन कहना अधिक समीचीन होगा। साहित्य में गद्य का प्रयोग जीवन के यथार्थ चित्रण का द्योतक है। साधारण बोलचाल की भाषा द्वारा लेखक के लिए अपने पात्रों, उनकी समस्याओं तथा उनके जीवन की व्यापक पृष्ठभूमि से प्रत्यक्ष संबंध स्थापित करना आसान हो गया है। जहाँ महाकाव्यों में कृत्रिमता तथा आदर्शोन्मुख प्रवृत्ति की स्पष्ट झलक देखने को मिलती है, आधुनिक उपन्यासकार जीवन की विशृंखलताओं का नग्न चित्रण प्रस्तुत करने में ही अपनी कला की सार्थकता देखता है।

यथार्थ के प्रति आग्रह का एक अन्य परिणाम यह हुआ कि कथा साहित्य के अपौरुषेय तथा अलौकिक तत्त्व, जो प्राचीन महाकाव्यों के विशिष्ट अंग थे, पूर्णतया लुप्त हो गए। कथाकार की कल्पना अब सीमाबद्ध होगा। यथार्थ की परिधि के बाहर जाकर मनचाही उड़ान लेना उसके लिए प्रायः असंभव हो गया। उपन्यास का आविर्भाव और विकास वैज्ञानिक प्रगति के साथ हुआ। एक ओर जहाँ विज्ञान ने व्यक्ति तथा समाज को सामान्य धरातल से देखने तथा चित्रित करने की प्रेरणा दी वहीं दूसरी ओर उसने जीवन की समस्याओं के प्रति एक नए दृष्टिकोण का भी संकेत किया। यह दृष्टिकोण मुख्यतः बौद्धिक था। उपन्यासकार के ऊपर कुछ नए उत्तरदायित्व आ गए थे। अब उसकी साधना कला की समस्याओं तक ही सीमित न रहकर व्यापक सामाजिक जागरूकता की अपेक्षा रखती थी। वस्तुतः आधुनिक उपन्यास सामाजिक चेतना के क्रमिक विकास की कलात्मक अभिव्यक्ति है। जीवन का जितना व्यापक एवं सर्वांगीण चित्र उपन्यास में मिलता है, उतना साहित्य के अन्य किसी भी रूप में उपलब्ध नहीं।

सामाजिक जीवन की विशद व्याख्या प्रस्तुत करने के साथ ही साथ आधुनिक उपन्यास वैयक्तिक चरित्र के सूक्ष्म अध्ययन की भी सुविधा प्रदान करता है। वास्तव में उपन्यास की उत्पत्ति की कहानी यूरोपीय पुनरुत्थान (रेनैसाँ) के फलस्वरूप अलजत व्यक्ति स्वातंत्र्य के साथ लगी हुई है। इतिहास के इस महत्वपूर्ण दौर के उपरांत मानव को, जो अब तक समाज की इकाई के रूप में ही देखा जाता था, वैयक्तिक प्रतष्ठा मिली। सामंतवादी युग के सामाजिक बंधन

ढीले पड़े और मानव व्यक्तित्त्व के विकास के लिए उन्मुक्त वातावरण मिला। यथार्थोन्मुख प्रवृत्तियों ने मानव चरित्र के अध्ययन के लिए भी एक नया दृष्टिकोण दिया। अब तक के साहित्य में मानव चरित्र के सरल वर्गीकरण की परंपरा चली आ रही है। पात्र या तो पूर्णतया भले होते थे या एकदम गए गुजरे। अच्छाइयों और त्रुटियों का सम्मिश्रण, जैसा वास्तविक जीवन में सर्वत्र देखने को मिलता है, उस समय के कथाकारों की कल्पना के परे की बात थी। उपन्यास में पहली बार मानव चरित्र के यथार्थ, विशद एवं गहन अध्ययन की संभावना देखने को मिली।

उपन्यास शब्द : व्याख्या एवं अर्थ

उप + न्यास = उपन्यास 2 शब्दों के मेल से बना है उप+ न्यास। अर्थात समय पर रखी हुई वस्तु जिसे पढ़कर ऐसा प्रतीत हो कि यह हमारी ही कहानी हो हमारे ही शब्दों में लिखी गई हो। इस विधा में मनुष्य के आसपास के वातावरण दृश्य और नायक आदि सभी मौजूद होते हैं।

उपन्यास का स्वरूप

उपन्यास शब्द उप तथा न्यास शब्दों के मेल से बना है, जिसका अर्थ है निकट रखी हुई वस्तु साहित्य के अनुसार उपन्यास वह कृति है जिसे पढ़कर ऐसा लगे कि यह हमारी ही है इसमें हमारे ही जीवन का प्रतिबिम्ब हमारी ही भाषा में प्रयुक्त किया जाता है।

न्चंदलें आधुनिक युग की देन है तथा इसका हमारी अन्तः व वाह्य जगत की जितनी यथार्थ एवं सुन्दर अभिव्यक्ति उपन्यास में दिखाई पड़ती है उतनी किसी अन्य विधा में नहीं। इसमें युग विशेष के सामाजिक जीवन और जगत की झाँकियाँ संजोई जाती है, मनोवैज्ञानिक सबसे मार्मिक अभिव्यक्ति भी उपन्यास साहित्य में मिलती है।

उपन्यास के द्वारा लेखक पाठक के सामने अपने हृदय की कोई विशेष बात का कोई नवीन मत या विचार प्रस्तुत करना चाहता है,साहित्य के जितने रूप विधान होते है, उनमे उपन्यास का रूप विधान सर्वाधिक लचीला है, वह परिस्थिति के अनुसार कोई भी रूप धारण कर लेता है, इसलिए इसमें एक दिन एक वर्ष या एक युग की कथा भी रह हो सकती है।

इसमें घटनाये कैसी भी हो परन्तु उसमे तारतम्य सम्बन्ध अवश्य होता है प्रेमचंद ने उपन्यास को "मानव चरित्र का चित्र कहा है।"

उपन्यास के तत्त्व

कथा वास्तु उपन्यास का प्राण होता है, इसकी कथावस्तु जीवन से सम्बन्धित होते हुये भी अधिकतर काल्पनिक होते है, किन्तु काल्पनिक कथानक स्वाभाविक एवं यथार्थ प्रतीत हो अन्यथा पाठक उसके साथ तादात्म्य (ताल –मेल) नहीं कर सकता ध्यायेगा। उपन्यासकार को यथार्थ जीवन से सम्बन्धित केवल विश्वसनीय और सम्भव घटनाओं काो ही अपनी रचनाओं में स्थान देना चाहिए।

इसमें एक कथा मुख्य होती है तथा अन्य कथाएँ गौण है जो की मुख्य कथा को गति देती रहती है, किन्तु गौण कथा मुख्य कथा की सहायक तथा विकास करने वाली होनी चाहिए इसके लिए उसमे गठन निविति का होना आवश्यक है। तात्पर्य यह है की मुख्य और प्रासंगिक कथाये परस्पर सम्बन्ध कौतुहल और रोचकता के साथ–साथ संगठन भी अनिवार्य है upanyaas की सफलता इसी में है कि सभी घटनाये एक सूत्र में पिरोई हुई हो, तथा उनमे कारण शृंखला बंध जाए।

पात्र अवं चरित्र चित्रण

upanyaas का मुख्य विषय मानव और उसका चरित्र है उपन्यास में पात्रों का चरित्र –चित्रर्ण क्रियाकलापों के द्वारा होना चाहिए इसी में उपन्यास की सफलता है वैसे उपन्यासकार अपनी और से भी चरित्र चित्रर्ण करने में स्वतंत्र होता है उपन्यास में पात्र दो प्रकार के होते हैं प्रधान पात्र और गौण पात्र।

प्रधान पात्र

शुरू से लेकर अंत तक उपन्यास के कथानक को गति देते हैं लक्ष्य की और अग्रसर करते हैं। यह पात्र कथा के नायक होते हैं इन्हीं के इर्द–गिर्द संपूर्ण कथा चलती रहती है।

गौाण पात्र

प्रधान पात्रों को सहायक बनाकर आते हैं इसका कार्य कथानक को गति देना वातावरण की गंभीरता को काम करना वातावरण की सृष्टि करना तथा अन्य

पत्रों के चरित्र पर प्रकाश डालना भी होता है। बीच-बीच में उपस्थित होकर यह पात्र प्रधान पात्र अथवा कथावस्तु को गति देते रहते हैं। कभी यह हँसाने का कार्य करते हैं तो कभी दर्शकों का मनोरंजन करने के लिए उपस्थित होते हैं।

संवाद

संवादों का प्रयोग कथानक को गति देना नाटकीयता लाना पात्रों के चरित्र का उद्‌घाटन करना वातावरण की सृष्टि करना आदि कई उद्देश्यों से होता है। सम्बन्ध मुख्य रूप से कथोपकथन (संवाद) पात्रों के भावों विचरों संवेदनाओं मनोवृत्तिओं आदि को व्यक्त करने में सहायक होते है। कथोपकथन की कथा और विषय सम्बन्ध पात्रों के अनुकूल होनी चाहिए एक सफल उपन्यास के सफल कथोपकथन, कौतुहल, वर्धक नाटकीयता से पूर्ण स्भाविक होते हैं, उनमे मुश्किल नहीं होती है।

वातवरण

देशकाल वातावरण का निर्माण प्रत्येक upanyaas में आवश्यक है पाठक उपन्यास के युग और उसकी परिस्थिति से बहुत दूर होता है, उन्हें पूरी तरह समझने के लिए उसे उपन्यासकार के वर्णन का सहारा लेना पड़ता है इसीलिए पाठक के प्रति उपन्यासकार का दामित्व बढ़ जाता है।

भाषा शैली

upanyaas में वास्तु अभिव्यक्ति कला का विशेष महत्व होता है भाषा अभिव्यक्ति का माध्यम है और शैली उसके कथन का ढंग भाषा के द्वारा upanyaas कार पाठक तक सम्प्रेषण करता है।

अत: उसका सुबोध होना आवश्यक है ताकि पाठक लेखन के भावों एवं विचारों के साथ ही उसका साहित्य होना भी आवश्यक है उसमे अलंकार मुहावरे लोकोक्ति आदि का यथा स्थान प्रयोग होना चाहिए। कथावस्तु की अभिव्यक्ति की अनेक शैलियां हो सकती हैं, ऐतिहासिक उपन्यास अधिकतर कथ्यात्मक शैली में लिखे जाते हैं वर्तमान जीवन से सम्बन्धित upanyaas आत्मकथ्यात्मक शैली में अधिक सजीव हो सकते हैं इसके अतिरिक्त पूर्व दीप्ती डायरी शैली आदि का प्रयोग भी उपन्यास में किय जाता है।

जीवन दर्शन व उद्देश्य

हमारी गद्य साहित्य सृष्टि के पीछे कोई न कोई भारतीय मान्यता या उद्देश्य आदि आवश्यक होता है, एक अनुभवी उपन्यासकार का जीवन और जगत प्रति उसकी प्रत्येक समस्या के प्रति एक विशेष दृष्टिकोण होता है जो किसी न किसी रूप में उपन्यास के पात्रों व घटनाओ के माध्यम से अभिव्यक्ति पाते है, यही उपन्यासकार का उद्देश्य या अभिव्यक्ति जीवन दर्शन होता है। अतः इसकी अभिव्यक्ति शोषक ढंग से होनी चाहिए तभी वह प्रभावशाली सिद्ध होगा।

प्रथम उपन्यास

बाणभट्ट की कादम्बरी को विश्व का प्रथम उपन्यास माना जा सकता है। कुछ लोग जापानी भाषा में 1007 ई. में लिखा गया "जेन्जी की कहानी" नामक उपन्यास को दुनिया का सबसे पहला उपन्यास मानते हैं। इसे मुरासाकी शिकिबु नामक एक महिला ने लिखा था। इसमें 54 अध्याय और करीब 1000 पृष्ठ हैं। इसमें प्रेम और विवेक की खोज में निकले एक राजकुमार की कहानी है।

यूरोप का प्रथम उपन्यास सेर्वैन्टिस का "डोन क्विक्सोट" माना जाता है, जो स्पेनी भाषा का उपन्यास है। इसे सन् 1605 में लिखा गया था।

आधुनिक उपन्यास साहित्य रूप विधान का विकास यूरोप माना जाता है, किन्तु उससे पूर्व प्राचीन भारत में इस विधि का उल्लेख प्राप्त होता था, पंचतंत्र, हितोपदेश, वैताल पंचविंशति, वृहत् कथा मंजरी, वासवदत्ता, कादंबरी और दशकुमार चरित आदि के रूप में औपन्यासिकता का विकास हो चुका था। मराठी साहित्य में 'उपन्यास' का पर्यायवाची ही कादंबरी है। किन्तु यह उचित प्रतीत नहीं होता है।

यथार्थवादी दृष्टिकोण एवं शैली की स्वाभाविकता की दृष्टि से लाला श्रीनिवास दास कृत 'परीक्षा गुरु' को हिंदी का प्रथम मौलिक उपन्यास की श्रेणी में रखा जा सकता है। हिंदी में उपन्यास का आविर्भाव उन्नीसवीं सदी के अंतिम काल में हुआ। बांग्ला में इस विधा का उद्भव हिंदी से पूर्व हो चुका था क्योंकि अंग्रेजी का प्रभाव सर्वप्रथम बांग्ला भाषा पर पड़ा।

हिंदी में सर्वप्रथम मौलिक उपन्यास 'परीक्षा गुरु' भारतेन्दु के जीवन काल में ही सन् 1882 ई. में छप चुकी थी, जिसकी रचना का श्रेय लाला श्रीनिवास दास को है। यद्यपि लाला जी ने इसकी भूमिका में स्पष्ट लिख दिया है कि इसके लेखन में–

"महाभारतादि संस्कृत, गुलिस्तां वगैरह फारसी, स्पेकटेटर, लार्ड बेकन, गोल्ड स्मिथ, विलियम कपूर आदि पुराने लेखों और स्त्री बोध आदि के वर्तमान रिसालों से बड़ी सहायता मिली है।" इससे तथा इसके ढाँचे से ज्ञात होता है कि इसकी रचना बांग्ला उपन्यासों के आधार पर नहीं की गई है, अपितु लेखक ने सीधे अंग्रेजी के उपन्यासों से प्रेरणा ग्रहण की है। 'परीक्षा गुरु' में दिल्ली के एक सेठ पुत्र की कहानी है, जो बुरे संगति में पड़ गया था जिसका उद्धार अंत में एक सज्जन मित्र द्वारा किया। लेखक इसमें अत्यधिक उपदेशात्मक हो गया है जिसके परिणामस्वरूप यह रचना सफल उपन्यास का रूप ग्रहण नहीं कर सकी। डॉ. विजय शंकर मल्ल ने फिल्लौरी कृत 'भाग्यवती' को प्रथम उपन्यास कहा।

विकास

उपन्यास के उद्‌भव के संबंध में विद्वानों में मतैक्य नहीं है। डॉ. गुलाब रॉय, शिवनारायण श्रीवास्तव आदि विद्वानों की धारणा है कि भारतीय उपन्यासों के अंकुर भारत की प्राचीनतम साहित्य में ही उपलब्ध हैं। वे कहीं बाहर से नहीं आए।

किन्तु डॉ. लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय, नलिनी विलोचन शर्मा तथा हजारी प्रसाद द्विवेदी इससे सहमत नहीं हैं। उनकी मान्यता है कि उपन्यास का संबंध संस्कृत की प्राचीनतम औपन्यासिक परंपरा से जोड़ना विडंबना मात्र है।

अनेक विद्वान हिन्दी उपन्यास का पश्चिमी साहित्य की देन मानते हैं। उनके अनुसार 19वीं शताब्दी के अंतिम वर्षों में, भारतेन्दु युग में, जब हमारे यहां हिन्दी उपन्यासों का श्रीगणेश हुआ था, यह विधा पश्चिमी साहित्य में पूर्ण रूप से विकसित थी। ब्रिटिश साम्राज्य के प्रभाव के कारण सर्वप्रथम बांग्ला साहित्य, पश्चिमी साहित्य की इस पूर्ण विकसित विधा से प्रभावित हुआ। परिणामस्वरूप बांग्ला उपन्यासों की रचना हुई। बंगभाषा में बहुत अच्छे उपन्यास निकल चुके थे। बांग्ला साहित्य की इस साहित्यिक परिवर्धन से भारतेन्दु युगीन साहित्यकारों ने हिन्दी उपन्यासों की आवश्यकता को अपरिहार्य समझा।

भारतेंदु युग या प्रेमचन्द-पूर्वोत्तर

भारतेन्दु से पूर्व हिन्दी में जो कथात्मक पुस्तकें लिखी गयीं, वे आधुनिक उपन्यास और कहानी से मिलती-जुलती होने पर भी उनसे भिन्न थीं। वास्तव में उपन्यास और कहानी पश्चिमी साहित्य की देन है। भारतेन्दु-युग में जो उपन्यास

लिखे गये, उनमें उपन्यास विद्या का उचित निर्वाह न होने के कारण उन्हें सच्चा उपन्यास नहीं कहा जा सकता है। सच तो यह है कि हिन्दी में वास्तविक उपन्यास की रचना सर्वप्रथम प्रेमचन्द ने ही की। यों, ऐतिहासिक दृष्टि से लाला श्रीनिवास दास का 'परीक्षा-गुरु' (1882 ई.) ही हिन्दी का पहला उपन्यास माना जाता है। यह पश्चिमी उपन्यास की शैली पर आधारित है और यथार्थ जीवन का चित्र भी प्रस्तुत करता है, परन्तु कला की दृष्टि से बहुत अपरिपक्व है। इसमें उपदेश की प्रवृत्ति प्रधान है।

'परीक्षा-गुरु' के पूर्व भी 'देवरानी-जेठानी' (1872 ई.) 'रीति-रत्नाकर', 'वामा शिक्षक', 'भाग्यवती' आदि कुछ उपन्यास जैसी कथा-पुस्तकें प्रकाशित हुई थीं परन्तु वे भी मुख्यत: शिक्षात्मक तथा अपरिपक्व हैं। भारतेन्दु ने भी 1866 ई. में कहानी 'कुछ आप बीती कुछ जग बीती' लिखने का यत्न किया था और 'चन्द्र प्रभा और पूर्ण प्रकाश शीर्षक मराठी उपन्यास का अनुवाद व संशोधन भी किया था। उनकी प्रेरणा से राधा चरण गोस्वामी, राधाकृष्णदास, प्रतापनारायण मिश्र आदि ने बांग्ला के बहुत से उपन्यासों का हिन्दी में अनुवाद किया और मौलिक उपन्यास भी लिखे। इन लेखकों के अतिरिक्त बाबू कार्तिकप्रसाद खत्री, रामकृष्ण वर्मा आदि और भी कई लेखकों ने बांग्ला उपन्यासों का अनुवाद किया। अंग्रेजी से भी कुछ उपन्यासों का अनुवाद हुआ।

भारतेन्दु युग के मौलिक कथा-ग्रन्थों और उपन्यासों में महत्वपूर्ण हैं : ठाकुर जगमोहन सिंह का 'श्याम स्वप्न' (काव्यात्मक गद्य-कथा), पं. बालकृष्ण भट्ट रचित 'नूतन ब्रह्मचारी' तथा 'सौ अजान और एक सुजान' किशोरी लाल गोस्वामी का 'स्वर्गीय कुसुम', राधाचरण गोस्वामी का 'विधवा-विपत्ति', राधाकृष्ण दास का 'निस्सहाय हिन्दू', अयोध्यासिंह उपाध्याय का 'प्रेमकांता' और रत्नचंद प्लीडर प्रणीत 'नूतन चरित्र'। ये सभी उपन्यास प्राय: सोद्देश्य तथा शिक्षाप्रद हैं, पर कला की दृष्टि से दुर्बल हैं। इनमें परिवार और समाज का साधारणत: अच्छा अंकन हुआ है। उच्च चरित्र, वीरता तथा प्रेम की कथा प्रस्तुत करने वाले कुछ ऐतिहासिक उपन्यास भी लिखे गये, परन्तु उनमें इतिहास के तथ्यों का ठीक निर्वाह नहीं हुआ है।

सर्वप्रथम भारतेंदु ने 'पूर्ण प्रकाश और चन्द्रप्रभा' नामक उपन्यास का अनुवाद किया। एक मौलिक उपन्यास की रचना की शुरुआत भी लगभग हो चुकी थी, दुर्भाग्य से पूर्ण न हो सका। भारतेंदु युग के अन्य कई लेखकों ने भी उपन्यासों की रचना की, जिनमें श्रद्धाराम फिल्लौरी का 'भाग्यवती', रत्न चंद

प्लीडर का 'नूतन चरित्र' –1883, बालकृष्ण भट्ट –'नूतन ब्रह्मचारी' –1886 तथा 'सौ अजान एक सुजान' –1892, राधा कृष्ण दास –'निस्सहाय हिंदू' –1890, राधा चरण गोस्वामी –'विधवा विपत्ति' –1888, कार्तिका प्रसाद खत्री –'जया' –1896 बालमुकुन्द गुप्त –'कामिनी' आदि प्रमुख हैं।

डॉ. विजय शंकर मल्ल के अनुसार फिल्लौरी के 'भाग्यवती' हिंदी का प्रथम उपन्यास है, किन्तु उन्होंने अपनी घोषणा की पुंष्टि अपेक्षित प्रमाणों या कारणों से नहीं की।

अनूदित

इन लेखकों ने मौलिक उपन्यासों के साथ-साथ बांग्ला के उपन्यासों का हिन्दी रूपांतरण भी किया। बाबू गदाधर सिंह –'बंगविजेता', 'दुर्गेश नंदिनी', राधा कृष्ण दास –'स्वर्ण लता', प्रताप नारायण मिश्र –'राज सिंह', 'इंदिरा तथा राधारानी', राधाचरण गोस्वामी 'विरजा', 'जावित्री', तथा 'मृण्मयी' आदि को रूपांतरित किया। बाबू रामकृष्ण वर्मा एवं कार्तिका प्रसाद खत्री ने उर्दू और अंग्रेजी के अनेक रोमांटिक एवं जासूसी उपन्यासों का अनुवाद हिंदी में किया। भारतेंदु युग में अनूदित उपन्यासों की प्रधानता रही है। मौलिक उपन्यासों का रूपांतरण हिंदी भाषा में किया। भारतेंदु युग में अनूदित उपन्यासों का काफी महत्त्व रहा है।

वास्तव में हिन्दी के मौलिक उपन्यासों में भी कला विकास दृष्टिगोचर नहीं होता है। उनमें इतिवृत्त एवं घटनाओं की प्रधानता, चरित्र-चित्रण का अभाव, उपदेशात्मकता का आधिक्य एवं शैली की अपरिपक्वता नजर आती है।

हिंदी के मौलिक उपन्यासों की रचना का श्रेय भारतेंदु कालीन उपन्यासकार त्रयी-देवकी नंदन खत्री, गोपाल राम गहमरी तथा राधाचरण गोस्वामी को दिया जाता है। देवकी नंदन खत्री ने सन् 1891 ई. में 'चंद्रकांता' एवं 'चंद्रकांता संतति' की रचना की जिनमें तिलस्मी एवं ऐय्यारी का वर्णन है। इन उपन्यासों को इतना अधिक पसंद किया गया कि कई अनेक लोगों ने इन्हें पढ़ने के लिए हिंदी सीखी। गहमरी ने 'जासूस' नामक पत्र का संपादन प्रारंभ किया, जिसमें लगभग पांच दर्जन से अधिक स्वरचित उपन्यासों को छापा।

उपन्यासों की रचना अंग्रेजी उपन्यासों के आधार पर ही की जाती थी। गोस्वामी ने उपन्यास पत्रिका निकाली जिनमें उनके छोटे-बड़े लगभग 65 उपन्यासों का प्रकाशन किया गया। गोस्वामी के उपन्यासों का विषय सामाजिक था। किन्तु उनमें कामुकता एवं विलासिता का चित्रण सर्वाधिक था जिसके

परिणामस्वरूप 'उपन्यास त्रयी' की ये रचनाएं उपन्यास कला की दृष्टि से अति साधारण कोटि में आती है। इनमें अस्वाभाविक घटनाओं की अधिकता है।

खत्री, गहमरी और गोस्वामी की समन्वित त्रिवेणी तथा प्रेमचन्द की अजस्त्र प्रवाहिनी धारा को मिलाने का श्रेय अयोध्यासिंह उपाध्याय, लज्जाराम मेहता तथा कुछ अनुवादकों को दिया जाता है। हरिऔध ने 'ठेठ हिंदी का ठाठ' तथा 'अधखिला फूल' लिखकर आईसी.ए म. के विद्यार्थियों के लिए हिंदी मुहावरों की पाठ्य-पुस्तक उपलब्ध कराया। मेहता ने 'आदर्श हिंदू' तथा 'हिंदू गृहस्थ' की रचना कर सुधारवाद का परचम फहराया।

द्विवेदी युग

द्विवेदी युग में भी मौलिक और अनूदित दोनों प्रकार के उपन्यासों का प्रकाशन हुआ। इस समय अधिकतर तिलस्म, ऐयारी, जासूसी और रोमांस के कथानक प्रस्तुत किए गए। उपन्यास घटना-प्रधान बना रहा। अंग्रेजी से भी साहसिक, जासूसी तथा प्रेमचर्या-प्रधान उपन्यासों का अनुवाद हुआ। इस युग के तीन उपन्यासकार बहुत प्रसिद्ध हैं : देवकीनन्दन खत्री, किशोरीलाल गोस्वामी और गोपालराम गहमरी। खत्री जी ने 'चन्द्रकांता', 'चन्द्रकांता-संतति' तथा 'भूतनाथ' नामक तिलस्म और ऐयारी के रोचक उपन्यास कई भागों में प्रकाशित किए। इन उपन्यासों के पहले भी भारतेन्दु काल में उन्होंने 'नरेन्द्रमोहनी', वीरेन्द्र वीर' आदि उपन्यास लिखे थे। हरेकृष्ण जोहरी आदि कई लेखकों ने उनके अनुकरण पर तिलस्मी उपन्यास लिखे। बहुत लोगों ने उनके मनोरंजक उपन्यास पढ़ने के लिए ही हिन्दी सीखी।

सामाजिक और ऐतिहासिक उपन्यास किशोरीलाल गोस्वामी ने लिखे। गोस्वामी जी के सामाजिक उपन्यास वस्तुतः नाम के ही सामाजिक हैं। उनमें समाज की बहुत ही स्थूल और ऊपरी झलक है, यथार्थ चित्रण नहीं। उनके ऐतिहासिक उपन्यासों में इतिहास के तथ्यों का उचित निर्वाह नहीं हुआ। देशकाल का भी ध्यान उन्होंने कहीं-कहीं नहीं रखा। कुछ उपन्यासों में समाज की कुरीतियों पर प्रहार करने का यत्न किया गया और यत्र-तत्र राष्ट्र-प्रेम की भावना भी है। परन्तु गोस्वामी जी के अधिकांश उपन्यास उत्तेजकशृंगार से युक्त हल्के मनोरंजन के साधन हैं। गोस्वामी जी ने लगभग पैंसठ उपन्यास लिखे हैं। उनमें कुछ उपन्यासों के नाम हैं 'कुसुमकुमारी', 'हृदयहारिणी', 'लबंगलता', 'रजिया बेगम', 'तारा', 'कनक कुसुम', 'मल्लिका देवी', 'राजकुमारी', लखनऊ की

कब्र', 'चपला', 'प्रेममयी'। जैसा कि नामों में प्रकट है ये उपन्यास नारी-प्रधान औरश्रृंगारिक हैं। वास्तव में उनमें समाज और इतिहास के संदर्भ में कामुकता तथा विलासिता का अंकन हुआ है। उन्होंने 'उपन्यास' नामक पत्रिका भी निकाली थी जिसमें उनके पैंसठ छोटे-बड़े उपन्यास प्रकाशित हुए थे। आचार्य शुक्ल ने गोस्वामी जी के सम्बन्ध में लिखा है कि 'इस द्वितीय उत्थानकाल के भीतर उपन्यासकार इन्हीं को कह सकते हैं, परन्तु वस्तुतः उपन्यासकार की सच्ची प्रतिभा इनमें भी नहीं है।'

गोपालराम गहमरी 'जासूस' नामक पत्रिका प्रकाशित करते थे, जिसमें उनके साठ के लगभग उपन्यास छपे। अंग्रेजी के जासूसी उपन्यासों के अनुकरण पर उन्होंने 'जासूस की भूल', 'घर का भेदी', 'अद्‌भुत खून', 'भोजपुर की ठगी', आदि रहस्यपूर्ण, साहसिक और डकैती तथा ठगी की कथाएं निर्मित कीं। वैसे उन्होंने जासूसी उपन्यासों के क्षेत्र में भी आदर्श के निर्वाह और लोकोपकार की भावना के समावेश का यत्न किया और आदर्श जासूसों की सृष्टि की। गहमरी जी ने बांग्ला से गृहस्थ जीवन-सम्बन्धी कुछ उपन्यासों का अनुवाद भी किया था। दूसरी ओर द्विवेदी युग में कुछ ऐसे उपन्यासकार भी हुए, जिन्होंने अपनी रचनाओं में नैतिकता का ध्यान रखते हुए स्वच्छ-स्वस्थ सामग्री प्रस्तुत की। इस तरह के उपन्यासकारों में उल्लेखनीय हैं : हरिऔध, लज्जाराम मेहता और ब्रजनन्दन सहाय। हरिऔध जी ने 'ठेठ हिन्दी का ठाठ' और 'अधखिला फूल' लिखकर इनमें मुहावरेदार ठेठ भाषा का नमूना भी पेश किया। मेहता जी ने सुधारवादी दृष्टिकोण से 'आदर्श हिन्दू', 'आदर्शदम्पति' और 'हिन्दू गृहस्थ, आदि उपन्यास लिखे। ब्रजनन्दन सहाय के 'सौन्दर्योपासक' में काव्य का आनन्द मिलता है। स्पष्ट है कि गोस्वामी जी, गहमरी जी और खत्री जी के उपन्यासों में जहाँ स्थूल सौन्दर्य और उत्तेजकश्रृंगारिकता प्रस्तुत है वहाँ इन उपन्यासकारों के ग्रन्थ 'उपदेशात्मक' भावना की छटा दिखाने वाले या काव्यात्मक हैं। मानव चरित्र और मानव जीवन के सच्चे चित्रण और उपन्यास-काल की पूर्णता की ओर इस समय तक किसी का भी यथोचित ध्यान नहीं गया था। इस काल में किशोरीलाल गोस्वामी के अतिरिक्त कुछ और लेखकों ने भी ऐतिहासिक उपन्यास लिखें। इनमें उल्लेखनीय हैं : गंगाप्रसाद गुप्त का 'वीर पत्नी' और 'मिश्रबंधुओं के विक्रमादित्य', चन्द्रगुप्त मौर्य' तथा 'पुष्य मित्र'।

द्विवेदी युग में भी अधिकतर साधारण जनता के मनोरंजन और मनोविनोद के लिए घटना प्रधान उपन्यास ही लिखे गये। उनमें कथा का रस तो है, किन्तु

चरित्र-चित्रण का सौन्दर्य, समाज का सही अंकन और उपन्यास का परिपक्व शिल्प नहीं। इस समय के उपन्यासकारों को न तो मानव-जीवन का और न मानव-स्वभाव का सूक्ष्म एवं व्यापक ज्ञान था और न उपन्यास की कला से ही उनका अच्छा परिचय था। इस काल में अधिकतर प्रेमप्रधान, साहसिक तथा विस्मयकारक (तिलस्मी-जासूसी) उपन्यास ही लिखे गये। ऐतिहासिक, शिक्षात्मक और काव्यात्मक उपन्यास भी लिखे गये, परन्तु कम। पात्र अधिकतर सौंदर्य के प्रति आकर्षित होने वाले विलासी प्रेमी-प्रेमिका और राजकुमार-राजकुमारी हैं या फिर ऐयार तथा जासूस। इस काल के उपन्यास भारतेन्दु काल के उपन्यासों की अपेक्षा रोचक और मनोरंजक अधिक हैं। शिक्षा देने की प्रवृत्ति भी कम है। प्रतापनारायण मिश्र, गोपालराम गहमरी, ईश्वरीप्रसाद शर्मा, हरिऔध, कार्तिक प्रसाद खत्री, रूपनारायण पाण्डेय, रामकृष्ण वर्मा आदि साहित्यकारों ने बांग्ला, अंग्रेजी और उर्दू आदि भाषाओं के उपन्यासों का अनुवाद किया। आचार्य शुक्ल का कथन है कि हिन्दी के मौलिक उपन्यास-सृजन पर इन अनुवाद कार्यों का अच्छा प्रभाव पड़ा और इसके कारण हिन्दी उपन्यास का आदर्श काफी ऊँचा हुआ।

प्रेमचन्द युग

द्विवेदी युग के अन्त तक (1917 ई. तक) हिन्दी के मौलिक और अनूदित दोनों प्रकार के उपन्यास काफी संख्या में लिखे जा चुके थे। मौलिक उपन्यास अनेक प्रकार के और अनेक विषयों पर थे। उपन्यास क्रमशः जीवन और समाज के निकट आ रहा था, परन्तु अब भी उसमें बहुत-सी, त्रुटियां थी। प्रेमचन्द के समय से विशेष कर उनके 'सेवासदन' के प्रकाशन काल (सन् 1918 ई.) से हिन्दी-कथा साहित्य में एक नये युग का आरम्भ होता है। प्रेमचंद ने ही उपन्यास में मानव मन का स्वाभाविक एवं सजीव अंकन आरम्भ किया। उन्होंने ही पहली बार हिन्दी उपन्यास में घटना और चरित्र का संतुलन स्थापित कर मनोविज्ञान का उचित समावेश किया। उन्होंने ही समाज की समस्याओं को सर्वप्रथम कथा-साहित्य में स्थापित किया। उन्होंने जीवन और जगत के विविध क्षेत्रों का, समाज के विभिन्न वर्गों का ग्रामीण तथा नागरिक क्षेत्रों की बहुत-सी दशाओं तथा परिस्थितियों का सूक्ष्म निरीक्षण कर व्यापक अनुभव प्राप्त किया था। मनोविज्ञान के वे पंडित थे। मानव-स्वभाव के विविध पक्षों से भली-भांति परिचित थे। उपन्यास-कला का भी उन्हें बहुत अच्छा ज्ञान था। पश्चिम के ताल्सताय,

दोस्तोवस्की, तुर्गनेव, गोर्की, अनातोले प्रफांस आदि महान उपन्यासकारों की रचनाओं का भी उन्होंने गम्भीर अध्ययन किया था।

प्रारम्भ में प्रेमचन्द उर्दू के लेखक थे और कहानियां लिखते थे। उर्दू में उनके कुछ उपन्यास भी प्रकाशित हुए थे। बाद में उन्होंने हिन्दी में लिखना प्रारम्भ किया। उनके महत्वपूर्ण उपन्यास हैं : सेवासदन, प्रेमाश्रम, रंगभूमि, कायाकल्प, निर्मला, गबन, कर्मभूमि, गोदान और मंगलसूत्र (अपूर्ण)। प्रेमचन्द उपन्यास को मनोरंजन की वस्तु नहीं मानते थे। वे अपने उपन्यासों द्वारा भारतीय जनता के जागरण और सुधार तथा निर्माण की भावना का प्रसार करना चाहते थे। प्रेमचन्द मानवतावादी सहृदय व्यक्ति थे। वे गरीबी में पले थे, गरीबों के दु:ख-दर्द को समझते थे। समाज के निम्न वर्ग से उन्हें सहानुभूति थी। जीवन के अन्तिम समय में, जैसा कि उनके अन्तिम उपन्यासों ('गोदान' और 'मंगलसूत्र') से प्रकट है, उनका झुकाव साम्यवाद की ओर हो गया था और वे सच्चे अर्थ में यथार्थवादी और प्रगतिशील हो गये थे। अपनी पुस्तकों में प्रेमचन्द ने किसानों की आर्थिक दशा, जमींदारों और पुलिस के अत्याचारों, ग्रामीण जीवन की कमजोरियों, समाज की कुरीतियों, शहरी समाज की कमियों, विधवाओं और वेश्याओं की समस्याओं, नारी की आभूषणप्रियता, मध्यवर्ग की झूठी शान और दिखावे की प्रवृत्ति, सम्मिलित हिन्दू-परिवार में नारी की दयनीय स्थिति आदि प्रश्नों और पक्षों पर प्रकाश डाला। उन्होंने अपने कई उपन्यासों में गाँव और शहर की कहानी, ग्रामीण और नागरिक जीवन की झाँकी साथ-साथ प्रस्तुत की है। उनके उपन्यासों में कथानक सुगठित है चरित्र-चित्रण प्राय: मनोविज्ञान के अनुकूल सजीव और स्वाभाविक है। संवाद पात्रों और परिस्थितियों के अनुसार हैं और भाषा सरल एवं व्यवहारिक है।

प्रेमचन्द की उपन्यास-कला की प्रमुख विशेषताएं हैं : व्यापक सहानुभूति-विशेषकर शोषित किसान, मजदूर और नारी का सहानुभूतिपूर्ण चित्रण, यथार्थवाद अर्थात् उपन्यास में जीवन का यथार्थ चित्रण, मानव-जीवन और मानव-स्वभाव की अच्छी जानकारी होने से सजीव पात्रों और सजीव वातावरण का निर्माण, चरित्र-चित्रण में नाट्कीय कथोपकथनात्मक तथा घटनापरक पद्धतियों का उपयोग, समाज के विभिन्न वर्गों के प्रतिनिधि पात्रों की सृष्टि, अपने व्यक्तित्त्व को पात्रों से पृथक रखकर उन्हें प्राय: अपनी सहज-स्वच्छन्द गति से चलने देना, अनेकानेक सामाजिक तथा राजनीतिक समस्याओं का चित्रण, समाज के साथ पारिवारिक जीवन की सुन्दर अभिव्यक्ति, मानव-कल्याण की ओर

संकेत करने वाले नैतिक आदर्शों की प्रतिष्ठा और सरल व्यावहारिक भाषा का संग्रह। प्रेमचन्द युग के अन्य उल्लेखनीय उपन्यासकार हैं– विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक, प्रसाद, निराला, सुदर्शन, चतुरसेन शास्त्री, वृन्दावन लाल वर्मा, प्रतापनारायण श्रीवास्तव, सियारामशरण गुप्त, पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र', भगवती प्रसाद वाजपेयी, गोविन्दवल्लभ पंत, राहुल सांकृत्यायन और जैनेन्द्र। कौशिक जी के उपन्यास 'माँ' और भिखारिणी नारी-हृदय का मनोवैज्ञानिक चित्र प्रस्तुत करते हैं। आचार्य चतुरसेन ने नारी की समस्या पर 'हृदय की परख', 'हृदय की प्यास', 'अमर अभिलाषा' आदि उपन्यास प्रारम्भ में लिखे थे। बाद में उनके बहुत से सामाजिक, ऐतिहासिक और वैज्ञानिक उपन्यास प्रकाशित हुए। उनके कुछ उल्लेखनीय उपन्यास हैं : 'गोली', 'वैशाली की नगर वधू' 'वयं' रक्षामः' 'सोमनाथ' 'महालय', 'सोना और खून' तथा 'खग्रास'। वृन्दावनलाल वर्मा ने इतिहास के तथ्यों की पूर्णतः रक्षा करते हुए कई महत्वपूर्ण ऐतिहासिक उपन्यासों की रचना की है। उन्होंने 'विराटा की पद्मिनी', 'झाँसी की रानी', 'कचनार', 'मृगनयनी', 'माधवजी सिंधिया' आदि उच्चकोटि के ऐतिहासिक उपन्यास लिखे। हिन्दी के कुछ अन्य उल्लेखनीय ऐतिहासिक उपन्यास हैं। जयशंकर प्रसाद का 'इरावती' (अधूरा), हजारी प्रसाद द्विवेदी के 'बाणभट्ट की आत्मकथा' और 'चारु चन्द्रलेख', चतुरसेन का 'वैशाली की नगरवधू', 'राजसिंह', 'सोमनाथ', 'सह्याद्रि की चट्टानें', सेठ गोविन्ददास का 'इन्दुमती', राहुल सांकृत्यायन के 'सिंह सेनापति', 'जय यौधेय', सत्यकेतु दिद्यालंकार का 'आचार्य चाणक्य', रांगेय राघव का 'अंधा रास्ता', उमाशंकर का 'नाना फड़नवीस' तथा 'पेशवा की कंचना'।

प्रसाद जी ने 'इरावती' के पहले 'कंकाल' और 'तितली' नामक दो उपन्यास और लिखे थे, 'कंकाल' में हिन्दू नारी की असहाय स्थिति और धार्मिक पाखंड पर प्रकाश डाला गया है। 'तितली' में नारी-हृदय की महत्ता के उद्घाटन के साथ-साथ ग्राम-सुधार और यथास्थिति के विरुद्ध आन्दोलन की भावना है। प्रसाद जी मूलतः कवि हैं। उनके उपन्यासों में भी प्रायः जीवन की काव्यात्मक और भावपूर्ण व्याख्या मिलती है। निराला जी ने भी 'अप्सरा' 'अल्का', 'निरूपमा' आदि उपन्यास लिखे। इनके उपन्यासों में भी प्रसाद जी की भाँति रोमांटिक वातावरण है। नारी को निराला जी ने महत्वपूर्ण स्थान दिया है। श्री प्रतापनारायण श्रीवास्तव के प्रारम्भिक उपन्यासों में 'विदा', 'विसर्जन' और 'विजय' उल्लेखनीय हैं।

सियारामशरण गुप्त के 'गोद', 'अन्तिम आकांक्षा' और 'नारी' उपन्यासों में नारी-जीवन और उसकी सामाजिक स्थिति का मार्मिक अंकन हुआ है। साधारण मनुष्य में भी उच्च गुण दिखाने में गुप्त जी निपुण है। पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र' के प्रारम्भिक उपन्यासों में पत्रात्मक शैली में लिखे 'चन्द हसीनों के खतूत' का विशिष्ट स्थान है। इसमें हिन्दू-मुस्लिम एकता का प्रश्न उपस्थित करते हुए प्रेम का महत्व दिखाया गया है। उनके 'दिल्ली का दलाल', 'बुधुआ की बेटी', 'जीजी जी' आदि उपन्यासों में दुष्टों द्वारा भोली युवतियों को फँसाएं जाने की कथाएं हैं। सभ्य समाज की भीतरी दुर्बलताओं और दुष्प्रवृत्तियों का उन्होंने अच्छा उद्घाटन किया है। भगवती प्रसाद वाजपेयी के 'प्रेममयी', 'अनाथ स्त्री', 'त्यागमयी', 'पतिता की साधना' आदि शुरू के उपन्यासों में स्त्री-पुरुष के रूपाकर्षण और प्रेम के चित्र हैं। उनके 'गुप्त धन', 'चलते-चलते', 'पतवार', 'उनसे न कहना', 'रात और प्रभाव', 'टूटते बन्धन' आदि कई उपन्यास प्रकाशित हो चुके हैं। गोविन्दवल्लभ पंत के 'सूर्यास्त', 'प्रतिमा', आदि उपन्यास काफी पहले प्रकाशित हुए थे। बाद में भी उनके 'जल समाधि', 'नारी के सपने', 'मैत्रोय' आदि उपन्यास निकले हैं।

जैनेन्द्र के परख (सन् 1929 ई.) से हिन्दी उपन्यास के क्षेत्र में एक नई प्रवृत्ति का आरम्भ होता है। वस्तुतः यह उपन्यास एक लम्बी कहानी है जिसमें कट्टो नाम की देहातिन बालविधवा के भावुकतापूर्ण आत्मसमर्पण का चित्रण किया गया है। जैनेन्द्र ने आगे चलकर कई महत्त्वपूर्ण मनोवैज्ञानिक उपन्यास 'सुनीता', 'सुखदा', 'त्यागपत्र', विवर्त्त' आदि लिखे, जिनमें प्रायः स्त्री का पर-पुरुष की ओर झुकाव दिखाकर आधुनिक नारी के कुण्ठाग्रस्त मन पर प्रकाश डाला है। मनोविश्लेषण की इस प्रवृत्ति का विकास किया इलाचन्द्र जोशी और अज्ञेय ने। प्रेमचन्द युग के उत्तरार्ध में इस क्षेत्र में आने वाले अन्य प्रतिभाशाली उपन्यासकार हैं। ऋषभचरण जैन (कैंदी गदर, भाई भाग्य, रहस्यमयी, तपोभूमि, बादशाह की बेटी, सत्याग्रह, दिल्ली का व्यभिचार आदि), भगवतीचरण वर्मा (पतन, तीन वर्ष, चित्रलेखा, टेढ़े-मेढ़े रास्ते, सबहि नचावत राम गुसाईं) राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह (राम-रहीम, पुरुष और नारी, टूटा तारा, सूरदास, संस्कार आदि)

इस काल में जो उपन्यास लिखे गए, उन्हें चार वर्गों में विभक्त किया जा सकता है– यथार्थवादी सामाजिक उपन्यास, ऐतिहासिक उपन्यास, स्वच्छन्दतापरक उपन्यास और मनोवैज्ञानिक उपन्यास। उपन्यास-लेखन की बहुत-सी शैलियों

(ऐतिहासिक, आत्मकथात्मक, पत्रात्मक आदि) का प्रयोग हुआ है। इस काल में यूरोप की अनेक समृद्ध भाषाओं (रूसी, अंग्रेजी, फ्रांसीसी आदि) से उपन्यासों का अनुवाद भी हुआ।

प्रेमचन्द (सन् 1880-1936 ई.) के हिन्दी कथा साहित्य में पदार्पण से पूर्व तक हिंदी उपन्यास मानो अविकसित कलिका के समान चुप, निस्पंद एवं चेतना-विहीन सा हो रहा था। सूर्य की प्रथम रश्मियों की तरह प्रेमचन्द की पावन कला का पुनीत स्पर्श प्राप्त करते ही वह कली पुष्पित होकर, खिल उठी, जगमगा कर खिलखिलाने लगी। राजा-रानी, सेठ-सेठानियों की उच्च अट्टालिकाओं की चार दीवारी में कैद उपन्यास कथानक जनसाधारण की लोकभूमि में उन्मुक्त सांस लेता हुआ अबाध विचरण करने लगा। लौह मूर्तियों के समान स्थिर रहने वाले या कठपुतलियों की तरह लेखन की उंगलियों के मौन संकेतों पर अस्वाभाविक गीत से नाचने वाले, दौड़ने-फुदकने वाले पात्र मांसल सजीव रूप धारण कर व्यक्तित्त्व सम्पन्न सामान्य मानव की भाँति आत्म प्रेरणा से परिचालित होते प्रतीत होने लगे जिसके परिणामस्वरूप उपन्यास के अन्य तत्त्वों-कथोपकथन, देश काल एवं वातावरण, भाषा शैली, उद्देश्य एवं रस आदि का विकास सर्वप्रथम प्रेम चन्द के उपन्यासों में हुआ। उन्होंने मात्र सस्ते मनोरंजन को ही उपन्यासों का विषय न बनाकर जीवन की ज्वलंत समस्याओं को अपने उपन्यासों का लक्ष्य बनाया जिसके परिणामस्वरूप उनके प्रत्येक उपन्यासों में किसी न किसी सामयिक समस्या का चित्रण मार्मिक स्वरूप में उपलब्ध है। यथा –'सेवा सदन' (1918) 'वेश्या', 'रंगभूमि' (1928) –'शासक अत्याचार', 'प्रेमाश्रम' (1921) –'कृषक,' 'कर्मभूमि' (1932) –हरिजन, 'निर्मला' (1922) –'दहेज एवं वृद्ध विवाह', 'गबन' (1931) मध्यवर्गीय आर्थिक विषमता('गोदान' (1936) कृषक श्रमिक शोषण।

प्रेमचंद के प्रारंभिक उपन्यासों में आदर्शवादिता की अधिकता होने की वजह से उनमें कहीं-कहीं काल्पनिकता एवं अस्वाभाविकता अधिक आ गई है। किन्तु आगे चलकर प्रेमचन्द का स्वरूप आदर्शवादी के स्थान पर यथार्थवादी बन गया है जहाँ प्रारंभिक उपन्यासों में समस्याओं को सुलझाने हेतु गाँधीवादी विचारधारा को अपनाया है वहाँ उन्होंने अन्तिम उपन्यास 'गोदान' में केवल समस्याओं के प्रस्तुतीकरण के द्वारा ही आत्मतुष्टि कर ली है।

'गोदान' की प्रमुख ही नहीं अंगी समस्या विवाह है। प्रेमचंद ने 'गोदान' में –बाल विवाह, वृद्ध विवाह, अनमेल विवाह, अन्तर्जातीय विवाह, प्रेम-विवाह,

गांधर्व विवाह, परंपरित-विवाह, भगाकर ले जाना, रखैल रखना, वैसे ही संबंध स्थापित कर लेना, विवाहित से प्रेम, अविवाहिता से प्रेम करना आदि जितने भी प्रकार या स्वरूप संभव हैं सभी गोदान में देखने को मिलते हैं। इनमें आदर्श विवाह क्या हो सकता है? उसका समाधान प्रेमचंद ने नहीं प्रस्तुत किया है। मेहता और मालती को अविवाहित ही क्यों छोड़ दिया है, जो पति-पत्नी के रूप में आजीवन रहते हैं। समाज के लिए यह हितकारी नहीं है। इसलिए यह माना जा सकता है कि विवाह समस्या का यह समाधान नहीं है। शुक्ल ने जैसे अपने निबंधों का निर्णय अपने पाठकों पर चिन्तामणि के प्रथम भाग की भूमिका दो शब्द में यह कह कर कि "मेरे निबंध विषय प्रधान हैं या विषयी प्रधान इसका निर्णय विज्ञ पाठकों पर छोड़ देता हूँ।" उसी प्रकार प्रेमचन्द ने समस्या को सुलझाने का कार्य पाठकों पर छोड़ दिया है। श्रेष्ठ साहित्यकार समस्या का समाधान नहीं प्रस्तुत करता है।

प्रेमचन्द युग में प्रेमचंद के अतिरिक्त अन्य अनेक उच्च कोटि के उपन्यासकारों का आगमन हुआ जिन्होंने विभिन्न दृष्टिकोणों से विभिन्न विषयों को अपने उपन्यासों का विषय बनाया। इन उपन्यासकारों को उनकी विशेषताओं के आधार पर कई वर्गों में बाँटा जा सकता है–

(i) **सामाजिक समस्या**–इस वर्ग में ऐसे उपन्यास आते हैं जिन्होंने सामाजिक समस्याओं को चित्रित करते हुए प्रेमचन्द की परंपराओं को आगे बढ़ाने का कार्य किया। इस वर्ग के उपन्यासकारों में जयशंकर प्रसाद, विश्वंभर नाथ शर्मा 'कौशिक', पांडेय बेचन शर्मा उग्र, चतुरसेन शास्त्री तथा उपेन्द्र नाथ अश्क आदि उल्लेखनीय हैं।

जयशंकर प्रसाद–जयशंकर प्रसाद ने 'कंकाल' में भारतीय नारी जीवन की दुर्दशा का चित्रण किया है। उनके अन्य उपन्यास 'तितली' में नारी की सामाजिक स्थिति का चित्रण करते हुए उसके विभिन्न रूपों पर प्रकाश डाला है। अन्य उपन्यास 'इरावती' है।

विश्वंभर नाथ शर्मा कौशिक–कौशिक ने 'मां' और 'भिखारिणी' में भी नारी की सामाजिक स्थिति का चित्रण करते हुए उसके विभिन्न रूपों पर चर्चा की है।

पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र'–उग्र लेखक के रूप में काफी उल्लेखनीय कार्य किया है। उन्होंने 'दिल्ली का दलाल', 'बुधुआ की बेटी', में सभ्य समाज की आंतरिक दुर्बलताओं, अनीतियों एवं घृणित प्रवृत्तियों का उद्‌घाटन आवेगपूर्ण एवं धड़ल्लेदार शैली में किया है।

चतुरसेन शास्त्री–चतुरसेन शास्त्री ने विधवाश्रमों की आँड़ में हृदय की प्यास को बुझाने वालों की अच्छी खबर ली है। 'गोली' इस दृष्टि से उनका प्रमुख उपन्यास है जिसमें देशी रियासतों के शासकों की घृणित प्रवृत्तियों एवं विलासिता का नग्न रूप पेश किया है। शास्त्री ने कुछ ऐतिहासिक उपन्यासों की भी रचना की है।

उपेन्द्रनाथ 'अश्क'–अश्क के उपन्यासों में मुख्य रूप से 'गिरती दीवारों' में मध्यमवर्गीय समाज की वाह्य एवं आंतरिक परिस्थितियों का उद्घाटन यथार्थवादी शैली में हुआ है। विवाह संबंधी सामाजिक रूढ़ियों की वजह से होने वाली आधुनिक युवक-युवतियों की असफल परिणति पर उन्होंने 'चेतन' के माध्यम से प्रकाश डाला है। सामाजिक समस्याओं को उपन्यास का विषय बनाने वाले उपन्यासकारों ने सभी उपन्यासकारों की शैली में सरलता एवं स्वाभाविकता का आग्रह विशेष रूप से किया है।

(ii) **चरित्र प्रधान**–इस वर्ग के उपन्यासों में चरित्र की प्रमुखता अधिक है। ऐसे उपन्यासकारों में जैनेंद्र, इलाचन्द्र जोशी, भगवती चरण वर्मा एवं सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन अज्ञेय आदि प्रमुख हैं।

जैनेंद्र–जैनेंद्र के उपन्यासों में 'सुनीता', 'परख', 'सुखदा' 'त्यागपत्र' तथा 'विवर्त्त' आदि प्रमुख उपन्यास हैं। इनके अधिकांश उपन्यासों में पति-पत्नी एवं अन्य पुरुष के पारस्परिक संबंधों को चित्रित किया गया है। सबमें प्रायः एक समान ही चित्रण मिलता है। नायिका प्रायः विवाहिता होती है। अपनी वैयक्तिक कुंठाओं से अति दुखी होती है जिसके परिणामस्वरूप सदैव सुख की तलाश में रहती है। पर पुरुष के संपर्क में आते ही उसे प्रभावशाली व्यक्तित्त्व समझकर उसकी तरफ आकर्षित हो जाती है। नायिका का पति इस स्थित से पूर्ण अवगत होते हुए भी चुपचाप रहता है। सब कुछ धैर्य से सहन करते हुए समय की प्रतीक्षा करता रहता है। प्रारंभ में ऐसा आभास होने लगता है कि नायिका अपने पति को छोड़ कर अपने प्रेमी के साथ पलायन कर जायेगी किंतु अंत तक जाते जाते जैनेंद्र परिस्थिति को संभाल लेते हैं तथा यह निष्कर्ष निकालना चाहते हैं कि पति-पत्नी को अन्य व्यक्तियों से संपर्क करने का जितना मौका प्राप्त होता है, जितनी अधिक स्वतन्त्रता मिलती है उतनी चारित्रिक दृढ़ता एवं सबलता में वृद्धि होती है। वास्तव में जैनेंद्र के उपन्यासों में एक ओर रसिकता एवं सरसता विद्यमान है तो दूसरी तरफ शुष्कता तथा भावुकता के साथ-साथ बौद्धिकता आवश्यकता से अधिक आ गई है।

इलाचंद्र जोशी–इलाचंद्र जोशी ने 'संन्यासी' 'परदे की रानी', 'प्रेत' और 'छाया', 'सुबह के भूले' तथा 'मुक्ति पथ' आदि उपन्यासों में चारित्रिक प्रवृत्तियों एवं वैयक्तिक परिस्थितियों का सूक्ष्म चित्रण किया है, किंतु जैनेन्द्र की तरह शुष्क कथानक नहीं हैं उनके पास प्रत्येक उपन्यास में प्रयोग करने के लिए नए-नए अनेक कथानक हैं, नई-नई अनेक समस्याएं हैं, अतः उन्हें समस्याओं परिस्थितियों एवं कथानकों आदि के पुनर्प्रयोग की जरूरत नहीं होती है। एक ओर उसके पास कल्पना का वैभव है तो दूसरी ओर अनुभूतियों का संचित कोष –जिसकी वजह से वे अपने उपन्यासों को सौंदर्यमयी एवं रसमयी बनाने में पूर्ण सक्षम एवं समर्थ हैं। जैनेन्द्र के उपन्यास यदि पेंसिल निर्मित रफ स्केच के समान हैं तो जोशी के उपन्यास सतरंगी सूक्ष्म रेखाओं से सुसज्जित दिव्य चित्र हैं। जटिल दार्शनिकता पर जैनेन्द्र को अत्यधिक गर्व है, जोशी के उपन्यास दार्शनिक जटिलता शून्य है। किन्तु जोशी का सारल्य, भाषा प्रवाह तथा शैली की प्रौढ़ता आज किसी भी उपन्यासकार में नहीं देखने को मिलता है। किसी-किसी स्थान पर जोशी भी दार्शनिकता प्रिय आलोचकों की प्रशंसा प्राप्त करने की प्रबल आकांक्षा में अथवा विद्यार्थियों के काम की वस्तु बनाने के लालच का संवरण न कर सकने के परिणामस्वरूप दार्शनिक नीरस सिद्धान्त निरूपण के जाल में फँस गए हैं। यह उनकी औपन्यासिकता के ह्रास का चित्रण करता है। 'सुबह के भूले' तथा 'मुक्ति पथ' उपन्यासों की औपन्यासिकता का पतन हुआ है।

भगवती चरण वर्मा–भगवती चरण वर्मा ने 'तीन वर्ष', 'आखिरी दाँव' तथा 'टेढ़े-मेढ़े' रास्ते में सामाजिक एवं राजनीतिक परिवेशों पर नजर रखते हुए मनोविश्लेषण को महत्त्व दिया है।

सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन अज्ञेय–अज्ञेय ने 'शेखर : एक जीवनी' (दो भाग) तथा 'नदी के द्वीप' दोनों उपन्यासों में यौन प्रवृत्तियों का ऐसा भयंकर चित्रण सूक्ष्म, जटिल एवं गंभीर शैली में प्रस्तुत किया है कि सामान्य पाठक के हृदय को शांति प्रदान करने के स्थान पर उसके मस्तिष्क को कुरेदने एवं कचोटने में आग में घी का काम देता है। अज्ञेय ने विभिन्न मनोवैज्ञानिकों, एवं मनोविश्लेषणकर्ताओं द्वारा प्रतिपादिन यौन सिद्धान्तों के अनुकूल अपने उपन्यास के पात्र-पात्राओं के चरित्र को अति सूक्ष्मता से चित्रित किया है। चरित्र-चित्रण को इनमें इतने अधिक महत्त्व दिया गया है कि उसके समक्ष उपन्यास के अन्य तत्त्व गौण हो गए हैं। ऐसी स्थिति में इनमें सामाजिक परिस्थितियों के स्थान पर व्यक्ति की मानसिक प्रवृत्तियों के विश्लेषण को विस्तृत करना स्वाभाविक हो गया है।

(iii) **साम्यवादी**–इस वर्ग में साम्यवादी दृष्टिकोण से रचित उपन्यास आते हैं, जिनमें राहुल सांकृत्यायन तथा यशपाल आदि प्रमुख हैं–

राहुल सांकृत्यायन–राहुत सांकृत्यायन के साम्यवादी उपन्यास 'सिंह सेनापति' तथा 'वोल्गा से गंगा' आदि प्रमुख उपन्यास हैं। दोनों उपन्यासों में रूसी साम्यवादी विचारधारा का प्रतिपादन किया गया है।

यशपाल–यशपाल के उपन्यास 'दादा कामरेड', 'देशद्रोही', 'मनुष्य के रूप' आदि में वर्ग संघर्ष, वर्ग वैषम्य का चित्रण करते हुए सामाजिक क्रांति की चर्चा की है।

(iv) **ऐतिहासिक**–ऐतिहासिक उपन्यासों को देशकाल प्रधान उपन्यास के श्रेणी में रखा जाता है। इस वर्ग में देशकाल प्रधान या ऐतिहासिक उपन्यास आते हैं। ऐतिहासिक कथानकों की ओर हिंदी उपन्यासकारों का ध्यान बहुत पहले चला गया था।

ऐतिहासिक उपन्यास वालों में किशोरी लाल गोस्वामी, आचार्य चतुरसेन शास्त्री, आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी, यशपाल, वृंदावन लाल वर्मा तथा रांगेय राघव का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं-

किशोरी लाल गोस्वामी–किशोरी लाल गोस्वामी ने कुछ ऐतिहासिक उपन्यास लिखे, जिनमें ऐतिहासिकता का निर्वाह नहीं किया गया है।

आचार्य चतुरसेन शास्त्री–आचार्य चतुरसेन शास्त्री ने कई ऐतिहासिक उपन्यासों की रचना की जिनमें उनका सर्वोत्कृष्ट ऐतिहासिक उपन्यास 'वैशाली की नगर वधू' है।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी–आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के 'बाणभट्ट की आत्मकथा' एवं 'चारुचन्द्र' को दो प्रमुख ऐतिहासिक उपन्यास की श्रेणी में शामिल कर सकते हैं।

यशपाल–यशपाल का ऐतिहासिक उपन्यास 'दिव्या' को माना जाता है जिसमें तत्कालीन युग के संपूर्ण परिवेश को प्रस्तुत करने का पूर्व प्रयास किया गया है। अन्य उपन्यास 'अमिता' है।

वृंदावन लाल वर्मा–ऐतिहासिक उपन्यासों की परंपरा को चरम विकास तक पहुँचा देने का एक मात्र श्रेय वृंदावन लाल वर्मा को दिया जाता है। 'गढ़ कुंडार', 'विराटा की पद्मिनी', 'झाँसी की रानी लक्ष्मी बाई', तथा 'मृगनयनी' आदि उपन्यास ऐतिहासिक हैं, जिनमें इतिहास के अनेक विस्मृत प्रसंगों को

नवजीवन प्राप्त हुआ है। मृगनयनी में ऐतिहासिकता –कल्पना, तथ्य –अवास्तविकता तथा मानव और प्रकृति का सुंदर सामंजस्य एवं समन्वय हुआ है।

डॉ. रांगेय राघव–नवीनतम ऐतिहासिक उपन्यासकारों में डॉ. रांगेय राघव तथा उनके उपन्यासों 'अंधा रास्ता', 'सुनामी' एवं 'भगवान एक लिंग' आदि महत्त्वपूर्ण हैं।

(v) **आंचलिक**–किसी अंचल या प्रदेश विशेष के वातावरण का सजीव चित्रण प्रस्तुत करने को आंचलिकता कहा जाता है। जिन उपन्यासों में यह प्रस्तुतीकरण होता है उन्हें आंचलिक उपन्यास कहा जाता है। हिन्दी उपन्यास के तत्त्वों पर आधारित नहीं अपितु स्वतंत्र सर्वथा नवीन वर्ग है। वर्तमान काल में ऐसे उपन्यासों का विकास हो रहा है। ऐसे उपन्यासकारों में फणीश्वर नाथ रेणु, उदयशंकर भट्ट, बलभद्र ठाकुर, नागार्जुन तथा तरन तारन के आदि प्रमुख हैं। हिंदी आंचलिक उपन्यासों पर बांग्ला प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। उपन्यास की इस परंपरा का श्रीगणेश स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् अर्थात् सन् 1950 ई. के लगभग हुआ।

नागार्जुन–नागार्जुन हिंदी के पहले आंचलिक उपन्यासकार माने जाते हैं। नागार्जुन ने अनेक उपन्यास लिखे जिनमें 'बलचनमा', 'बाबा बटेसर नाथ', 'रतिनाथ की चाची', 'ईमरतिया', 'पारों', 'जमनिया का बाबा' तथा 'दुखमोच' आदि प्रमुख हैं। आंचलिक उपन्यास कला की दृष्टि से बाबा बटेसर नाथ अधिक मंजी हुई सशक्त रचना मानी जाती है। इसमें कथ्य का संतुलित निरूपण, सजीव चरित्र चित्रण तथा प्रसंगों का नवीन प्रणाली से संयोजन सहृदय को अपनी तरफ खींचता है। बरगद वृक्ष का मानवीकरण करके सर्वथा नवीन प्रयोग किया गया है। बरगद मानवीय संवेदनाओं से युक्त है।

फणीश्वर नाथ रेणु–'मैला आंचल' की रचना कर फणीश्वर नाथ रेणु ने आंचलिक उपन्यास के क्षेत्र में तहलका मचा दिया है। इस उपन्यास के प्रकाशन ने रेणु को रातों-रात प्रसिद्धि प्रदान की थी। इतनी ख्याति किसी भी साहित्यकार को एकलौती रचना पर नहीं मिली है। इसमें बिहार प्रांत के पूर्णिया जनपद के मेरी गंज अंचल के राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक एवं धार्मिक आदि सभी परिवेशों का यथार्थ चित्रण पेश किया है। पूर्णिया जिले की स्थानीय बोली का प्रयोग आंचलिकता की माँग है, पर कुछ स्थानिक शब्दों के प्रयोग भावबोध कराने में कठिनता एवं जटिलता उत्पन्न करते हैं, जो कथा रस

में अवरोध उत्पन्न करते हैं भले ही आंचलिकता प्रदर्शन में सफल हुए हों। 'परती परिकथा' अन्य उपन्यास है।

रांगेय राघव–आंचलिक उपन्यास के क्षेत्र में रांगेय राघव की भूमिका काफी अहम मानी जाती है। 'कब तक पुकारूँ' उनका चर्चित आंचलिक उपन्यास है, जिसमें जरामयपेशा आपराधिक कृति वाले नटों के जीवन का व्यापक एवं यथार्थ चित्रण किया गया है। इन नटों की वैवाहिक एवं यौन संबंधी मान्यताएं सामान्य मानव से बिल्कुल अलग है। इनमें सांप्रदायिक मान्यताएं नहीं हैं क्योंकि बहुत कम समय के लिए अपने मूल निवास पर आते हैं। ये मुख्य रूप से मायावदी जीवन व्यतीत करते हैं।

उदय शंकर भट्ट –उदय शंकर भट्ट द्वारा रचित लोक-परलोक आंचलिक उपन्यास है जिसमें इह लोक तथा स्वर्ग का काल्पनिक चित्रण किया गया है।

बलभद्र ठाकुर–बलभद्र ठाकुर के उपन्यासों में 'आदित्य नाथ', 'मुक्तावली', 'नेपाल की वो बेटी' प्रमुख हैं।

श्याम संन्यासी–श्याम संन्यासी ने एक ही आंचलिक उपन्यास की रचना की जो काफी चर्चित है।

तरन तारन–तरन तारन द्वारा "हिमालय के आंचल" आंचलिक उपन्यास की रचना की गई। इसमें लोक संस्कृति लोक गीतों तथा लोक शब्दावली का प्रयोग अत्यधिक हुआ है।

उपर्युक्त पाँच वर्गों के अलावा प्रेमचंदोत्तर उपन्यासकार विभिन्न धाराओं में बँटकर विभिन्न रंग रूपों में उपन्यास साहित्य की रचना कर रहे हैं। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद छठे दशक में अनेक ऐसे उच्च कोटि के उपन्यासों को छापा गया है, जिनमें नए-नए विषयों, शिल्प विधियों और शैलियों का प्रयोग मिलता है। कुछ प्रमुख उपन्यासकारों और उनके उपन्यासों की सूची निम्नलिखित है–

यज्ञदत्त –'इंसान' एवं 'अंतिम चरण', अंचल –'चढ़ती धूप', देवेंद्र सत्यार्थी –'रथ का पहिया', धर्मवीर भारती –'सूरज का सातवाँ घोड़ा', राजेन्द्र यादव –'प्रेत बोलते हैं', 'टूटे हुए लोग' आदि प्रमुख हैं।

डॉ. सत्यकेतु विद्यालंकार –'मैंने होटल चलाया', अमृत लाल नागर –'बूंद और समुद्र' एवं 'शतरंज के मोहरे', लक्ष्मी नारायण लाल –'बयाँ का घोंसला' एवं 'सांप', आचार्य चतुरसेन शास्त्री–'खग्रास', सत्यकाम विद्यालंकार –'बड़ी मछली और छोटी मछली', यादवेंद्र शर्मा चंद्र –'अनावृत्त', अनंत गोपाल 'शेवड़े'

–भग्न मन्दिर, यशपाल –'झूठा सच', देवराज –'अजय की डायरी', जीवन प्रकाश जोशी –'विवाह ही मंजिलें' आदि साठोत्तरी (सन् 1960 ई. के बाद) आदि प्रमुख उपन्यास हैं। इनके अतिरिक्त हिंदी में और भी अनेक उपन्यासकार इस विद्या में अपनी-अपनी भूमिका निभा रहे हैं जिनमें देवी दयाल चतुर्वेदी, कंचन लता सब्बरवाल, तथा हेमराज निर्मम आदि ने भी उच्च कोटि के उपन्यास लिखे हैं।

अनूदित–मौलिक उपन्यासों के अलावा हिंदी में पर राष्ट्रीय एवं भारतीय भाषाओं के उच्च कोटि के उपन्यासों के सुंदर रूपांतरण भी अत्यधिक संख्या में प्रस्तुत हुए हैं, इनमें हेमसन 'आग जो बुझी नहीं', स्टीफेन ज्विग –'विराट', मोबी डिक –'लहरों के बीच ड्यूमा' –कलाकार कैदी, बालजक –'क्या पागल था', आदि उत्कृष्ट रचनाएं हैं। भारतीय लेखकों में आरिगपूड़ि –'अपने पराए', भवानी भाचार्य –'शेर का सवार', खांडेकर –'ययाति', विमल मित्र –'साहब बीबी गुलाम' आदि उल्लेखनीय हैं।

स्पष्ट हो जाता है कि हिंदी उपन्यास साहित्य आज अनेक दिशाओं में काफी तेजी से प्रसारित हो रहा है। उपन्यासकार अति यथार्थवादिता, प्रयोगशीलता, एवं न्यूनता की प्रवृत्तियों से बुरी तरह ग्रसित होते जा रहे हैं। कुछ उपन्यासकार कुँठाओं से पीड़ित, असफलताओं एवं असंतुलन से जर्जरित तथा पाश्चात्य भोगवादी सभ्यता के आकर्षण में भटके हुए हैं तथा वे साहित्य सृजन किसी को कुछ देने के लिए नहीं बल्कि अपनी ही कुंठा से मुक्ति पाने हेतु कर रहे हैं।

ऐसा महसूस किया जाता है उपन्यास का क्षेत्र मात्र सुशिक्षित समाज एवं शहरी जीवन तक सीमित हो गया है। पर अनेक उपन्यासकारों ने आंचलिकता को फैशन के रूप में अपनाया है, ग्रामीण जीवन की परिस्थितियों एवं समस्याओं का यथार्थ बोध बहुत कम रचनाओं में उपलब्ध होता है।

इस संदर्भ में सोमवीरा की चुनौती प्रमुख है –हमारा आधुनिक साहित्य केवल 'मध्यवर्गीय नगर साहित्य' इसलिए है क्योंकि हमारे अधिकांश साहित्यकार केवल इसी वर्ग की बातों को लेकर, केवल इसी वर्ग हेतु लिखते हैं।

ग्रामीण लोगों, आदिवासियों, करोड़पतियों के जीवन पर, रात को सड़क पर सोने वालों पर, दिन में यना–मूँगफली बेचने वालों के जीवन पर, भिखारियों पर खिलाड़ियों पर, वैज्ञानिकों पर, मछुआरों पर, अछूतों पर मध्य वर्ग के अतिरिक्त समाज के अन्य अंगों से संबंधित विषयों पर कितने साहित्यकारों ने कलम उठाई है?

आधुनिक प्रयोग–रचना शिल्प के क्षेत्र में उपन्यास में अनेक नए प्रयोग किए गए। उपन्यास के भीतर उपन्यास लेखन का प्रयोग उल्लेखनीय है। इसके सफल प्रयोग का श्रेय अमृत लाल नागर को दिया जाता है। 'अमृत और विष' उपन्यास के एक कथा लेखन की आत्मकथा है तो दूसरी तरफ पटकथा। लेखन एक कथा का भोक्ता है तो दूसरे उपन्यास का प्रणेता है। उपन्यास लेखन संबंधी सहयोगी प्रयास भी अभी-अभी ही किया गया है। सहयोगी उपन्यास 'ग्यारह सपनों का देश' धर्मवीर भारती द्वारा संपादित है। इसका प्रथम एवं अंतिम अध्याय की रचना भारती ने की है। दूसरे से दसवें अध्याय को उदय शंकर भट्ट, रांगेय राघव, अमृत लाल नागर आदि अन्य लेखकों द्वारा लिखा गया है। उपन्यास लेखन में जीवन क्षेत्र का संकोच भी नया प्रयोग है।

इसमें अनेक वर्षों के जीवन चित्रण के स्थान पर कुछ घंटों या कुछ दिनों का चित्रण किया गया है। यथा –यशपाल के 'बारह घंटे' उपन्यास और अश्क के 'शहर में घूमता आईना' उपन्यास में मात्र बारह घंटे की कथा कही गई है। निर्मल वर्मा के 'वे दिन' में पात्रों के जीवन के तीन दिनों को चित्रित किया गया है। शैली की दृष्टि से भी नए प्रयोग हुए हैं। पूर्व दीप्ति शैली का प्रयोग 'त्यागपत्र' में मनोविश्लेषणात्मक शैली का प्रयोग संन्यासी में डायसी शेली का प्रयोग 'अजय की डायरी' उपन्यास में किया गया है। अत: प्रेमचन्दोत्तर युग में उपन्यास विद्या के क्षेत्र में कई नए प्रयोग किए गए हैं।

प्रेमचन्दोत्तर युग

प्रेमचन्द के बाद हिन्दी उपन्यास कई मोड़ों से गुजरता हुआ दिखाई पड़ता है। सन् '40 से' 50 तक की कालावधि के उपन्यास मुख्यत: फ्रॉयड और मार्क्स की विचारधारा से, सन् '50 से' 60 तक के उपन्यास प्रयोगात्मक विशेषताओं से और सन् '60 से अब तक के उपन्यास आधुनिकतावादी विचारधारा से प्रभावित हैं। प्रेमचन्द समाज की स्वीकृत मान्यताओं के भीतर संघर्ष करते रहे। किन्तु प्रथम महायुद्ध के बाद पश्चिम के पुराने मूल्यों का तेजी के साथ विघटन हुआ। फ्रॉयड ने काम-सम्बन्धी मान्यताओं को नैतिकता-अनैतिकता से परे बताकर सामाजिक नैतिकता के आगे प्रश्नचिह्न लगा दिया। पूँजीवादी समाज में व्यक्ति-चेतना उभर कर सामने आई। मार्क्स ने समष्टि चेतना पर विशेष बल दिया। हिन्दी उपन्यास इन विचारधाराओं से प्रभावित हुए बिना न रहा। फलस्वरूप सन् '50 के बाद उपन्यासकारों का ध्यान व्यक्ति और समाज

की मुक्ति की ओर गया। किन्तु स्वतंत्रता के बीस वर्षों बाद भी मानव जीवन में एक विशेष प्रकार की कुण्ठा, निराशा, ह्रास, अर्थहीनता आदि की अनुभूति होने के कारण सन् '60 के बाद के उपन्यासों में इन्हीं मनोदशाओं का चित्रण किया गया। प्रेमचन्द-युग में ही जैनेन्द्र ने फ्रॉयड से प्रभावित होकर मानव-चरित्र के स्थान पर व्यक्ति-चरित्र की सृष्टि की थी। किन्तु सन् '51 में अज्ञेय के 'शेखर : एक जीवनी' के प्रकाशन के साथ ही हम उपन्यास की दिशा में एक नया मोड़ पाते हैं। अज्ञेय के तीन उपन्यास प्रकाशित हुए हैं–'शेखर : एक जीवनी' (दो भाग), 'नदी के द्वीप' और 'अपने-अपने अजनबी'। पहले दो उपन्यासों में व्यक्तिपात्रों के मनो विश्लेषण की प्रवृत्ति है। तीसरी रचना में कोई सम्बद्ध कथानक नहीं है। अज्ञेय ने उपन्यास को पात्र-प्रधान बनाया और सामाजिक मानव के स्थान पर व्यक्ति-मानव के अन्तर्मन का विश्लेषण करने का यत्न किया।

इलाचन्द्र जोशी को उपन्यासकार के रूप में प्रतिष्ठा 'संन्यासी' (1914) उपन्यास-प्रकाशन के द्वारा मिली। इस उपन्यासो में ही पहली बार मनोविश्लेषणात्मक पद्धति की विकृति देखी जा सकती है। 'संन्यासी' के अतिरिक्त 'पर्दे की रानी' (1941), 'प्रेत और छाया' 'निर्वासित', 'मुक्तिपथ' (1950) 'सुबह के भूले' (1957), 'जिप्सी', 'जहाज का पंछी' (1955) और 'ऋतुचक्र' उपन्यास प्रकाशित हो चुके हैं। उनके उपन्यासों की विकास-यात्रा में 'मुक्तिपथ' एक नए मोड़ की सूचना देता है। 'मुक्तिपथ' के पूर्ववती उपन्यास ग्रन्थियों के विश्लेषण पर आधारित है। उनकी भाव-भूमियाँ एकांगी, संकुचित और छोटी हैं। 'मुक्तिपथ' तथा उसके बाद जो उपन्यास लिखे गये, उनमें परिदृष्य का विस्तार और सामाजिकता का समावेश दिखाई पड़ता है।

प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासकारों में अपनी विशिष्ट विचारधारा, ईमानदारी और सर्जनात्मक शक्ति के कारण यशपाल ने स्वतंत्र व्यक्तित्त्व बना लिया। ऐतिहासिक दृष्टि से यशपाल को प्रेमचन्द उपन्यास-परम्परा की अगली कड़ी के रूप में माना जा सकता है। यशपाल का प्रारम्भिक जीवन क्रांतिकारी दल से सम्बद्ध था। वे इसके सक्रिय सदस्य थे, इसके लिए उन्हें चौदह वर्ष का कारावास भी मिला। कारावास काल में उनका सारा समय अध्ययन-मनन में व्यतीत हुआ। इसी समय मार्क्सवादी विचारधारा का इन पर गहरा प्रभाव पड़ा। साहित्य के क्षेत्र में उतरने पर उन्होंने इसी विचारधारा को आगे बढ़ाया। उनके उपन्यास हैं : 'अमिता', 'दिव्या', 'दादा कामरेड' (1941), 'देशद्रोही' (1943), 'पार्टी कामरेड'

(1946), 'मनुष्य के रूप में' (1949), 'झूठा सच' : प्रथम भाग, 'वतन और देश' (1958), दूसरा भाग 'देश का भविष्य' (1960)।

रामेश्वर शुक्ल 'अंचल' यशपाल की परम्परा में आते हैं। चढ़ती धूप, नई इमारत, उल्का और मरुप्रदीप उनके प्रसिद्ध उपन्यास हैं। पर इनमें द्वन्द्वात्मक चेतना पूरे तौर पर नहीं उभरती। भगवतीचरण वर्मा प्रेमचन्दीय परम्परा के उपन्यासकार हैं। सन् '50 तक यह परम्परा चलती रही। प्रेमचन्द ने अपने साहित्य में समसामयिक समस्याओं को चित्रित किया और वर्मा जी परिवर्तमान ऐतिहासिक धारा को मध्यमवर्ग के माध्यम से अंकित करते रहे हैं : मुख्यत: '40 के बाद लिखे गये उपन्यासों में। इनमें टेढ़े-मेढ़े रास्ते', 'आखिरी दाँव' 'भूले-बिसरे-चित्र', 'सामर्थ्य और सीमा', 'सबहिं नचावत राम गुसाईं', मुख्य हैं। उपेन्द्रनाथ अश्क को प्रेमचन्द-परम्परा का उपन्यासकार कहा जाता है। पर वे समग्र रूप से प्रेमचन्दीय परम्परा से नहीं जुड़ पाते। जहाँ तक मध्यवर्गीय परिवारों और व्यक्तियों की परिस्थितियों, समस्याओं और परिवेश का सम्बन्ध है, वहाँ तक वे प्रेमचन्दीय परम्परा के उपन्यासकार हैं। प्रेमचन्द की अपेक्षा अधिक यथार्थवादी, इसलिए प्रामाणिक भी। प्रेमचन्द के वैविध्य और जीवन-चेतना का इनमें अभाव है। 'सितारों के खेल' के बाद इनके कई उपन्यास प्रकाशित हुए हैं : गिरती दीवारें, 'गर्म राख' 'बड़ी-बड़ी आँखें', पत्थर अल पत्थर', 'शहर में घूमता आइना' और 'एक नन्हीं किन्दील'। 'गिरती दीवारें' इनका सर्वोत्तम उपन्यास है। गर्म राख, बड़ी-बड़ी आँखें, पत्थर अल पत्थर सुगठित उपन्यासों की श्रेणी में रखे जायेंगे। अन्तिम दोनों उपन्यास 'गिरती दीवारें' का विस्तार हैं।

प्रेमचन्द के उपन्यासों में सामाजिक समस्याओं के आवर्त में पड़ा व्यक्ति कभी अपने को उनके अनुरूप ढालता है, कभी उनसे आहत होता है, कभी छोटे-मोटे सुधारों के द्वारा समाज का परिष्कार करता है। वहाँ समाज प्रधान है, व्यक्ति गौण। मनोवैज्ञानिक उपन्यासकारों ने व्यक्ति की सनकों, अन्तर्द्वन्द्वों को समाज से अधिक महत्व दिया है।

अमृतलाल नागर के उपन्यासों में व्यक्ति और समाज के सापेक्षिक सम्बन्धों को चित्रित किया गया है। 'नवाबी मसनद', 'सेठ बाँकेमल', 'महाकाल', 'बूँद और समुद्र', शतरंज के मोहरे', 'सुहाग के नूपुर', 'एकदा नैमिषारण्ये' और 'मानस का हंस' उनके प्रकाशित उपन्यास हैं। अपने विस्तार और गहराई के कारण 'बूंद और समुद्र' विशेष महत्वपूर्ण बन पड़ा है।

'50 के बाद के दशक को आंचलिक उपन्यासों का दशक मान लिया जाता है। वस्तुतः इस समय के उपन्यासों वैयक्तिकता और सामाजिकता दोनों हैं। वैयक्तिक इसलिए कि वह पुराने नैतिक मूल्यों से मुक्त होकर खुले वातावरण में सांस लेना चाहता है, सामाजिक इसलिए कि अभी समाज को आर्थिक दृष्टि से स्वतंत्र होने में लम्बी मंजिल तय करनी थी। देश के विभाजन के कारण जो नई समस्याएं उत्पन्न हुई उन्हें भी औपन्यासिक रूप दिया गया। प्रवृत्तिक दृष्टि से इस दशक के उपन्यासों को तीन प्रवृत्तियों में बाँटा जा सकता है : ग्रामांचल के उपन्यास, मनोवैज्ञानिक उपन्यास और प्रयोगशील उपन्यास।

ग्रामांचल को ही समग्रता से चित्रित करने वाले उपन्यासों को ही आंचलिक कहकर आंचलिकता के अर्थ को सीमित कर दिया जाता है। फणीश्वरनाथ रेणु के 'मैला आंचल' के प्रकाशन के पूर्व नागार्जुन का 'बलचनमा' (1952) प्रकाशित हो चुका था। पर इसे आंचलिक नहीं कहा गया। यद्यपि इसमें आंचलिकता का कम रंग नहीं है। नागार्जुन के उपन्यासों में दरभंगा-पूर्णिया जिले का राजनीतिक-सांस्कृतिक साक्षात्कार होता है। इनका मार्क्सवादी दृष्टिकोण गाँव की कहानी पर आरोपित प्रतीत होता है। कथानक स्वयं विकसित न होकर पूर्वनिर्धारित योजना के अनुसार चलता है। इसके फलस्वरूप उपन्यासों की सर्जनात्मकता शिथिल और अवरुद्ध हो जाती है। 'बलचनमा', 'रतिनाथ की चाची', 'नई पौध', 'बाबा बटेसरनाथ', 'दुखमोचन', 'वरुण के बेटे' आदि उनके प्रकाशित उपन्यास हैं।

फणीश्वरनाथ रेणु के उपन्यासों को ही सर्वप्रथम आंचलिक उपन्यास की संज्ञा दी गयी क्योंकि स्वयं रेणु ने ही 'मैला आंचल' को आंचलिक उपन्यास कहा। 'मैला आंचल' के प्रकाशन के बाद 'परती परिकथा' प्रकाशित हुआ।

उदयशंकर भट्ट का 'सागर, लहरे और मनुष्य' (1955) में बम्बई के पश्चिमी तट पर बसे हुए बरसोवा गाँव के मछुओं की जीवन-गाथा वलणत है। रांगेय राघव का 'कब तक पुकारूँ' में जरायम पेशा नटों की जिन्दगी को उजागर किया गया है। नट-जीवन और आधुनिक जीवन की असंगतियों को चित्रित करते हुए लेखक ने उज्ज्वल भविष्य का संकेत किया है कि शोषण की घुटन सदैव नहीं रहेगी। भैरव प्रसाद गुप्त का 'सत्ती मैया का चौरा' मार्क्सवादी दृष्टिकोण से लिखा गया ग्रामांचल का ही उपन्यास है।

सातवें दशक में भी ग्रामांचल को आधार बना कर राही मासूम रजा, शिवप्रसाद सिंह, रामदरश मिश्र आदि ने उपन्यास लिखे। राही का 'आधा गाँव'

शिया मुसलमानों की जिन्दगी पर लिखा गया है और शिवप्रसाद सिंह की 'अलग-अलग वैतरणी' में आधुनिकता-बोध को सन्निविष्ट करने का प्रयास किया गया है। किन्तु इनके मूल स्वर त्रासद (ट्रेजिक) हैं। रामदरश मिश्र के 'जल टूटता हुआ' तथा 'सूखता हुआ तालाब' और देवेन्द्र सत्यार्थी का 'रथ के पहिये' ग्रामांचलीय उपन्यास हैं। श्रीलाल शुक्ल का 'राग दरबारी' पारंपरिक अर्थ में उपन्यास नहीं हैं। यद्यपि इसकी कथा ग्रामांचल से सम्बद्ध है। फिर भी यह आंचलिक नहीं है। रिपोर्ताज शैली में लिखे गये इस उपन्यास में स्वतंत्र देश की नवीन व्यवस्थाओं का मखौल उड़ाया गया है।

देवराज छठे दशक में मुख्यत: मनोवैज्ञानिक उपन्यासकार की श्रेणी में आते हैं। धर्मवीर भारती का 'गुनाहों का देवता' मनोविज्ञान पर आधारित उपन्यास है, यद्यपि वह पाँचवें दशक में प्रकाशित हुआ। भारती और देवराज दोनों के उपन्यासों का वातावरण महाविद्यालयी है। 'गुनाहों का देवता' अपनी कैशोर्य भावुकता तथा रूमानियत के कारण काफी लोकप्रिय हुआ। 'पथ को खोज', 'बाहर भीतर', 'रोड़े और पत्थर', 'अजय की डायरी' और 'मैं, वे और आप' देवराज के उपन्यास हैं। इन सभी उपन्यासों की मूलवर्तिनी धारा है : विवाह के बाहर का प्रेम।

मन्मथनाथ गुप्त, भैरवप्रसाद गुप्त, अमृतराय, लक्ष्मीनारायण लाल, राजेन्द्र यादव आदि नवीन सामाजिक चेतना के उपन्यासकार हैं। भैरवप्रसाद गुप्त के 'मशाल', 'गंगा मैया', 'सती मैया का चौरा', अमृतराय के 'बीज', 'नागफनी का देश', 'हाथी के दाँत' संघर्ष और प्रगति के मिथक के सूचक हैं। लक्ष्मीनारायण लाल के 'धरती की आँखें', काले फूलों का पौधा', रूपाजीवा' में उपर्युक्त स्तर की सामाजिक चेतना को उभारने की कोशिश है। 'काले फूलों का पौधा' चरित्र-चित्रण, संस्कृति-संघर्ष और नव्यतर तकनीक के कारण विशिष्ट बन पड़ा है।

'प्रेत बोलते हैं', 'सारा आकाश', 'उखड़े हुए लोग' और 'एक इंच मुस्कान' राजेन्द्र यादव के उपन्यास हैं। 'एक इंच मुस्कान' यादव और मन्नू भंडारी का सहयोगी लेखन है। इसमें खंडित व्यक्तित्त्व वाले आधुनिक व्यक्तियों की प्रेम-त्रासदी (ट्रेजिडी) है। आधुनिक जीवन की इस त्रासदी को अंकित करने के कारण यह उपन्यास यादव के अन्य उपन्यासों की अपेक्षा कहीं अधिक समकालीन और महत्वपूर्ण है।

कविता में नए प्रयोगों के साथ-साथ कहानी-उपन्यास आदि में भी नये प्रयोग हुए हैं। अब कहानी का तत्त्व क्षीण हो गया है, कथानक का पुराना रूप

विघटित होकर नया हो गया है। अब जिन्दगी पूरे तौर पर विश्लेषित न होकर चेतना प्रवाह, स्वप्न सृष्टि के साथ जुड़ गई है, प्रतीक, कालांतर आदि के द्वारा उपन्यासों में नए शिल्प के दर्शन हुए हैं। इस प्रयोग-संपर्क में प्रभाकर माचवे के परन्तु', 'साँचा' और आभा', भारती का 'सूरज का सातवाँ घोड़ा', गिरधर गोपाल का 'चाँदनी रात के खंडहर', सर्वेश्वरदयाल सक्सेना का 'सोया हुआ जल' नरेश मेहता का 'डूबते मस्तूल' आदि अनेक प्रकार की विसंगतियों से भरे हुए प्रयोगशील उपन्यास हैं। उद्योगीकरण, महानगरीय सभ्यता, बदले हुए मानसिक परिवेश और भ्रष्ट व्यवस्था के कारण आज व्यक्ति यांत्रिक, अजनवी, अकेला या विद्रोही हो गया है। इसकी अभिव्यक्ति मुख्यत: साठोत्तरी साहित्य में होती है, भले ही उपन्यास, नाटक की अपेक्षा इसका तेवर कविता और कहानी में ही अधिक तेजस्वितापूर्ण दिखाई देता है। इस प्रकार के उपन्यासों को तीन श्रेणियों में बाँटा जा सकता है :

(1) यौन विकृतियों में पनाह खोजने वाले उपन्यास : मोहन राकेश के 'अन्धेरे बन्द कमरे', 'न आने वाला कल' और 'अन्तराल', निर्मल वर्मा का 'वे दिन', महेन्द्र भल्ला का 'एक पति के नोट्स' राजकमल चौधरी के 'मछली मरी हुई' और 'शहर था शहर नहीं था', श्री कान्त वर्मा का 'दूसरी बार', ममता कालिया का 'बेघर', गिरिराज किशोर का 'यात्राएं' मणिमधुकर का 'सफेद मेमने', कृष्णा सोबती का' सूरजमुखी अंधेरे के' आदि उपन्यास इसी कोटि के हैं। इन उपन्यासों के प्राय: सभी नायक मानसिक दृष्टि से अनिर्णयात्मक, आत्म-निर्वासित और नपुंसक हैं। वे मुक्त होने की प्रक्रिया में ऐसी उलझन में फँस जाते हैं, जहाँ से उन्हें निष्कृति नहीं मिलती। इन उपन्यासों से आधुनिकता का जो चित्र प्रस्तुत किया गया है, उसमें स्त्री-शरीर 'नशे' या 'ड्रग' का काम करता है। राकेश को छोड़कर शेष उपन्यासों में प्रामाणिकता की भी कमीं है।

(2) दी हुई मानवीय स्थितियों में बेमेल व्यक्तियों को चित्रित करने वाले उपन्यास : इस श्रेणी में उषा प्रियंवदा का 'रुकोगी नहीं राधिका' और मन्नू भंडारी के 'आय बंटी'की गणना की जाएगी। इन उपन्यासों की आधार भूमियां ठोस और प्रामाणिक हैं।

(3) व्यवस्था की घुटन को अपनी नियति मानने या उसके विरुद्ध युद्ध करने वाले उपन्यास : नरेश मेहता का 'वह पथ बन्धु था', गोविन्द मिश्र का वह 'अपना चेहरा', बदीउज्जमा का 'एक चूहे की मौत', काशीनाथ सिंह का 'अपना मोर्चा, नरेन्द्र कोहली का 'आश्रितों का विद्रोह' आदि उपन्यास इस कोटि

के अन्तर्गत आते हैं। लक्ष्मीकान्त वर्मा ने भी कई प्रयोगशील और प्रतिबद्ध उपन्यास लिखे हैं।

इनके अतिरिक्त गिरिराज किशोर का 'जुगलबन्दी' और 'ढाई आखर', लेख बख्शी का 'वैशाखियों वाली इमारत', देवराज उपाध्याय का 'दूसरा सूत्र' और 'अजय की डायरी' कमलेश्वर का 'डाक बंगाला' और 'काली आंधी' और मन्नू भंडारी का 'महाभोज' श्री लाल शुक्ल का 'मकान' शिवप्रसाद सिंह का 'नीला चाँद' आदि उपन्यास उल्लेखनीय हैं। रमेश चौधरी आरिगमूडि, ओंकार शरद, मार्कण्डेय, मुद्राराक्षस, आनन्द प्रकाश चौबे, श्रीलाल शुक्ल, मोहन सिंह सेंगर, सत्येन्द्र गुप्त, राजेन्द्र अवस्थी, हंसराज रहबर, रामदरश मिश्र, मनहर चौहान, शिवप्रसाद सिंह, राही मासूम रजा, शिवानी आदि उपन्यास के क्षेत्र में अच्छा कार्य कर रहे हैं। यूरोप के पुराने और नये उपन्यासों के अनुवाद का कार्य भी हो रहा है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि साठोत्तरी हिन्दी उपन्यास का युग प्रयोग का युग रहा। जीवन-मरण सम्बन्धी पुराने सभी मत-मतान्तरों को चुनौती दी गई है। महानगरीय अकेलापन, अत्यधिक निकटता में अजनबीपन, विसंगति, संत्रास यांत्रिक तटस्थता आदि का चित्रण किया गया है। बाह्य यथार्थ की अपेक्षा आन्तरिक यथार्थ को अधिक महत्ता दी गई है। सर्वेश्वर दयाल सक्सेना का 'सोया हुआ लाल', लक्ष्मी नारायण लाल का 'हरा समन्दर गोपी चन्दर' जैसे आधुनिक उपन्यासों में कथा का ह्रास हुआ है कथानक का नहीं। उपन्यासों में पीढ़ियों का वैचारिक मतभेद, पति-पत्नी, भाई-बहन, माँ-बाप के सम्बन्ध में दोहरा व्यक्तित्त्व, अन्तः-बाह्य संघर्ष, मिल मालिक और मजदूरों का संघर्ष, कृषकों का जागरूक होना पुलिस की धाँधलियाँ, महाजनों के धन शोषण के तरीके महानगर, कस्बे और गाँवों के परिवर्तन को समग्रता में रेखांकित किया गया है। उपन्यासों में पूर्वदीप्ति शैली, आत्म कथात्मक शैली, संकेत शैली, प्रतीक शैली द्वारा मानवीय संवेदना को उभारा गया है। विषय और शैली दोनों दृष्टियों से आज के उपन्यास समृद्ध दिखाई देते हैं।

उपन्यास के तत्त्व

संपूर्ण उपन्यास की कहानी जिन उपकरणों से मिलकर बनती है वे कथावस्तु कहलाते हैं। यह उपन्यास की आधारभूत सामग्री है जो लेखक अपनी आवश्यकतानुसार विस्तृत जीवन क्षेत्र से चुनता है। इसके चुनाव में लेखक के

लिए पहली आवश्यकता यही होती है कि वे जीवन के ऐसे मार्मिक एवं रोचक प्रसंगों, घटनाओं और परिस्थितियों का चयन करे जो रुचिकर और प्रेरणाप्रद हो। यथार्थ जीवन से कथावस्तु को चुने जाने के कारण उपन्यासकार को यह ध्यान रखना चाहिए कि वह कपोल-कल्पित न लगे तथा उसमें विश्वसनीयता एवं प्रामाणिकता की पुष्टि हो। कथानक ही उपन्यास की वह पूरी प्रक्रिया है जिस पर उपन्यास की विशेषता निर्भर करती है।

कथानक चाहे जहाँ से भी ग्रहण किया जा सकता है –इतिहास, पुराण, जीवनी, अनुश्रुति, विज्ञान, राजनीति इत्यादि। लेकिन उपन्यासकार का प्रथम कर्त्तव्य यह है कि वह अपनी कथावस्तु का निरुपण करते समय जीवन के प्रति सच्चा और ईमानदार हो अर्थात उसकी कृति में मानव-जीवन और मानव स्वभाव का सच्चा चित्र प्रस्तुत किया जाना चाहिए। सार्वभौमता उसका अनिवार्य गुण है। जब तक वह मानव-जीवन के संघर्षों, उसकी कामनाओं और आकांक्षाओं, उसके राग-द्वेषों, अभावों आदि का चित्रण नहीं करेगा, तब तक उसकी कृति का महत्व नहीं होगा। आभिजात्य कुलों और संपन्न परिवारों का जीवन ही सघन, घटना-संकुल, संघर्षशील और नैतिक दृष्टि से महत्वपूर्ण नहीं होता, गरीब, साधारण व्यक्तियों के जीवन में भी ये सब बातें पायी जाती हैं, अतः उपन्यास का विषय साधारण व्यक्ति और उनका जीवन भी हो सकता है, उपन्यासकार के लिए कथावस्तु चुनने की एकमात्र कसौटी यह है कि वह जीवन को समग्र और स्वाभाविक रूप में प्रस्तुत करे।

कथा-प्रसंग चयन के बाद लेखक को चाहिए कि वह अपनी कथा-सामग्री को क्रमबद्ध, सुसंबद्ध रूप में सुनियोजित करे। कथा-नियोजन इस प्रकार होनी चाहिए कि पाठक की उत्सुकता और जिज्ञासा आरम्भ से लेकर अंत तक बनी रहे। कथा सूत्रबद्ध होनी चाहिए तथा सभी प्रासंगिक और अवांतर कथाएँ मुख्य कथा से जुड़ी होनी चाहिए। कथानक में तीन गुणों का होना आवश्यक है –रोचकता, संभाव्यता और मौलिकता। इस तरह कहा जा सकता है कि कथानक रोचक, सुसंबद्ध, गतिशील, उत्साहवर्धक, मौलिक तथा स्वाभाविक जीवन वृत्तियों से पूर्ण होना चाहिए।

पात्र अथवा चरित्र-चित्रण

उपन्यास में पात्र वह मूलशक्ति है जिसके सहारे जीवन यथार्थ या परिस्थितियों का ब्यौरा दिया जाता है। अर्थात उपन्यास के भीतर परिस्थितियों को

धारण करने वाला पात्र कहलाता है। पात्र जितने सजीव और यथार्थ जीवन से सम्बद्ध होंगे, उपन्यास उतना ही आकर्षक होगा। अत: जहाँ तक संभव हो सके सभी पात्रों का सजीव चरित्र-चित्रण होना चाहिए। पात्रों के कार्यों और विचारों का पाठक के मानस पटल पर दीर्घकालिक प्रभाव पड़ना चाहिए। उपन्यासकार की महानता इसी बात पर निर्भर करती है कि उसके पात्र कितने समय तक पाठक के स्मृति पटल पर अंकित रहते हैं, तथा उसकी भावना को किस हद तक प्रभावित करते हैं। वे पात्र जो देशकाल की सीमा पार कर पाठकों के चित्त में स्थायी रूप से बस जाते हैं, अमर पत्र कहलाते हैं, जैसे –हैमलेट, सूरदास, होरी आदि। उपन्यासकार की महानता की एक कसौटी यह भी है कि वह अपनी कृतियों में चरित्र को कितनी विविधता दे सका है, उसके चरित्र-चित्रण की सीमाएं क्या हैं? उसके पात्रों में कितना विस्तार और कितनी गहराई है? इस प्रकार उपन्यासकार के पात्र सृष्टि स्वाभाविक, यथार्थ, सजीव और मनोवैज्ञानिक होने चाहिए।

चरित्र-चित्रण में उपन्यासकार उस प्रभाव को ही अंकित नहीं करता जो बाह्य परिस्थितियों के द्वारा पात्रों पर पड़ता है, प्रत्युत वह पात्रों के अंतर्द्वन्द का भी चित्रण करता है। आजकल उपन्यास में इस प्रकार के अंतर्द्वन्द को ही महत्व दिया जाता है। उपन्यास में चरित्रों का वर्गीकरण कई प्रकार से किया जाता है–

वर्गगत और व्यक्तिगत पात्र –उदाहरण के लिए गोदान में रायसाहब और अज्ञेय का शेखर वर्गगत एवं व्यक्तिगत पत्र है।

आदर्श और यथार्थ चरित्र –आदर्श पात्र में गुणों की प्रधानता होती है जबकि यथार्थ पात्रों में अच्छाई-बुराई दोनों का समन्वय होता है।

स्थिर और गतिशील चरित्र –क्रमश: गोदान का होरी तथा सेवासदन का विनय गतिशील एवं स्थिर पात्र है।

किसी भी उपन्यास में सफल चरित्र-चित्रण के लिए मानव-स्वभाव का सामान्य ज्ञान, मनुष्य के अंतर्मन का परिचय, उसके भावों, विचारों, रागद्वेषों, अन्त:संघर्षों की जानकारी के अतिरिक्त सहानुभूति, कल्पना-शक्ति तथा वर्ग-विशेष की जानकारी अपेक्षित है। घटनाओं और पात्रों के बीच तारतम्यता का होना भी आवश्यक है। घटनाएं ऊपर से थोपी या आकस्मिक प्रतीत न हों, पात्रों की चारित्रिक विशेषताओं से उद्भूत होती प्रतीत हों और पात्र लेखक की कठपुतली-मात्र न होकर स्वतंत्र अस्तित्त्व वाले हों। परिस्थितियाँ पात्रों को एक विशिष्ट दिशा में उन्मुख होने की प्रेरणा दें, तो पात्र परिस्थितियों को बदलने में, घटनाओं को नया

मोड़ देने में समर्थ हों, न तो घटनाएं और कार्य पात्र की प्रकृति और परिस्थिति के प्रतिकूल हों और न पात्र परिस्थितियों से अलिप्त तथा असामान्य प्रतीत हों।

कथोपकथन

उपन्यास में कथोपकथन से तात्पर्य है दो या दो से अधिक पात्रों का परस्पर वार्तालाप। कथोपकथन के प्रमुख उद्देश्य हैं–पात्रों का चरित्र-चित्रण, कथानक के प्रवाह में सहायता प्रदान करना तथा घटनाओं में तीव्र गति का संचार करना।

कथोपकथन जितने पात्रानुकूल, स्वाभाविक, अभिनयात्मक, संक्षिप्त, सरल एवं प्रभावी होंगे, घटनाओं एवं चरित्रों में उतनी ही सजीवता आएगी। चुस्त, चुटीले एवं प्रसंगानुकूल कथोपकथन से कृति में एक विशेष गरिमा का संचार होता है। लेखक का कौशल अन्य बातों में तो परखा ही जाता है, कथोपकथन में खास रूप से परखा जाता है।

यदि उपन्यास के कथोपकथन रोचक, स्वाभाविक, सहज, पात्र और परिस्थिति के अनुकूल हो तो उनसे उपन्यास में नाटक की सी विशदता, सजीवता और यथार्थता आ जाती है। किन्तु कथोपकथन का अधिकाधिक प्रयोग करने के स्थान पर विवेकपूर्ण एवं सोद्देश्य प्रयोग होना चाहिए। यदि लेखक में कुशल कथोपकथन-योजना की क्षमता है, तो वह विश्लेषण, मत प्रतिपादन तथा अपनी ओर से कार्य-कारण-मीमांसा का काम कथोपकथन से ही ले सकता है। कथोपकथन की भाषा ही पात्रनुकूल नहीं होनी चाहिए वरन उसका विषय भी पात्रों के मानसिक धरातल के अनुरूप होना वांछनीय है। लेखक कभी-कभी निजी सिद्धांतों के उद्घाटन और गूढ़ तथा विशेष ज्ञान के प्रदर्शन का मोह संवरण नहीं कर सकते हैं। उन सिद्धांतों के उद्घाटन के लिए वैसे ही पात्रों की सृष्टि होनी चाहिए।

देशकाल-वातावरण

उपन्यास में देशकाल–वातावरण अथवा युग-धर्म की सजीवता भी आवश्यक है। इसी कारण लेखक अपने उपन्यास में युग विशेष और देश विशेष की सामाजिक स्थिति, रीति-रिवाज, आचार-विचार, संस्कृति, सभ्यता और विचारधारा पर प्रकाश डालता है, जिससे उसका उपन्यास वास्तविक और सजीव बन जाए। पात्रों के कथन, क्रिया-कलाप, वेश-भूषा, खान-पान, आचार-विचार सबमें युगधर्म की स्वाभाविकता झलकनी चाहिए। वृन्दावन लाल वर्मा के

ऐतिहासिक उपन्यास और प्रेमचंद के सामाजिक उपन्यास युगधर्म की सजीव झाँकियाँ प्रस्तुत करते हैं।

वस्तुत: उपन्यास मानव-जीवन का चित्रण है, जिसमें प्रधानत: मनुष्य के चरित्र का सजीव वर्णन रहता है। निश्चय है कि मनुष्य का सम्बन्ध अपने युग, समाज, देश और परिस्थितियों से रहता है अथवा मानव के चारित्य की पृष्ठभूमि में देश-काल का चित्रण उसका आवश्यक अंग है। जितनी ही वास्तविक पृष्ठभूमि में चरित्रों को प्रकट किया जायेगा, उतनी ही गहरी विश्वसनीयता का भाव जगाया जा सकता है। इस पृष्ठभूमि के बिना हमारी कल्पना को ठहरने की कोई भूमि नहीं मिलती और न हमारी भावना ही रमती और विश्वास करती है।

परिस्थिति अथवा पृष्ठभूमि का चित्रण दो रूपों में होता है –एक तो समान और अनुकूल रूप में, दूसरे चरित्रों के लिए विषम और प्रतिकूल रूप में। पात्रों और उद्देश्य के अनुरूप उपन्यासकार दोनों ही स्थितियों का चित्रण कर हमारी कल्पना और अनुभूति को सजग करता है। सामाजिक उपन्यासों में तो लेखक प्राय: अपने युग की देखी-सुनी और अनुभूत पृष्ठभूमि देता है और पाठक के समसामयिक होने के कारण उसको जाँचने और विश्वास करने का अवसर रहता है। आगामी युगों के पाठक के लिए तो सामाजिक उपन्यासकार सामाजिक और सांस्कृतिक इतिहास की सामग्री प्रदान करता है। अत: मेरा तो विश्वास यह है कि यदि उपन्यासकार अपने समाज का अत्यंत यथार्थ –यहाँ तक कि ऐतिहासिक यथार्तता को ध्यान में रखकर वास्तविक जीवन का चित्रण करता है, तो वह न केवल साहित्य की सृष्टि करता है, वरन सांस्कृतिक और सामाजिक इतिहास के लिए भी सामग्री तैयार करता है या पृष्ठभूमि बनता है। सामाजिक उपन्यासकार की अपेक्षा अधिक कठिनाई ऐतिहासिक उपन्यासकार की युग की पृष्ठभूमि का चित्रण करने में उपस्थित होती है।

इस तरह कथानक को वास्तविकता का आभास देने के साधनों में वातावरण मुख्य है। उसके लिए स्थानीय ज्ञान अत्यंत आवश्यक होता है। वर्णन में देश विरुद्धता और कल-विरुद्धता के दोष नहीं आने चाहिए। देश-काल-चित्रण का वास्तविक उद्देश्य कथानक और चरित्र का स्पष्टीकरण है। अत: उसे इसका साधन ही होना चाहिए, स्वयंसाध्य न बन जाना चाहिए। प्राकृतिक दृश्यों का संयोजन यथार्थता का भी आभास देता है और भावों को उद्दीप्त भी करता है। अत: स्थानिक विशेषताओं का ध्यान रखते हुए प्रकृति की भावानुकूल पृष्ठभूमि देना उपन्यास की रोचकता की वृद्धि में सहायक होता है।

भाषा-शैली

वस्तुतः उपन्यासकार भाषा-शैली के माध्यम से ही अपनी अनुभूतियों को अभिव्यंजित करता है। भाषा में सरलता, स्वाभाविकता, सजीवता, भावानुरुपता, प्रभावोत्पादकता, स्वाभाविक अलंकरण, लाक्षणिक और व्यंजक प्रयोग, मुहावरे, लोकोक्तियाँ आदि कलात्मक प्रयोग व भाषा-शैली, प्रत्यक्ष शैली, पत्र-शैली, पूर्व-दीप्ति शैली में से किसी एक शैली का प्रयोग कर सकता है।

जितनी स्वाभाविक अर्थात पात्रनुकूल और स्थिति के अनुरूप शैली होगी, उतना ही उसका प्रभाव पड़ेगा। उपन्यास की शैली संकेतात्मक न होकर विवृतात्मक होती है, क्योंकि उसे पूर्ण वातावरण और उसमें रस और भावों की सृष्टि करनी होती है। अतः पात्र की शिक्षा, संस्कृति और मानसिक धरातल के अनुरूप ही उसकी भाषा होनी चाहिए। इसके लिए पांडित्यपूर्ण, व्यंग्ययुक्त भाषा से लेकर ठेठ प्रादेशिक और ग्राम्य भाषा तक का प्रयोग यथावश्यक रूप में किया जाता है। शैली के सम्बन्ध में सामान्य-रूप से ये बातें ध्यान में रखने पर भी एक उपन्यासकार की शैली दूसरे से भिन्न होती है। प्रत्येक का अपना निजी अनुभव-क्षेत्र, वातावरण, संस्कार एवं शिक्षा होती है, अतः जीवन को देखने और उसको चित्रित करने के अपने निजी ढंग हैं। निजीपन के होते हुए भी, स्वाभाविकता और प्रभाव शैली की विशेषताएँ होनी चाहिए।

उद्देश्य

साहित्य की सभी विधाओं का उद्देश्य आनंद प्रदान करना है। उपन्यास भी उससे वंचित नहीं है। साहित्य आनंद प्रदान करता है, किन्तु वह सस्ते मनोरंजन का साधन नहीं बन सकता। उपन्यासकार को अपने उद्देश्य की अभिव्यक्ति इस प्रकार करनी चाहिए कि वह उपदेशात्मक न दिखे। बल्कि पाठक अपनी बुद्धि एवं विवेक के अनुसार निष्कर्ष निकाले, उपन्यास का गठन इस प्रकार से होना चाहिए। उपन्यास के उद्देश्य के सन्दर्भ में प्रेमचंद ने कहा है कि–

"उपन्यास में युगीन समस्याओं का चित्रण करना ही मूल उद्देश्य होना चाहिए। जिससे मनुष्य की मौलिक प्रवृत्तियों का संघर्ष निभता दिखाई पड़ता है।" अतः मनुष्य के अनुभव की गहराई और उसे समृद्ध करने का सार्थक प्रयत्न किसी भी उपन्यास का सार्थक उद्देश्य माना गया है।

कहा जा सकता है कि उपर्युक्त सभी तत्त्वों के प्रयोग से ही उपन्यासकार अपने उद्देश्य में सफलता पा सकता है। निर्मल वर्मा के शब्दों में–

"उपन्यास का गठन लेखक तैयार नहीं करता, स्वयं उसकी दृष्टि उसे निर्धारित करती है –जैसे नदी पहले अपना पाट तैयार करके नहीं बहती, स्वयं बहने के दौरान उसका पाट बनता जाता है।"

चूँकि आधुनिकता बताती है कि अस्तित्त्व हमेशा संघर्ष से बनती है इसीलिए उपन्यासकार यह समझता है कि जीवन की वास्तविकता सनातन और शाश्वत भाव में नहीं अपितु संघर्ष करते हुए मूल्यों की रचना करने में है। अतः उपन्यास का यथार्थ के साथ अनिवार्य रिश्ता माना गया है। उपन्यास में व्यक्ति और समाज को जितनी सफलतापूर्वक चित्रित किया जाता है उतना किसी भी अन्य साहित्यिक विधा के द्वारा नहीं। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से भी उपन्यास को अद्वितीय सफलता प्राप्त हुई है। यही कारण है कि उपन्यास आधुनिक जीवन का महाकाव्य बन गया है।

हिंदी उपन्यास की आरम्भिक आलोचना

हिंदी आलोचना अपने आरम्भिक दौर से ही कविता केंद्रित रही है। गद्य की अन्य विधाओं के आविर्भाव के साथ आलोचना का भी आविर्भाव और विकास हुआ। यह महत्वपूर्ण और दिलचस्प बात है कि जो हिंदी आलोचना अपने केन्द्र में कविता को रख कर विकसित हुई, उसकी शुरूआत नाट्यलोचन से हुई थी। भारतेन्द्र हरिश्चन्द्र द्वारा 1983 में लिखी गई संक्षिप्त पुस्तिका 'नाटक अथवा दृश्य काव्य से हिंदी आलोचना' की शुरूआत मानी जाती है। भारतेन्दु युग वास्तव में गद्य विधाओं की उत्पत्ति के संदर्भ में उर्वर काल माना जाएगा। भारतेन्दु युग से लेकर प्रेमचन्द्र युग तक कथा साहित्य का जोरदार विकास हुआ। उसमें उपन्यास विधा के विकास की चर्चा महत्वपूर्ण हो जाती है। यह दौर हिंदी उपन्यास के जासूसी, सुधारवादी, तिलस्मी, अय्यारी दुनिया के बदलने का भी दौर है, क्योंकि प्रेमचंद ने अपने उपन्यासों से सामाजिक यथार्थ का जो रास्ता तैयार किया उस पर हिंदी उपन्यास विधा को दूर तक जाना था। जहां तक उपन्यास आलोचना का सवाल है–''बालकृष्ण भट्ट से लेकर आचार्य रामचन्द्र शुक्ल तक प्रायः सभी आलोचकों ने उपन्यास पर भी लिखा था, भले ही अनुपात की दृष्टि से बहुत कम हो या फिर उपन्यास की आलोचना के संदर्भ में उसका वैसा ऐतिहासिक मूल्य न हो जैसा मराठी में विश्वनाथ काशीनाथ राजवाड़े (1863–1926) के 'उपन्यास' शीर्षक से लिखित एक लंबे निबंध का है। जिसमें यूरोपीय उपन्यास के सन्दर्भ में रोमांटिक और यथार्थवादी उपन्यासों की मीमांसा की गंभीर

चर्चा की है।" वास्तव में रामचन्द्र शुक्ल का उपन्यास संबंधी मूल्यांकन कई संदर्भो में हिंदी कथा आलोचना को दिशा प्रदान करने वाला था। रामचन्द्र शुक्ल की आलोचना दृष्टि की सीमाएं कबीर आदि के मूल्यांकन को लेकर भले ही रही हों, पर उपन्यास के संदर्भ में लिखते हुए, अपने आलोचकीय विवेक से जिस तरह उन्होंने देवकीनन्दन खत्री और किशोरी लाल गोस्वामी को अलगाया, निश्चित रूप से आलोचना की उनकी यह दृष्टि हिंदी कथा आलोचना को एक सूत्र मुहैया कराती है। देवकीनंदन खत्री के उपन्यासों के संदर्भ में लिखते हुए वे कहते हैं कि ''इनके उपन्यासों का लक्ष्य केवल घटना वैचित्त्य रहा, रस संचार, भावविभूति या चरित्र चित्रण नहीं। ये वास्तव में घटना प्रधान कथानक या किस्से हैं, जिनमें जीवन के विविध पक्षों के चित्रण का कोई प्रयत्न नहीं, इससे ये साहित्य की कोटि में नहीं आते।'' इसके बरक्स वे किशोरी लाल गोस्वामी के संदर्भ में लिखते हैं कि ''पंडित किशोरी लाल गोस्वामी जिनकी रचनाएं साहित्य की कोटि में आती हैं। इनके उपन्यासों में समाज के कुछ सजीव चित्र, वासनाओं के रूप रंग, चित्ताकर्षक वर्णन और थोड़ा बहुत चरित्र-चित्रण भी अवश्य पाया जाता है।"

इस प्रकार शुक्ल जी लोकप्रिय साहित्य और शुद्ध साहित्य के फर्क को जिस तरह अपनी आलोचकीय प्रतिभा से स्पष्ट कर रहे थे वह महत्वपूर्ण था। उनके लिए साहित्यिक कोटि का उपन्यास होने के लिए उसमें जीवन के विविध पक्षों का आना जरूरी था, वे चमात्मकारवादी, अयथार्थवादी उपन्यासों को, जिनका समाज की धड़कन से कोई खास सरोकार नहीं था, साहित्य की कोटि में ही मानने से ही इनकार कर दिया। यह हिंदी कथा आलोचना के आरम्भिक दौर की, सबसे महत्वपूर्ण बात थी। इसके साथ ही शुक्ल जी ने आधुनिक ढंग के उपन्यासों की विशेषता बताते हुए यह भी प्रतिपादित कर दिया था कि ये नये ढंग के उपन्यास पुरानी कथा–कहानी से अपने विशिष्ट गुणों के साथ अलग हो जाते हैं। वे लिखते हैं कि ''यूरोप में जो नए ढंग के कथानक नावेल के नाम से चले और बंगभाषा में आकर 'उपन्यास' कहलाए (मराठी में वे कादम्बरी कहलाने लगे) वे कथा के भीतर की कोई भी परिस्थिति आरम्भ में रखकर चल सकते हैं और उसमें घटनाओं कीशृखंला लगातार सीधी न जाकर इधर-उधर और शृंखलाओं से गुंफित होती चलती है और अंत में जाकर सबका समाहार हो जाता है। घटनाओं के विन्यास की यह वक्रता या वैचित्त्य उपन्यासों और आधुनिक कहानियों की वह प्रत्यक्ष विशेषता है, जो उन्हें पुराने ढंग की कथा कहानियों से अलग करती है।''

अगर हम शुक्ल जी से कुछ आगे बढ़े तो हमें तीन नाम पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी, इलाचन्द्र जोशी तथा देवराज उपाध्याय का दृष्टिगत होता है, जो कथा आलोचना में अपने विशेष आलोचकीय समझ के साथ उपस्थित दिखाई देते हैं। बख्शी जी कथालोचना के क्षेत्र में अपनी दो पुस्तकों से चर्चित हुए, वे अपनी पहली पुस्तक 'विश्व-साहित्य' के माध्यम से भारतीय पाठकों की लिए विश्वसाहित्य की खिड़की खोल देते हैं। इस किताब में वे विश्व साहित्य के समानांतर भारतीय साहित्य के मूल्यांकन की तुलनात्मक पद्धति की शुरूआत करते हैं। उनकी दूसरी पुस्तक 'हिंदी कथा साहित्य' जो 1954 में प्रकाशित हुई, कथालोचना के क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण हस्तक्षेप थी। ''लोकप्रियता बनाम कलात्मकता के द्वंद्व में बख्शी जी लोकप्रियता की उपेक्षा नहीं करते, इसीलिए आचार्य रामचन्द्र शुक्ल से भिन्न वे देवकीनन्दन खत्री के चमत्कारिक प्रभाव को गहराई से रेखांकित कर पाने में सफल हुये हैं।" उपन्यास की आलोचना में मनोवैज्ञानिक प्रभाव को रेखांकित करने वाले आलोचकों में इलाचन्द्र जोशी और देवराज उपाध्याय का नाम प्रमुख है। इलाचन्द्र जोशी की आलोचकीय समझ मनोविज्ञान से इस तरह प्रभावित है कि वे सामाजिक यथार्थवादी उपन्यासों के मूल्यांकन में चूक कर जाते हैं इसीलिए उपन्यास के आस्वादक कम छिद्रान्वेषी ज्यादा दिखते हैं, देवराज उपाध्याय ने भी मनोविज्ञान के प्रभाव में उपन्यास विधा पर लिखा, जैनेन्द्र के उपन्यासों पर उनकी आलोचकीय दृष्टि एक अच्छी समझ बना पाई है उनकी चर्चित किताबों में 'उपन्यास और मनोविज्ञान' एवं 'जैनेन्द्र के उपन्यासों का मनोवैज्ञानिक अध्ययन' मुख्य हैं।

इसी दौर में विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में उपन्यासों की समीक्षाएं प्रकाशित हो रही थीं, उस दौर में पुस्तक समीक्षा एक गंभीर आलोचना कर्म माना जाता था, आज की तरह पुस्तक समीक्षा को हल्के में नहीं लिया जाता था, गंभीर समीक्षाएं लिखी जा रही थीं, नलिन विलोचन शर्मा, शमशेर बहादुर सिंह, शिवदान सिंह चौहान, प्रभाकर माचवे, या यूँ कहें ''बालकृष्णभट्ट से लेकर राम विलास शर्मा, नामवर सिंह तक सभी ने इस काम (उपन्यास समीक्षा) को गंभीरता से किया।'' लेकिन यह ध्यान देना होगा कि ये आलोचक मुख्यतः कविता के आलोचक ही थे, जो छिटपुट उपन्यासों पर लिखा करते थे।

नेमिचंद्र जैन और भारत भूषण अग्रवाल ने अपने महत्वपूर्ण आलोचनात्मक कर्म से हिंदी उपन्यास की समीक्षा को समृद्ध किया। नेमिचन्द्र जैन ने अपनी पुस्तक 'अधूरे साक्षात्कार' में हिंदी के नौ महत्वपूर्ण उपन्यासों पर विस्तृत लेख

लिखा है। यह किताब अपने तमाम विचारधारात्मक अंतद्वंदों के बावजूद उपन्यास की आलोचना के लिये महत्वपूर्ण है। इस दृष्टि से उनकी दूसरी किताब 'जनान्तिक' में हालाँकि उपन्यास के अतिरिक्त कविता, कहानी, नाटक और आलोचना पर भी लेख हैं, परन्तु इस किताब में उन्होंने 'रागदरबारी', 'गाँठ', 'हत्या', 'जुगलबंदी', चिड़ियाघर, टोपी शुक्ला, 'सूरजमुखी अंधेरे के', 'वह अपना चेहरा' इत्यादि उपन्यासों का गंभीर मूल्यांकन किया है। नेमिचन्द्र जैने के लिए ''आलोचना किसी रचना की दूसरे दर्जे की व्याख्या नहीं, बल्कि उस रचना के माध्यम से यथार्थ और उसके जीवन्त अनुभव का फिर से साक्षात्कार है। जिस हद तक आलोचक समीक्षक में जीवन्त अनुभव के प्रति ऐसी संवेदनशीलता और ग्रहण-क्षमता है उस हद तक ही आलोचना एक सार्थक और उत्तेजक कर्म है।"

भारत भूषण अग्रवाल अपने शोध-प्रबंध ''प्रेमचन्द्र परवर्ती हिंदी उपन्यास पर पाश्चात्य प्रभाव' के कारण चर्चा में आए। इसका प्रकाशन 1971 में हुआ, मूलत: यह तुलनात्मक शोध पद्धति पर आधारित उपन्यास की आलोचना का शोध ग्रन्थ ही है। चर्चित आलोचक मधुरेश ने नेमिचन्द्र जैन और भारत भूषण अग्रवाल की आलोचना दृष्टि की सीमाओं का बेहतर ढंग से निर्धारण करते हुए लिखा है कि ''नेमिचन्द्र जैन की 'अधूरे साक्षात्कार' के प्रतिमान मुख्यत: शीतयुद्ध के दौर में निर्मित और विकसित थे, जिनमें मार्क्सवाद से पाला बदले आलोचक की सोच स्पष्ट है, कमोवेश यहीं स्थिति भारत भूषण अग्रवाल के इस शोध प्रबंध की भी है।''

नेमिचन्द्र जैन और भारत भूषण अग्रवाल के बाद उपन्यास की आलोचना के क्षेत्र में जिन प्रमुख आलोचकों ने अपने आलोचना कर्म से इसे एक ठोस धरातल पर खड़ा करने का काम किया है, उनमें गोपाल राय, चंद्रकांत बांदिवडेकर, विजयमोहन सिंह, सुरेन्द्र चौधरी, मधुरेश, नवल किशोर, वीरेन्द्र यादव, रोहिणी अग्रवाल, विजय बहादुर सिंह परमानंद श्रीवास्तव, शिवकुमार मिश्र, इत्यादि हैं। लेख की सीमा को ध्यान में रखते हुए इन सभी महत्वपूर्ण आलोचकों पर बात करना सम्भव नहीं है, इन पर विस्तृत बात फिर कभी। फिलहाल चर्चित आलोचक गोपाल राय की उपन्यास संबंधी महत्वपूर्ण कार्यों और उनकी उपन्यास की आलोचना दृष्टि पर ही बात केन्द्रित करेंगे।

गोपाल राय विशुद्ध रूप से उपन्यास के आलोचक हैं, उन्होंने अपने शोध दृष्टि से उपन्यास की आलोचना के क्षेत्र में एक नया क्षितिज खोला है। वे अकादमिक आलोचना के एक गंभीर व्यक्तित्त्व हैं, जिन्होंने ठहरकर हिंदी

उपन्यासों पर काम किया है। उपन्यास आलोचना के क्षेत्र में वे अपने शोध प्रबंध ''हिंदी कथा साहित्य और उसके विकास पर पाठकों की रुचि का प्रभाव' से पदार्पण किया। उनका यह शोध प्रबंध सन् 1965 ई. में ग्रंथ निकेतन पटना से प्रकाशित हुआ। गोपाल राय ने अपने इस प्रबंध में हिंदी कथा साहित्य पर चर्चा करते हुए उपन्यासों के विषय, शिल्प और भाषा तीनों पर दृष्टि बनाये रखा है। वे खुद दावा भी करते हैं कि ''जहाँ तक मेरी जानकारी है, यह प्रयत्न हिंदी उपन्यासालोचन के क्षेत्र में ही नहीं हिंदी काव्यालोचन के क्षेत्र में भी प्रथम है।'' गोपाल राय ने अपने इस शोध प्रबंध में हिंदी कथा साहित्य का जो काल विभाजन किया है, वह काल विभाजन उनकी नयी किताब 'हिंदी उपन्यास का इतिहास (2002) तक आते-आते पूरी तरह बदल जाता है। अपने शोध प्रबंध में उन्होंने निम्न काल विभाजन किया है-

1. किस्सा कहानियों का युग (1800-1869 ई.)
2. हिंदी उपन्यास का उद्‌भव और शैशव काल (1870-1889 ई.)
3. हिंदी उपन्यास का विकास (प्रथम चरण): प्रेमचन्द्र पूर्व युग (1890-1917 ई)
4. हिंदी उपन्यास का विकास (द्वितीय चरण): प्रेमचन्द्र युग (1918-1936 ई)
5. हिंदी उपन्यास का विकास (तृतीय चरण): प्रेमचन्दोत्तर युग (1936 से अब तक)

जबकि उनकी नयी पुस्तक ''हिंदी उपन्यास का इतिहास" में काल विभाजन का प्रयत्न विल्कुल नया है, जिसके संदर्भ में उनका विचार है कि इतिहास की किताबों में सबसे मुश्किल काम काल विभाजन और नामकरण का है। ''यदि हम उपन्यास को एक वृक्ष के रूप में देखते हैं तो प्रथम काल को 'क्षेत्र निर्माण काल', द्वितीय को 'पादप काल', तृतीय को 'पल्लवन काल', चतुर्थ को 'प्रौढ़त्व काल' और पंचम को 'विस्तार काल' कहा जा सकता है। इस किताब में काल विभाजन तो हमने बहुत कुछ इसी पद्धति पर किया है, पर उसके नामकरण में कुछ नयापन लाने की कोशिश की है।'' इस नयेपन के प्रयास में गोपाल राय ने हिंदी उपन्यास के कुछ बेहद महत्वपूर्ण ई. सन् (1803, 1870, 1891, 1918, 1937, 1947) को आधार बनाकर जो नामकरण किया वह निम्न है-

1. दरवाजे पर दस्तक (1801-1869)
2. नवजागरण और हिंदी उपन्यास (1870-1890)

3. रोमांस पाठक और उपन्यास (1891-1917)
4. यथार्थ के नये स्वर (1918-1947)
   (क) केन्द्र में किसान (1918-1936)
   (ख) नयी दिशाओं की तलाश (1937-1947)
5. विमर्श के नये क्षितिज (1948-1980)
6. समकालीन परिदृश्य (1981-2000)

गोपाल राय ने अपने शोध प्रबंध से शुरू करके 'हिंदी उपन्यास का इतिहास' किताब तक की यात्रा में लगातार अपने को संतुलित किया है, सन् 1964 से 2000 तक की यह यात्रा एक आलोचक के शैशव से प्रौढ़ होने की यात्रा भी है, उपर्युक्त काल विभाजन उनकी उत्तरोत्तर प्रौढ़ होती आलोचकीय दृष्टि की ही परिचायक है। इस काल विभाजन में उन्होंने यह कोशिश की है कि हिंदी उपन्यास का विकास तो रेखांकित हो ही, उसके साथ प्रत्येक काल की प्रवृत्तियां अपने समूचे विशिष्टताओं के साथ उभर आएं।

उपन्यास की संरचना को लेकर हिंदी ही क्या, भारतीय भाषाओं में भी कोई खास काम नहीं हुआ है। पाश्चात्य में उपन्यास के संरचना पक्ष पर महत्वपूर्ण कार्य हुआ है। यूरोप में उपन्यास के विकास के साथ लगातार उसकी शिल्प-प्रविधि पर चर्चा होती रही है, उन्हीं शिल्प प्रविधियों को गोपाल राय हिंदी उपन्यास पर लागू करते हुए उसके संरचना को टटोलने की कोशिश करते हैं, अपने इस प्रयास में वे कहीं भी पाश्चात्य की इस शिल्प-प्रविधि के नकल का शिकार नहीं होते, बल्कि हिंदुस्तान में विकसित कथा के अपने खास टेकनीक को उसी की पृष्ठभूमि में पश्चिम के अपनाये संरचना के टूल्स का इस्तेमाल करते हुए मूल्यांकन करते हैं। इसीलिए वे यह कहते हैं कि 'उपन्यास अंतर्वस्तु के स्तर पर जितना मूर्त होता है, अपने रूप के कारण उतना ही अमूर्त।' दरअसल उपन्यास की संरचना पुस्तक उनकी पूर्व प्रकाशित किताब 'उपन्यास का शिल्प' का ही विकसित रूप है।

गोपाल राय ने 'गोदान', 'मैला आँचल', 'रंगभूमि', 'शेखरः एक जीवनी', 'दिव्या', 'महाभोज' इत्यादि उपन्यासों पर स्वतंत्र पुस्तकें भी लिखी। गोपाल राय की इन स्वतंत्र पुस्तकों का महत्व इस अर्थ में है कि ये पुस्तकें जिन उपन्यासों को केन्द्र में रखकर लिखी गई थी, वह अपने दौर के महत्वपूर्ण उपन्यास हैं। उपन्यासों का यह चयन गोपाल राय की आलोचकीय दृष्टि की विविधता को दिखाता है। गोपाल राय उपन्यास में शिल्प वैविध्य को पूरा स्पेस देने की बात

करते हैं। उपन्यासकार का विचार उपन्यास में अपने 'विजन' तक पहुँचे, उपन्यासकार से यह उनकी आलोचकीय डिमांड है। ''हिंदी उपन्यास ने सार्थक शिल्प प्रयोग की दृष्टि से वे अज्ञेय, हजारी प्रसाद द्विवेदी, राहुल, सांकृत्यायन, नागार्जुन, रेणु आदि को पर्याप्त महत्व देते हैं। भाषा की दृष्टि से वृंदावन लाल वर्मा के अधिकांश उपन्यासों की भाषा यदि उन्हें ठस लगती है तो कृष्णा सोबती के 'जिंदगीनामा' की परिनिष्ठित हिंदी उन्हें पंजाबी प्रयोगों से आक्रांत होने के कारण अबोधगम्य और बोझिल प्रतीत होती हैं।''

गोपाल राय अपने विश्लेषण की प्रक्रिया में 'कथ्य वैविध्य, विजन, चरित्र दृष्टि, शिल्प और भाषा को किसी भी उपन्यास के लिए जरूरी तत्त्व के मानते हैं। अपनी आलोचना प्रक्रिया में वे कोशिश करते हैं कि ''कुछ ऐसे मानक उभर सकें जो अच्छे और बुरे तथा सफल एवं असफल उपन्यास में अतंर करने में सहायक हों।'' उनके इस प्रयास में कुछ अन्तर्द्वन्द्व भी उभरते हैं, जिससे लगातार वे टकारते रहे हैं, उदाहरण स्वरूप 'शानी' और 'राही मासूम रज़ा' के उपन्यासों का मूल्यांकन देखा जा सकता है। हर रचनाकार की अपनी कुछ विशिष्टताएं होती हैं, जिससे वह किसी दूसरे रचनाकार से भिन्न दिखता है। पर आप जब दोनों का मूल्यांकन करते हुए एक को दूसरे की अपेक्षा छोटा या बड़ा, अच्छा-बुरा दिखाने लगते हैं तो उसके कुछ खतरे भी होते हैं, जिन खतरों से आलोचक को सावधान रहना जरूरी हो जाता है। गोपाल राय शानी के 'काला जल' के संदर्भ में लिखते हुए एक जगह यह कहते हैं कि ''काला जल निम्न मध्यवर्गीय मुस्लिम समाज का अत्यंत प्रमाणिक दस्तावेज है।'' वहीं जब वे राही मासूम रजा के 'आधागाँव' का मूल्यांकन कर रहे होते हैं, तो यह लिख जाते हैं कि ''शानी ने 'काला जल' में बस्तर क्षेत्र के मुस्लिम जीवन का चित्रण किया था, पर उसमें वह वैविध्य और व्यापकता नहीं है, जो राही के आधा गाँव में है।'' यही खतरे पैदा होंगे जब आप दो भिन्न फलक की महत्वपूर्ण रचनाओं को एक साथ रखकर, छोटा, बड़ा करके देखने की कोशिश करेंगे। यह तथ्य है कि 'काला जल' मुस्लिम समाज के उपर हिंदी में लिखा गया अब तक सबसे महत्वपूर्ण उपन्यास है, पर आधा गाँव का मुस्लिम समाज वह मुस्लिम समाज नहीं है, जो 'काला जल' का है। यदि 'काला जल' निम्नमध्यवर्गीय मुस्लिम समाज का प्रमाणिक दस्तावेज है, तो 'आधागाँव' शिया मुसलमानों जो मूलतः छोटे-बड़े जमींदार हैं, के जीवन का महाकाव्यात्मक आख्यान है। 'आधागाँव' भारत विभाजन, राष्ट्रवाद के संदर्भ में मुस्लिम मानस को परखने के दृष्टि से बड़ा उपन्यास है, तो काला जल मुस्लिम

समाज के यथार्थवादी चित्रण के कारण एक कालजयी कृति है, दोनों अपने-अपने विषय क्षेत्र के अद्‌भुत उपन्यास हैं परंतु जब हम दोनों को साथ रखकर तुलनात्मक रूप से अच्छे-बुरे का निर्धारण करने लगते हैं तो गंभीर आलोचना भी सपाटबयानी तरह की शिकार हो जाती है। अपनी आलोचना दृष्टि के तमाम अंतर्विरोधों के बावजूद गोपाल राय हिंदी उपन्यास की आलोचना के क्षेत्र में एक विजनरी आलोचक के रूप में हमारे सामने उपस्थित हैं। उन्होंने कई महत्वपूर्ण उपन्यासों को, जो किसी कारण वश पाठकों एवं आलोचकों के ध्यान में नहीं आ पाये थे, अपने बेहतरीन मूल्यांकन से उन्हें न सिर्फ चर्चा में लाये बल्कि हिन्दी उपन्यास के क्षेत्र में केन्द्रीयता प्रदान कराया।

गोपाल राय हिंदी का पहला उपन्यास पं. गौरीदत्त के 'देवरानी जेठानी की कहानी' (1870) को मानते हैं। सन् 1966 में इस उपन्यास का संपादन-प्रकाशन करते हुये उन्होंने इसके पहले उपन्यास होने को लेकर पर्याप्त ठोस तर्क उपस्थित किया। उन्हीं के शब्दों में ''विषय, शिल्प, भाषा चाहे जिस दृष्टि से देखा जाए,.. ..... 'देवरानी जेठानी की कहानी' विशिष्ट है, अतः हिंदी उपन्यास का आरम्भ यदि किसी पुस्तक से माना जा सकता है, तो इसी से।'' आचार्य रामचन्द्र शुक्ल द्वारा प्रथम उपन्यास का दर्जा प्राप्त, लाला श्री निवास दास के परीक्षा गुरू (1982) को वे कलात्मक दृष्टि से महत्वपूर्ण तो मानते हैं, पर अपने तमाम शोधों एवं तर्कों के आधार पर उन्होंने 'देवरानी जेठानी की कहानी' को ही हिंदी का पहला उपन्यास सिद्ध किया।

गोपाल राय पूरी तैयारी के साथ उपन्यास आलोचना के क्षेत्र में उतरे थे। 'हिंदी उपन्यास का इतिहास' नामक उनके किताब से गुजरते हुए, उनकी गंभीर शोध दृष्टि को महसूस किया जा सकता है। उदाहरण स्वरूप, हिंदी में 'उपन्यास' शब्द का प्रयोग कब हुआ? इसकी खोज में वे बांग्ला साहित्य से लेकर हिंदी की पत्र-पत्रिकाओं तक को खंगालते हुए लिखते हैं कि–''नॉवेल के लिए 'उपन्यास' पद का प्रयोग तो हिंदी को बांग्ला की देन है ही। बांग्ला में भी 'उपन्यास' पद का प्रथम प्रयोग भूदेव मुखोपाध्याय ने 1862 ई. में अपनी 'ऐतिहासिक उपन्यास' नामक कथा पुस्तक के शीर्षक में किया था। हिंदी में 'नॉवेल' के अर्थ में 'उपन्यास' पद का प्रथम प्रयोग भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने 1875 ई. में 'हरिश्चन्द्र चन्द्रिका' के फरवरी और मार्च, 1875 के अंकों में धारावाहिक रूप में प्रकाशित अपूर्ण कथा 'मालती' के लिए किया था।''

हिंदी उपन्यास को हिंदी-भाषी जनता की राष्ट्रीय आकांक्षाओं की अभिव्यक्ति मानने वाले गोपाल राय निश्चित रूप से हिंदी उपन्यास के एक 'संपूर्ण' आलोचक हैं। इनकी आलोचकीय दृष्टि पर बात करते हुए प्रख्यात आलोचक मधुरेश जी के इस बात से सहमत होना पड़ता है कि ''गोपाल राय प्रगतिवादी आलोचकों के संबंध में प्राय: ही व्यंग्य और कटाक्ष से बात करते हैं। लेकिन उनमें किसी सुनिर्दिष्ट और सुपरिभाषित वैचारिक स्टैण्ड का अभाव उनके मूल्यांकन को प्रभावित करता है। ऐसे अवसरों पर वे रांगेय राघव से बड़ा लेखक नरेन्द्र कोहली को मानते दिखाई देते हैं या फिर राही मासूम रजा और नार्गाजुन की अपेक्षा विवेकी राय की।''

2

देवकीनन्दन खत्री

देवकीनन्दन खत्री जन्म–29 जून, 1861 ई. मृत्यु-1 अगस्त, 1913 ई. हिन्दी के प्रथम तिलिस्मी लेखक थे। उन्होंने 'चंद्रकांता', 'चंद्रकांता संतति', 'काजर की कोठरी', 'नरेंद्र-मोहिनी', 'कुसुम कुमारी', 'वीरेंद्र वीर', 'गुप्त गोंडा', 'कटोरा भर' और 'भूतनाथ' जैसी रचनाएँ कीं। 'भूतनाथ' को उनके पुत्र 'दुर्गा प्रसाद खत्री' ने पूरा किया था। हिन्दी भाषा के प्रचार-प्रसार में उनके उपन्यास 'चंद्रकांता' का बहुत बड़ा योगदान रहा है। इस उपन्यास ने सबका मन मोह लिया था। इस किताब का रसास्वादन करने के लिए कई गैर-हिन्दीभाषियों ने हिन्दी भाषा सीखी। बाबू देवकीनंदन खत्री ने 'तिलिस्म', 'ऐय्यार' और 'ऐय्यारी' जैसे शब्दों को हिन्दी भाषियों के बीच लोकप्रिय बना दिया।

शजितने हिन्दी पाठक उन्होंने (बाबू देवकीनन्दन खत्री ने) उत्पन्न किये उतने किसी और ग्रंथकार ने नहीं।

जीवनी

देवकीनन्दन खत्री जी का जन्म 29 जून, 1861 (आषाढ़ कृष्ण पक्ष सप्तमी संवत् 1918) शनिवार को पूसा, मुजफ्फरपुर, बिहार में हुआ था। उनके पिता का नाम 'लाला ईश्वरदास' था। उनके पूर्वज पंजाब के निवासी थे और मुगलों के राज्य काल में ऊँचे पदों पर कार्य करते थे। महाराज रणजीत सिंह के पुत्र शेरसिंह के शासन काल में लाला ईश्वरदास काशी (आधुनिक बनारस) आकर बस गये।

देवकीनन्दन खत्री जी की प्रारम्भिक शिक्षा उर्दू-फारसी में हुई थी। बाद में उन्होंने हिन्दी, संस्कृत एवं अंग्रेजी का भी अध्ययन किया।

व्यवसाय की शुरुआत

मुजफ्फरपुर देवकीनन्दन खत्री के नाना-नानी का निवास स्थान था। आपके पिता 'लाला ईश्वरदास' अपनी युवावस्था में लाहौर से काशी आए थे और यहीं रहने लगे थे। देवकीनन्दन खत्री का विवाह मुजफ्फरपुर में हुआ था, और गया जिले के टिकारी राज्य में अच्छा व्यवसाय था। आरंभिक शिक्षा समाप्त कर वे 'टेकारी इस्टेट' पहुँच गये और वहाँ के राजा के यहाँ कार्य करने लगे। बाद में उन्होंने वाराणसी में एक प्रिंटिंस प्रेस की स्थापना की और 1883 में हिन्दी मासिक पत्र 'सुदर्शन' को प्रारम्भ किया।

चन्द्रकान्ता

लेखन की प्रेरणा

कुछ दिनों बाद उन्होंने महाराज बनारस से चकिया और नौगढ़ के जंगलों का ठेका ले लिया था। इस कारण से देवकीनंदन की युवावस्था अधिकतर उक्त जंगलों में ही बीती थी। देवकीनन्दन खत्री बचपन से ही घूमने के बहुत शौकीन थे। इस ठेकेदारी के कार्य से उन्हें पर्याप्त आय होने के साथ-साथ घूमने-फिरने का शौक भी पूरा होता रहा। वह लगातार कई-कई दिनों तक चकिया एवं नौगढ़ के बीहड़ जंगलों, पहाड़ियों और प्राचीन ऐतिहासिक इमारतों के खंडहरों की खाक छानते रहते थे। बाद में जब उनसे जंगलों के ठेके वापिस ले लिए गये, तब इन्हीं जंगलों, पहाड़ियों और प्राचीन ऐतिहासिक इमारतों के खंडहरों की पृष्ठभूमि में अपनी तिलिस्म तथा ऐय्यारी के कारनामों की कल्पनाओं को मिश्रित कर उन्होंने 'चन्द्रकान्ता' उपन्यास की रचना की। इन्हीं जगंलों और उनके खंडहरों से देवकीनन्दन खत्री को प्रेरणा मिली थी, जिसने 'चंद्रकांता', 'चंद्रकांता संतति', 'भूतनाथ' ऐसे ऐय्यारी और तिलस्मी उपन्यासों की रचना कराई, जिसने आपको हिन्दी साहित्य में अमर बना दिया। आपके सभी उपन्यासों का सारा रचना तंत्र बिलकुल मौलिक और स्वतंत्र है। इस तिलस्मी तत्त्व में आपने अपने चातुर्य और बुद्धि-कौशल से ऐय्यारी वाला वह तत्त्व भी मिला दिया था, जो बहुत कुछ भारतीय ही है। यह महत्त्वपूर्ण बात है कि 19वीं शताब्दी के अंत में लाखों पाठकों

ने बहुत ही चाव और रुचि से आपके उपन्यास पढ़े और हजारों आदमियों ने केवल आपके उपन्यास पढ़ने के लिए हिन्दी सीखी। यही कारण है कि हिन्दी के सुप्रसिद्ध उपन्यास लेखक श्री वृंदावनलाल वर्मा ने आपको हिन्दी का 'शिराजी' कहा है।

चन्द्रकांता की रचना

बाबू देवकीनन्दन खत्री ने जब उपन्यास लिखना प्रारम्भ किया, उस समय में अधिकतर हिन्दू लोग भी उर्दू भाषा ही जानते थे। इस प्रकार की परिस्थितियों में खत्री जी ने मुख्य लक्ष्य बनाया, ऐसी रचना करना जिससे देवनागरी हिन्दी का प्रचार व प्रसार हो। यह इतना सरल कार्य नहीं था। किंतु उन्होंने ऐसा कर दिखाया। 'चन्द्रकान्ता' उपन्यास इतना लोकप्रिय हुआ कि उस समय जो लोग हिन्दी लिखना-पढ़ना नहीं जानते थे या केवल उर्दू भाषा ही जानते थे, उन्होंने केवल इस उपन्यास को पढ़ने के लिए हिन्दी सीखी इसी लोकप्रियता को ध्यान में रख कर उन्होंने इसी कथा को आगे बढ़ाते हुए दूसरा उपन्यास 'चन्द्रकान्ता सन्तति' लिखा, जो 'चन्द्रकान्ता' की अपेक्षा अधिक रोचक था। इन उपन्यासों को पढ़ते समय पाठक खाना-पीना भी भूल जाते थे। इन उपन्यासों की भाषा इतनी सरल है कि पाँचवीं कक्षा के छात्र भी इन पुस्तकों को पढ़ लेते हैं। पहले दो उपन्यासों के 2000 पृष्ठ से अधिक होने पर भी, एक भी क्षण ऐसा नहीं आता, जहाँ पाठक ऊब जाएँ।

प्रमुख रचनाएँ

चन्द्रकान्ता सन्तति

चन्द्रकान्ता (1888 –1892)–चन्द्रकान्ता उपन्यास को पढ़ने के लिये लाखों लोगों ने हिन्दी सीखी। यह उपन्यास चार भागों में विभक्त है। पहला प्रसिद्ध उपन्यास चंद्रकांता सन् 1888 ई. में काशी में प्रकाशित हुआ था। उसके चारो भागों के कुछ ही दिनों में कई संस्करण हो गए थे।

चन्द्रकान्ता सन्तति (1894 –1904)–चन्द्रकान्ता की अभूतपूर्व सफलता से प्रेरित हो कर देवकीनन्दन खत्री ने चौबीस भागों वाले विशाल उपन्यास चंद्रकान्ता सन्तति की रचना की। उनका यह उपन्यास भी अत्यधिक लोकप्रिय हुआ।

भूतनाथ (1907 –1913) (अपूर्ण)–चन्द्रकान्ता सन्तति के एक पात्र को नायक बना कर देवकीनन्दन खत्री जी ने इस उपन्यास की रचना की। किन्तु असामायिक मृत्यु के कारण वह इस उपन्यास के केवल छह भागों ही लिख पाये। आगे के शेष पन्द्रह भाग उनके पुत्र 'दुर्गाप्रसाद खत्री' ने लिख कर पूरे किये। 'भूतनाथ' भी कथावस्तु की अन्तिम कड़ी नहीं है। इसके बाद बाबू दुर्गाप्रसाद खत्री लिखित 'रोहतास मठ' (दो खंडों में) आता है।

अन्य रचनाएँ

कुसुम कुमारी
वीरेन्द्र वीर उर्फ कटोरा भर खून
काजर की कोठरी
अनूठी बेगम
नरेन्द्र मोहिनी
गुप्त गोदना
लहरी प्रेस
भूतनाथ

चंद्रकांता से उत्साहित होकर आपने चंद्रकांता संतति, लिखना आरंभ कर दिया जिसके कुल 24 भाग हैं। दस वर्षो में ही बहुत अधिक कीर्ति और यश प्राप्त कर चुकने पर और अपनी रचनाओं का इतना अधिक प्रचार देखने पर सन् 1898 ई में आपने अपने निजी प्रेस की स्थापना की। आप सदा से स्वभावत: बहुत ही 'लहरी' अर्थात् मनमौजी और विनोदप्रिय थे। इसीलिए देवकीनन्दन खत्री ने अपने प्रेस का नाम भी 'लहरी प्रेस' रखा था। देवकीनन्दन खत्री के उपन्यासों में कई ऐय्यारों और पात्रों के जो नाम आए हैं वे सब आपने अपनी मित्रमंडली में से ही चुने थे और इस प्रकार उन्होंने अपने अनेक घनिष्ट मित्रों और संगी साथियों को अपनी रचनाओं के द्वारा अमर बना दिया था।

हिन्दी साहित्य में स्थान

देवकीनन्दन खत्री की सभी कृतियों में मनोरंजन की जो इतनी अधिक कौतूहलवर्धक और रोचक सामग्री मिलती है, उसका सारा श्रेय देवकीनन्दन खत्री के अनोखे और अप्रतिम बुद्धिबल का ही है। हिन्दी के औपन्यासिक क्षेत्र का आपने आरंभ ही नहीं किया था, उसमें उन्होंने बहुत ही उच्च, उज्ज्वल और बेजोड़

स्थान भी प्राप्त कर लिया था। भारतेंदु के उपरांत आप प्रथम और सर्वाधिक प्रकाशमान तारे के रूप में हिन्दी साहित्य में आए थे।

निधन

खेद है कि देवकीनन्दन खत्री ने अधिक आयु नहीं पाई और 52 वर्ष की अवस्था में ही काशी में 1 अगस्त, 1913 को आप परलोकवासी हो गए।

चंद्रकान्ता की लेखन शैली

चन्द्रकान्ता को एक प्रेम कथा कहा जा सकता है। इस शुद्ध लौकिक प्रेम कहानी को, दो दुश्मन राजघरानों, नवगढ़ और विजयगढ़ के बीच, प्रेम और घृणा का विरोधाभास आगे बढ़ाता है। विजयगढ़ की राजकुमारी चंद्रकांता और नवगढ़ के राजकुमार विरेन्द्र विक्रम को आपस में प्रेम है। लेकिन राज परिवारों में दुश्मनी है। दुश्मनी का कारण है कि विजयगढ़ के महाराज नवगढ के राजा को अपने भाई की हत्या का जिम्मेदार मानते है। हालाँकि इसका जिम्मेदार विजयगढ का महामंत्री क्रूर सिंह है, जो चंद्रकांता से शादी करने और विजयगढ़ का महाराज बनने का सपना देख रहा है। राजकुमारी चंद्रकांता और राजकुमार विरेन्द्र विक्रम की प्रमुख कथा के साथ साथ ऐयार तेजसिंह तथा ऐयारा चपला की प्रेम कहानी भी चलती रहती है। कथा का अंत नौगढ़ के राजा सुरेन्द्र सिंह के पुत्र वीरेन्द्र सिंह तथा विजयगढ़ के राजा जयसिंह की पुत्री चन्द्रकांता के परिणय से होता है।

उपन्यास का आकर्षण हैं तिलिस्मी और ऐयारी के अनेक चमत्कार जो पाठक को विस्मित तो करते ही हैं, रहस्य निर्मित करते हुए उपन्यास को रोचकता भी प्रदान करते हैं। क्रूर सिंह की षडयन्त्र और वीरेन्द्र विक्रम के पराक्रम के वर्णन काफ़ी रोचक बन पड़े हैं।

प्रेमचन्द-पूर्ववत: हिन्दी उपन्यास-साहित्य में दो प्रमुख धारायें प्रवाहित होती दिखाई देती हैं, जिनमें से प्रथम धारा भारतेन्दुयुगीन सुधारवादी नैतिकता प्रधान सामाजिक उपन्यासों की धारा है, जिसका प्रतिनिधित्व लाला श्रीनिवास दास के 'परीक्षा गुरू' में मिलता है, और उसकी दूसरी धारा जिसे तिलिस्मी-ऐयारी एवं जासूसी उपन्यास की संज्ञा प्राप्त है, उसके सर्वाधिक चर्चित लेखक बाबू देवकीनन्दन खत्री हैं, और उनकी कलम का जादू है 'चन्द्रकान्ता'।

'ऐयार' शब्द भी अरबी का है, जिसका शाब्दिक अर्थ है–धूर्त अथवा वेश या रूप बदलकर अनोखे काम करने वाला व्यक्ति। 'ऐयार' उसको कहते हैं जो

हर एक फन जानता हो, शक्ल बदलना और दौड़ना उसके मुख्य काम हैं। ऐयारों के सम्बन्ध में खत्री जी ने 'चन्द्रकान्ता' की भूमिका में लिखा है–राजदरबारों में ऐयार भी नौकर होते थे जो कि हरफनमौला, यानी सूरत बदलना, बहुत-सी दवाओं का जानना, गाना-बजाना, दौड़ना, अस्त्र चलाना, जासूसों का काम करना, वगैरह बहुत-सी बातें जाना करते थे। जब राजाओं में लड़ाई होती थी तो ये लोग अपनी चालाकी से बिना खून बहाये व पलटनों की जाने गँवाये लड़ाई खत्म करा देते थे।'' 'चन्द्रकान्ता' में लेखक चुनार के बाहर के खण्डहर के तिलिस्म का वर्णन करता है, जहाँ काले पत्थर के खम्भे पर संगमरमर का बगुला है जो किसी के पास आते ही मुँह खोल लेता है और उसे उदरस्थ कर लेता है। चन्द्रकान्ता को यही बगुला निगल लेता है तथा वह तिलिस्म में कैद हो जाती है। उसकी सखी चपला का भी यही हाल होता है। इस तिलिस्म के विषय में एक सुर्ख पत्थर पर लिखा है-'यह तिलिस्म है, इसमें फंसने वाला कभी बाहर नहीं निकल सकता। हाँ, अगर कोई इसको तोड़े तो सब कैदियों को छुड़ा ले और दौलत भी उसके हाथ लगे। तिलिस्म तोड़ने वाले के बदन में खूब ताकत भी होनी चाहिए, नहीं तो सारी मेहनत व्यर्थ है।' इस तिलिस्म को तोड़ने की विधि भी एक पुस्तक में लिखी मिलती है, जिसका अर्थ तेजसिंह और ज्योतिषीजी रमल की सहायता से ज्ञात करते हैं। इस पुस्तक की प्राप्ति से वीरेन्द्रसिंह अपने ऐयार साथियों की मदद से अनेक कठिनाइयों, बाधाओं एवं संघर्षों का सामना करता हुआ तिलिस्म को तोड़ने में सफल होता है और चन्द्रकान्ता को मुक्त कराता है। उपन्यास के तीसरे और चौथे हिस्से में मुख्य रूप से इसी तिलिस्मी को तोड़ने की कथा रोचक, कौतूहल पूर्ण और अद्‌भुत वर्णन है। वनकन्या, सूरजमुखी आदि पात्रों का सृजन और उनके कार्य उपन्यास में रोचकता और कौतूहल की वृद्धि करते हैं। कौतूहल प्रेमी पाठकों को विशेषकर यह अंदाजा लगाने में भी काफी आनन्द आता है कि कब कौन सा ऐयार क्या करामात दिखा रहा है। कई पात्रों के चलते यह कार्य काफी चुनौती भरा बन जाता है। इसी शृंखला में भूतनाथ तो सबसे गूढ़ पात्र बन जाता है, यहाँ तक उसके चरित्र को सही प्रकार समझाने के लिए देवकीनन्दन खत्री जी को एक और 23 खण्डों का उपन्यास भूतनाथ लिखना पड़ गया।

3

कलम के सिपाही मुंशी प्रेमचंद

मुंशी प्रेमचंद ने 1898 में मैट्रिक परीक्षा उत्तीर्ण कर स्थानीय विद्यालय में शिक्षक नियुक्त हो गए। B.A करने के बाद मुंशी प्रेमचंद शिक्षा विभाग के इंस्पेक्टर पद पर नियुक्त हो गए। मुंशी प्रेमचंद का पहला विवाह उन दिनों की परंपरा के अनुसार 15 साल की उम्र में हुआ जो सफल नहीं रहा 1926 में इन्होंने विधवा विवाह का समर्थन करते हुए बाल विधवा शिवरानी देवी से दूसरा विवाह किया। उनसे तीन संताने हुई श्रीपत राय अमृतराय और कमला देवी श्रीवास्तव 1910 में उनकी रचना सोजे वतन के लिए हमीरपुर के जिला कलेक्टर ने तलब किया तो जीवन की सभी प्रतियां जब्त कर नष्ट कर दी गई। इस समय तक प्रेमचंद नवाब राय नाम से उर्दू में लिखते थे उर्दू में प्रकाशित होने वाली 'जमाना' पत्रिका के संपादक और उनके दोस्त मुंशी दया नारायण निगम ने उन्हें प्रेमचंद नाम से लिखने की सलाह दी इसके बाद वे प्रेमचंद के नाम से लिखने लगे।

मुंशी प्रेमचंद रचनाओं में सबसे पहले आते हैं उनके उपन्यास गोदान 1936 गबन 1931 सेवा सदन 1918 कर्मभूमि 1920 वरदान 1921 प्रेमाश्रम 1921 रंगभूमि 1925 निर्मला 1927 प्रतिज्ञा कायाकल्प 1926 मंगलसूत्र 1948 में लिखा था।

प्रेमचंद की कहानियां इस प्रकार से है पंच परमेश्वर, कफन, नमक का दरोगा, बूढ़ी काकी, नशा, परीक्षा, ईदगाह, बड़े घर की बेटी, सुजान भगत, शतरंज के खिलाड़ी, माता का हृदय, मिस पदमा, बलिदान, दो बैलो की कथा, तथा पूस

की रात, सौत कजाकी, प्रेमचंद की पहली कहानी संसार का अनमोल रत्न 1960 में 'जमाना' पत्रिका में प्रकाशित की गयी थी।

प्रेमचंद के उपन्यास भारत और दुनिया की कई भाषाओं में अनुदित कोई खास कर उनका सर्वाधिक चर्चित उपन्यास गोदान सेवा सदन एक नारी के वेश्या बनने की कहानी है। प्रेमाश्रम किसान जीवन पर लिखा हिंदी का संभवत: पहला उपन्यास है, यह अवध के किसान आंदोलनों के दौर में लिखा गया रंगभूमि में प्रेमचंद एक अंधे भिखारी सूरदास को कथा का नायक बनाकर हिंदी कथा साहित्य में क्रांतिकारी बदलाव का सूत्रपात कर चुके थे गोदान का हिंदी साहित्य ही नहीं विश्व साहित्य में भी महत्वपूर्ण स्थान है प्रेमचंद ने सेवा सदन 1918 उपन्यास से हिंदी उपन्यास की दुनिया में प्रवेश किया यह मूल रूप से उन्होंने 'बाजार ए हुस्न' नाम से पहले उर्दू में लिखा इसका हिंदी रूप सेवा सदन पहले प्रकाशित कराया।

जीवन परिचय

प्रेमचंद का जन्म 31 जुलाई 1880 को वाराणसी के निकट लमही गाँव में एक कायस्थ परिवार में हुआ था। लमही, उत्तर प्रदेश राज्य के बनारस शहर के नजदीक ही लगभग चार मिल दूर स्थित हैं। उनकी माता का नाम आनन्दी देवी था तथा पिता मुंशी अजायबराय लमही में डाकमुंशी थे। उनकी शिक्षा का आरंभ उर्दू, फारसी से हुआ और जीवनयापन का अध्यापन से। पढ़ने का शौक उन्हें बचपन से ही लग गया। 13 साल की उम्र में ही उन्होंने तिलिस्म-ए-होशरुबा पढ़ लिया और उन्होंने उर्दू के मशहूर रचनाकार रतननाथ 'शरसार', मिर्जा हादी रुस्वा और मौलाना शरीर के उपन्यासों से परिचय प्राप्त कर लिया। 1898 में मैट्रिक की परीक्षा उत्तीर्ण करने के बाद वे एक स्थानीय विद्यालय में शिक्षक नियुक्त हो गए। नौकरी के साथ ही उन्होंने पढ़ाई जारी रखी।1910 में उन्होंने अंग्रेजी, दर्शन, फारसी और इतिहास लेकर इंटर पास किया और 1919 में बी. ए. पास करने के बाद शिक्षा विभाग के इंस्पेक्टर पद पर नियुक्त हुए।

सात वर्ष की अवस्था में उनकी माता तथा चौदह वर्ष की अवस्था में पिता का देहान्त हो जाने के कारण उनका प्रारंभिक जीवन संघर्षमय रहा। उनका पहला विवाह पंद्रह साल की उम्र में हुआ जो सफल नहीं रहा। वे आर्य समाज से प्रभावित रहे, जो उस समय का बहुत बड़ा धार्मिक और सामाजिक आंदोलन था। उन्होंने विधवा-विवाह का समर्थन किया और 1906 में दूसरा विवाह अपनी

प्रगतिशील परंपरा के अनुरूप बाल-विधवा शिवरानी देवी से किया। उनकी तीन संताने हुईं–श्रीपत राय, अमृत राय और कमला देवी श्रीवास्तव। 1910 में उनकी रचना सोजे-वतन (राष्ट्र का विलाप) के लिए हमीरपुर के जिला कलेक्टर ने तलब किया और उन पर जनता को भड़काने का आरोप लगाया। सोजे-वतन की सभी प्रतियाँ जब्त कर नष्ट कर दी गईं। कलेक्टर ने नवाबराय को हिदायत दी कि अब वे कुछ भी नहीं लिखेंगे, यदि लिखा तो जेल भेज दिया जाएगा। इस समय तक प्रेमचंद, धनपत राय नाम से लिखते थे। उर्दू में प्रकाशित होने वाली जमाना पत्रिका के सम्पादक और उनके अजीज दोस्त मुंशी दयानारायण निगम की सलाह से वे प्रेमचंद नाम से लिखने लगे। उन्होंने आरंभिक लेखन जमाना पत्रिका में ही किया। जीवन के अंतिम दिनों में वे गंभीर रूप से बीमार पड़े। उनका उपन्यास मंगलसूत्र पूरा नहीं हो सका और लम्बी बीमारी के बाद 8 अक्टूबर 1936 को उनका निधन हो गया। उनका अंतिम उपन्यास मंगल सूत्र उनके पुत्र अमृतराय ने पूरा किया।

कार्यक्षेत्र

प्रेमचंद आधुनिक हिन्दी कहानी के पितामह और उपन्यास सम्राट माने जाते हैं। यों तो उनके साहित्यिक जीवन का आरंभ 1901 से हो चुका था पर उनकी पहली हिन्दी कहानी सरस्वती पत्रिका के दिसम्बर अंक में 1915 में सौत नाम से प्रकाशित हुई और 1936 में अंतिम कहानी कफन नाम से प्रकाशित हुई। उनसे पहले हिंदी में काल्पनिक, एय्यारी और पौराणिक धार्मिक रचनाएं ही की जाती थी। प्रेमचंद ने हिंदी में यथार्थवाद की शुरूआत की। 'भारतीय साहित्य का बहुत सा विमर्श जो बाद में प्रमुखता से उभरा चाहे वह दलित साहित्य हो या नारी साहित्य उसकी जड़ें कहीं गहरे प्रेमचंद के साहित्य में दिखाई देती हैं।' प्रेमचंद के लेख 'पहली रचना' के अनुसार उनकी पहली रचना अपने मामा पर लिखा व्यंग्य थी, जो अब अनुपलब्ध है। उनका पहला उपलब्ध लेखन उनका उर्दू उपन्यास 'असरारे मआबिद' है। प्रेमचंद का दूसरा उपन्यास 'हमखुर्मा व हमसवाब' जिसका हिंदी रूपांतरण 'प्रेमा' नाम से 1907 में प्रकाशित हुआ। इसके बाद प्रेमचंद का पहला कहानी संग्रह सोजे-वतन नाम से आया जो 1908 में प्रकाशित हुआ। देशभक्ति की भावना से ओतप्रोत होने के कारण इस पर अंग्रेजी सरकार ने रोक लगा दी और इसके लेखक को भविष्य में इस तरह का लेखन न करने की चेतावनी दी। इसके कारण उन्हें नाम बदलकर लिखना पड़ा। 'प्रेमचंद' नाम से उनकी पहली कहानी 'बड़े घर की बेटी' जमाना पत्रिका के

दिसम्बर 1910 के अंक में प्रकाशित हुई। मरणोपरांत उनकी कहानियाँ मानसरोवर नाम से 8 खंडों में प्रकाशित हुईं। कथा सम्राट प्रेमचन्द का कहना था कि साहित्यकार देशभक्ति और राजनीति के पीछे चलने वाली सच्चाई नहीं बल्कि उसके आगे मशाल दिखाती हुई चलने वाली सच्चाई है। यह बात उनके साहित्य में उजागर हुई है। 1921 में उन्होंने महात्मा गांधी के आह्वान पर अपनी नौकरी छोड़ दी। कुछ महीने मर्यादा पत्रिका का संपादन भार संभाला, छह साल तक माधुरी नामक पत्रिका का संपादन किया, 1930 में बनारस से अपना मासिक पत्र 'हंस' शुरू किया और 1932 के आरंभ में जागरण नामक एक साप्ताहिक और निकाला। उन्होंने लखनऊ में 1936 में अखिल भारतीय प्रगतिशील लेखक संघ के सम्मेलन की अध्यक्षता की। उन्होंने मोहन दयाराम भवनानी की अजंता सिनेटोन कंपनी में कहानी-लेखक की नौकरी भी की। 1934 में प्रदर्शित मजदूर नामक फिल्म की कथा लिखी और कॉन्ट्रेक्ट की साल भर की अवधि पूरी किये बिना ही दो महीने का वेतन छोड़कर बनारस भाग आये। उन्होंने मूल रूप से हिंदी में 1915 से कहानियां लिखना और 1918 (सेवासदन) से उपन्यास लिखना शुरू किया।

साहित्यिक जीवन

प्रेमचंद उनका साहित्यिक नाम था और बहुत वर्षों बाद उन्होंने यह नाम अपनाया था। उनका वास्तविक नाम 'धनपत राय' था। जब उन्होंने सरकारी सेवा करते हुए कहानी लिखना आरम्भ किया, तब उन्होंने नवाब राय नाम अपनाया। बहुत से मित्र उन्हें जीवन-पर्यन्त नवाब के नाम से ही सम्बोधित करते रहे। जब सरकार ने उनका पहला कहानी-संग्रह, 'सोजे वतन' जब्त किया, तब उन्हें नवाब राय नाम छोड़ना पड़ा। बाद का उनका अधिकतर साहित्य प्रेमचंद के नाम से प्रकाशित हुआ। इसी काल में प्रेमचंद ने कथा-साहित्य बड़े मनोयोग से पढ़ना शुरू किया। एक तम्बाकू-विक्रेता की दुकान में उन्होंने कहानियों के अक्षय भण्डार, 'तिलिस्मे होशरूबा' का पाठ सुना। इस पौराणिक गाथा के लेखक फैजी बताए जाते हैं, जिन्होंने अकबर के मनोरंजन के लिए ये कथाएं लिखी थीं। एक पूरे वर्ष प्रेमचंद ये कहानियाँ सुनते रहे और इन्हें सुनकर उनकी कल्पना को बड़ी उत्तेजना मिली। कथा साहित्य की अन्य अमूल्य कृतियाँ भी प्रेमचंद ने पढ़ीं। इनमें 'सरशार' की कृतियाँ और रेनाल्ड की 'लन्दन-रहस्य' भी थी। गोरखपुर में बुद्धिलाल नाम के पुस्तक-विक्रेता

से उनकी मित्रता हुई। वे उनकी दुकान की कुंजियाँ स्कूल में बेचते थे और इसके बदले में वे कुछ उपन्यास अल्प काल के लिए पढ़ने को घर ले जा सकते थे। इस प्रकार उन्होंने दो-तीन वर्षों में सैकड़ों उपन्यास पढ़े होंगे। इस समय प्रेमचंद के पिता गोरखपुर में डाकमुंशी की हैसियत से काम कर रहे थे। गोरखपुर में ही प्रेमचंद ने अपनी सबसे पहली साहित्यिक कृति रची। यह रचना एक अविवाहित मामा से सम्बंधित प्रसहन था। मामा का प्रेम एक छोटी जाति की स्त्री से हो गया था। वे प्रेमचंद को उपन्यासों पर समय बर्बाद करने के लिए निरन्तर डाँटते रहते थे। मामा की प्रेम-कथा को नाटक का रूप देकर प्रेमचंद ने उनसे बदला लिया। यह प्रथम रचना उपलब्ध नहीं है, क्योंकि उनके मामा ने क्रुद्ध होकर पांडुलिपि को अग्नि को समर्पित कर दिया। गोरखपुर में प्रेमचंद को एक नये मित्र महावीर प्रसाद पोद्दार मिले और इनसे परिचय के बाद प्रेमचंद और भी तेजी से हिन्दी की ओर झुके। उन्होंने हिन्दी में शेख सादी पर एक छोटी-सी पुस्तक लिखी थी, टॉल्सटॉय की कुछ कहानियों का हिन्दी में अनुवाद किया था और 'प्रेम-पचीसी' की कुछ कहानियों का रूपान्तर भी हिन्दी में कर रहे थे। ये कहानियाँ 'सप्त-सरोज' शीर्षक से हिन्दी संसार के सामने सर्वप्रथम सन् 1917 में आयीं। ये सात कहानियाँ थीं–

शायद कम लोग जानते है कि प्रख्यात कथाकार मुंशी प्रेमचंद अपनी महान रचनाओं की रूपरेखा पहले अंग्रेजी में लिखते थे और इसके बाद उसे हिन्दी अथवा उर्दू में अनूदित कर विस्तारित करते थे।

1. बड़े घर की बेटी
2. सौत
3. सज्जनता का दण्ड
4. पंच परमेश्वर
5. नमक का दारोगा
6. उपदेश
7. परीक्षा

प्रेमचंद की सर्वश्रेष्ठ कहानियों में इन कहानियों की गणना होती है।

प्रेमचंद का स्वर्णिम युग

प्रेमचंद की उपन्यास-कला का यह स्वर्ण युग था। सन् 1931 के आरम्भ में गबन प्रकाशित हुआ था। 16 अप्रैल, 1931 को प्रेमचंद ने अपनी एक और महान

रचना, कर्मभूमि शुरू की। यह अगस्त, 1932 में प्रकाशित हुई। प्रेमचंद के पत्रों के अनुसार सन् 1932 में ही वह अपना अन्तिम महान उपन्यास, गोदान लिखने में लग गये थे, यद्यपि 'हंस' और 'जागरण' से सम्बंधित अनेक कठिनाइयों के कारण इसका प्रकाशन जून, 1936 में ही सम्भव हो सका। अपनी अन्तिम बीमारी के दिनों में उन्होंने एक और उपन्यास, 'मंगलसूत्र', लिखना शुरू किया था, किन्तु अकाल मृत्यु के कारण यह अपूर्ण रह गया। 'गबन', 'कर्मभूमि' और 'गोदान'–उपन्यासत्रयी पर विश्व के किसी भी कृतिकार को गर्व हो सकता है। 'कर्मभूमि' अपनी क्रांतिकारी चेतना के कारण विशेष महत्त्वपूर्ण है। लाहौर कांग्रेस के अधिवेशन में अध्यक्ष-पद से भाषण देते हुए जवाहरलाल नेहरू ने घोषित किया था। 'मैं गणतंत्रवादी और समाजवादी हूँ।' कर्मभूमि इस अशान्त काल की प्रतिध्वनियों से भरा हुआ उपन्यास है। गोर्की के उपन्यास, 'माँ' के समान ही यह उपन्यास भी क्रान्ति की कला पर लगभग एक प्रबंध-ग्रन्थ है। यह उपन्यास अद्‌भुत पात्रों की एक सम्पूर्ण श्रृंखला प्रस्तुत करता ह। अमर कांत, समरकान्त, सकीना, सुखदा, पठानिन, मुन्नी। अमरकान्त और समरकान्त पाठकों को पिता और पुत्र, नेह:-द्वय का स्मरण दिलाते हैं। मुन्नी, पठानिन, सकीना और लाला समरकान्त सभी की परिणति घटनाओं द्वारा होती है।

साहित्य की विशेषताएँ

प्रेमचंद हिंदी के युग प्रवर्तक रचनाकार हैं। उनकी रचनाओं में तत्कालीन इतिहास बोलता है। वे सर्वप्रथम उपन्यासकार थे, जिन्होंने उपन्यास साहित्य को तिलस्मी और ऐयारी से बाहर निकाल कर उसे वास्तविक भूमि पर ला खड़ा किया। उन्होंने अपनी रचनाओं में जन साधारण की भावनाओं, परिस्थितियों और उनकी समस्याओं का मार्मिक चित्रण किया। उनकी कृतियाँ भारत के सर्वाधिक विशाल और विस्तृत वर्ग की कृतियाँ हैं। प्रेमचंद की रचनाओं को देश में ही नहीं विदेशों में भी आदर प्राप्त हैं। प्रेमचंद और उनकी साहित्य का अंतर्राष्ट्रीय महत्व है। आज उन पर और उनके साहित्य पर विश्व के उस विशाल जन समूह को गर्व है जो साम्राज्यवाद, पूँजीवाद और सामंतवाद के साथ संघर्ष में जुटा हुआ है।

वर्ण्य विषय

प्रेमचंद की रचनाओं में जीवन की विविध समस्याओं का चित्रण हुआ है। उन्होंने मिल मालिक और मजदूरों, जमीदारों और किसानों तथा नवीनता और प्राचीनता का संघर्ष दिखाया है।

प्रेमचंद के युग-प्रवर्तक अवदान की चर्चा करते हुए डॉ. नगेन्द्र लिखते हैं–

'प्रथमत: उन्होंने हिन्दी कथा साहित्य को 'मनोरंजन' के स्तर से उठाकर जीवन के साथ सार्थक रूप से जोड़ने का काम किया। चारों और फैले हुए जीवन और अनेक सामयिक समस्याओं ...ने उन्हें उपन्यास लेखन के लिए प्रेरित किया।

प्रेमचंद ने अपने पात्रों का चुनाव जीवन के प्रत्येक क्षेत्र से किया है, किंतु उनकी दृष्टि समाज से उपेक्षित वर्ग की ओर अधिक रहा है। प्रेमचंद जी ने आदर्शोन्मुख यथार्थवाद को अपनाया है। उनके पात्र प्राय: वर्ग के प्रतिनिधि रूप में सामने आते हैं। घटनाओं ने विकास के साथ-साथ उनकी रचनाओं में पात्रों के चरित्र का भी विकास होता चलता है। उनके कथोपकथन मनोवैज्ञानिक होते हैं। प्रेमचंद जी एक सच्चे समाज सुधारक और क्रांतिकारी लेखक थे। उन्होंने अपनी कृतियों में स्थान-स्थान पर दहेज, बेमेल विवाह आदि का सबल विरोध किया है। नारी के प्रति उनके मन में स्वाभाविक श्रद्धा थी। समाज में उपेक्षिता, अपमानिता और पतिता स्त्रियों के प्रति उनका हृदय सहानुभूति से परिपूर्ण रहा है।

जीवन-दर्शन

मूर्धन्य आलोचक हजारीप्रसाद द्विवेदी लिखते हैं–'अगर आप उत्तर भारत की समस्त जनता के आचार-व्यवहार, भाषा-भाव, रहन-सहन, आशा-आकांक्षा, दु:ख-सुख और सूझ-बूझ को जानना चाहते हैं तो प्रेमचंद से उत्तम परिचायक आपको नहीं मिल सकता।....समाज के विभिन्न आयामों को उनसे अधिक विश्वसनीयता से दिखा पाने वाले परिदर्शक को हिन्दी-उर्दू की दुनिया नहीं जानती, परन्तु आप सर्वत्र ही एक बात लक्ष्य करेंगे, जो संस्कृतियों एवं संपदाओं से लद नहीं गए हैं, अशिक्षित निर्धन हैं, जो गँवार और जाहिल हैं, वो उन लोगों से अधिक आत्मबल रखते हैं और न्याय के प्रति अधिक सम्मान दिखाते हैं, जो शिक्षित हैं, चतुर हैं, जो दुनियादार हैं जो शहरी हैं। यही प्रेमचंद का जीवन-दर्शन है।

प्रेमचंद ने अतीत का गौरव राग नहीं गाया, न ही भविष्य की हैरत-अंगेज कल्पना की। वे ईमानदारी के साथ वर्तमान काल की अपनी वर्तमान अवस्था का विश्लेषण करते रहे। उन्होंने देखा की ये बंधन भीतर का है, बाहर का नहीं। एक बार अगर ये किसान, ये गरीब, यह अनुभव कर सकें की संसार की कोई भी शक्ति उन्हें नहीं दबा सकती तो ये निश्चय ही अजेय हो जायेंगे।

सच्चा प्रेम सेवा ओर त्याग में ही अभिव्यक्ति पाता है। प्रेमचंद का पात्र जब प्रेम करने लगता है तो सेवा की ओर अग्रसर होता है और अपना सर्वस्व परित्याग कर देता है।

भाषा

प्रेमचंद की भाषा सरल और सजीव और व्यावहारिक है। उसे साधारण पढ़े-लिखे लोग भी समझ लेते हैं। उसमें आवश्यकतानुसार अंग्रेजी, उर्दू, फारसी आदि के शब्दों का भी प्रयोग है। प्रेमचंद की भाषा भावों और विचारों के अनुकूल है। गंभीर भावों को व्यक्त करने में गंभीर भाषा और सरल भावों को व्यक्त करने में सरल भाषा को अपनाया गया है। इस कारण भाषा में स्वाभाविक उतार-चढ़ाव आ गया है। प्रेमचंद जी की भाषा पात्रों के अनुकूल है। उनके हिंदू पात्र हिंदी और मुस्लिम पात्र उर्दू बोलते हैं। इसी प्रकार ग्रामीण पात्रों की भाषा ग्रामीण है। और शिक्षितों की भाषा शुद्ध और परिष्कृत भाषा है।

डॉ. नगेन्द्र लिखते हैं 'उनके उपन्यासों की भाषा की खूबी यह है कि शब्दों के चुनाव एवं वाक्य-योजना की दृष्टि से उसे 'सरल' एवं 'बोलचाल की भाषा' कहा जाता है। पर भाषा की इस सरलता को निर्जीवता, एकरसता एवं अकाव्यात्मकता का पर्याय नहीं समझा जाना चाहिए।

"भाषा के सटीक, सार्थक एवं व्यंजनापूर्ण प्रयोग में वे अपने समकालीन ही नहीं, बाद के उपन्यासकारों को भी पीछे छोड़ जाते हैं।

शिल्प

डॉ. नगेन्द्र लिखते हैं-"प्रेमचंद ने सहज सामान्य मानवीय व्यापारों को मनोवैज्ञानिक स्थितियों से जोड़कर उनमें एक सहज-तीव्र मानवीय रुचि पैदा कर दी।

"शिल्प और भाषा की दृष्टि से भी प्रेमचंद ने हिन्दी उपन्यास को विशिष्ट स्तर प्रदान किया। ...चित्रणीय विषय के अनुरूप शिल्प के अन्वेषण का प्रयोग हिन्दी उपन्यास में पहले प्रेमचंद ने ही किया। उनकी विशेषता यह है कि उनके द्वारा प्रस्तुत किये गए दृश्य अत्यंत सजीव गतिमान और नाटकीय हैं।

शैली

प्रेमचंद ने हिंदी और उर्दू दोनों की शैलियों को मिला दिया है। उनकी शैली में जो चुलबुलापन और निखार है वह उर्दू के कारण ही है। प्रेमचंद की शैली

की दूसरी विशेषता सरलता और सजीवता है। प्रेमचंद का हिंदी और उर्दू दोनों पर अधिकार था, अत: वे भावों को व्यक्त करने के लिए बड़े सरल और सजीव शब्द ढूँढ़ लेते थे। उनकी शैली में अलंकारिकता का भी गुण विद्यमान है। उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा आदि अलंकारों के द्वारा शैली में विशेष लालित्य आ गया है। इस प्रकार की अलंकारिक शैली का परिचय देते हुए वे लिखत हैं–'अरब की भारी तलवार ईसाई की हल्की कटार के सामने शिथिल हो गई। एक सर्प के भाँति फन से चोट करती थी, दुसरी नागिन की भाँति उड़ती थी। एक लहरों की भाँति लपकती थी दूसरी जल की मछलियों की भाँति चमकती थी।'

चित्रोपमता भी प्रेमचंद की शैली में खूब मिलती है। प्रेमचंद भाव घटना अथवा पात्र का ऐसे ढंग से वर्णन करते हैं कि सारा दृश्य आँखों के सम्मुख नाच उठता है उसका एक चित्र-सा खिंच जाता है। रंगभूमि उपन्यास के सूरदास की झोपड़ी का दृश्य बहुत सजीव है–

'कैसा नैराश्यपूर्ण दृश्य था। न खाट न बिस्तर, न बर्तन न भांडे। एक कोने में एक मिट्टी का घड़ा जिसकी आयु का अनुमान उस पर जमी हुई काई से हो सकता था। चूल्हे के पास हांडी थी। एक पुरानी चलनी की भाँति छिद्रों से भरा हुआ तवा और एक छोटी-सी कठौत और एक लोटा। बस यही उस घर की संपत्ति थी।'

प्रेमचंद के पात्रों के उत्तर-प्रत्युत्तर उनकी शैली में अभिनयात्मकता का गुण भी समावेश कर देते हैं। उनकी शैली में हास्य-व्यंग्य का भी पुट रहता है, किंतु उनका व्यंग्य ऐसा नहीं होता जो किसा का दिल दुखाए। उसमें एक ऐसी मिठास रहती है जो मनोरंजन के साथ-साथ हमारी आँखें भी खोल देती हैं। एक उदाहरण प्रस्तुत है–'वह गाँव में पुण्यात्मा मशहूर थे। पूर्णमासी को नित्य सत्यनारायण की कथा सुनते पर पटवारी होने के नाते खेत बेगार में जुतवाते थे, सिंचाई बेगार में करवाते थे और आसामियों को एक दूसरे से लड़वा कर रकमें मारते थे। सारा गाँव उनसे काँपता था। परमार्थी थे। बुखार के दिनों में सरकारी कुनैन बाँट कर यश कमाते थे।'

मुहावरों और सूक्तियों का प्रयोग करने में प्रेमचंद जी बड़े कुशल थे। उन्होंने शहरी और ग्रामीण दोनों ही प्रकार के मुहावरों का खूब प्रयोग किया है। प्रेमचंद की सी मुहावरेदार शैली कदाचित ही किसी हिंदी लेखक की हो। क्षमा कहानी में प्रयुक्त एक सूक्ति देखें-'जिसको तलवार का आश्रय लेना पड़े वह सत्य ही नहीं है।' प्रेमचंद जी की शैली पर उनके व्यक्तित्त्व की छाप स्पष्ट रूप से अंकित है।

प्रेमचंद की सि)हस्त लेखनी के कुछ नमूने

प्रेमचंद के सर्वप्रसिद्ध मार्मिक उपन्यास 'गोदान' का क्लाईमैक्स देखिये–

धनिया ने होरी की देह छुई तो कलेजा सन से हो गया। मुख कांतिहीन हो गया था।

कांपती हुई आवाज से बोली –कैसा जी है तुम्हारा?

होरी ने अस्थिर आँखों से देखा और बोला–तुम आ गये गोबर? मैंने मंगल के लिये गाय ले ली है। वह खड़ा है, देखो।

धनिया ने मौत की सूरत देखी थी। उसे पहचानती थी। उसे दबे पाँव आते भी देखा था, आँधी की तरह भी देखा था। उसके सामने सास मरी, ससुर मरा, अपने दो बालक मरे, गाँव के पचासों आदमी मरे। प्राण में एक धक्का-सा लगा। वह आधार जिस पर जीवन टिका हुआ था, जैसे खिसका जा रहा थाय लेकिन नहीं यह धैर्य का समय है, उसकी शंका निर्मूल है, लू लग गयी है, उसी से अचेत हो गये हैं।

उमड़ते हुए आँसुओं को रोककर बोली–मेरी ओर देखो, मैं हूँ, धनियाय मुझे नहीं पहचानते?

होरी की चेतना लौटी। मृत्यु समीप आ गयी थी, आग दहकनेवाली थी। धुआँ शान्त हो गया था। धनिया को दीन आँखों से देखा, दोनों कोनों से आँसू की दो बूंदें ढुलक पड़ीं। क्षीण स्वर में बोला ––मेरा कहा सुना माफ करना धनियाँ! अब जाता हूँ। गाय की लालसा मन में ही रह गयी। अब तो यहाँ के रुपए किरया-करम में जायँगे। रो मत धनिया, अब कब तक जिलायेगी? सब दुर्दशा तो हो गयी। अब मरने दे। और उसकी आँखें फिर बंद हो गयीं। उसी वक्त हीरा और शोभा डोली लेकर पहुँच गये। होरी को उठाकर डोली में लिटाया और गाँव की ओर चले। गाँव में यह खबर हवा की तरह फैल गयी। सारा गाँव जमा हो गया। होरी खाट पर पड़ा शायद सब कुछ देखता था, सब कुछ समझता था, पर जबान बंद हो गयी थी। हाँ, उसकी आँखों से बहते हुए आँसू बतला रहे थे कि मोह का बंधन तोड़ना कितना कठिन हो रहा है। जो कुछ अपने से नहीं बन पड़ा, उसी के दु:ख का नाम तो मोह है। पाले हुए कर्तव्य और निपटाये हुए कामों का क्या मोह! मोह तो उन अनाथों को छोड़ जाने में है, जिनके साथ हम अपना कर्तव्य न निभा सके, उन अधूरे मंसूबों में है, जिन्हें हम न पूरा कर सके।

मगर सब कुछ समझकर भी धनिया आशा की मिटती हुई छाया को पकड़े हुए थी। आँखों से आँसू गिर रहे थे, मगर यंत्र की भाँति दौड़-दौड़कर कभी आम

भून कर पना बनाती, कभी होरी की देह में गेहूँ की भूसी की मालिश करती। क्या करे, पैसे नहीं हैं, नहीं किसी को भेजकर डाक्टर बुलाती। हीरा ने रोते हुए कहा --भाभी, दिल कड़ा करो, गो-दान करा दो, दादा चले।

धनिया ने उसकी ओर तिरस्कार की आँखों से देखा। अब वह दिल को और कितना कठोर करे? अपने पति के प्रति उसका जो धर्म है, क्या वह उसको बताना पड़ेगा? जो जीवन का संगी था उसके नाम को रोना ही क्या उसका धर्म है? और कई आवाजें आयीं --हाँ गो-दान करा दो, अब यही समय है।

धनिया यंत्र की भांति उठी, आज जो सुतली बेची थी उसके बीस आने पैसे लायी और पति के ठंडे हाथ में रखकर सामने खड़े दातादीन से बोली --महराज, घर में न गाय है, न बछिया, न पैसा। यही पैसे हैं, यही इनका गो-दान है। और पछाड़ खाकर गिर पड़ी।

रचनाओं की रूपरेखा

इसके कुछ समय के बाद प्रेमचंद ने हिन्दी में कहानियों का एक और संग्रह प्रकाशित किया। इस संग्रह का शीर्षक था 'प्रेम-पूर्णिमा'। 'बड़े घर की बेटी' और 'पंच परमेश्वर' की ही परम्परा की एक और अद्‌भुत कहानी 'ईश्वरीय न्याय' इस संग्रह में थी। शायद कम लोग जानते है कि प्रख्यात कथाकार मुंशी प्रेमचंद अपनी महान रचनाओं की रूपरेखा पहले अंग्रेजी में लिखते थे और इसके बाद उसे हिन्दी अथवा उर्दू में अनूदित कर विस्तारित करते थे। भोपाल स्थित बहुकला केंद्र भारत भवन की रजत जयंती के उपलक्ष्य पर प्रेमचंद के व्यक्तित्त्व एवं कृतित्त्व पर यहाँ आयोजित सात दिवसीय प्रदर्शनी में इस तथ्य का खुलासा करते हुए उनकी कई हिन्दी एवं उर्दू रचनाओं की अंग्रेजी में लिखी रूपरेखाएँ प्रदर्शित की गई हैं। प्रदर्शनी के संयोजक और हिन्दी के समालोचक डॉ. कमल किशोर गोयनका ने इस अवसर पर कहा कि प्रेमचंद हिन्दी और उर्दू के साथ-साथ अंग्रेजी भाषा के अच्छे जानकार थे। डॉ. गोयनका ने बताया कि प्रेमचंद अपनी कृतियों की रूपरेखा पहले अंग्रेजी में ही लिखते थे। उसके बाद उसका अनुवाद करते हुए हिन्दी या उर्दू में रचना पूरी कर देते थे। डॉ. गोयनका ने कहा कि प्रेमचंद ने अपनी महान कृति 'गोदान' की भी रूपरेखा पहले अंग्रेजी में लिखी थी, जिसकी मूल प्रति यहाँ प्रदर्शनी में लगाई गई है। उनके एक अलिखित उपन्यास की रूपरेखा भी अंग्रेजी में लिखी हुई उन्हें मिली है। प्रेमचंद ने रंग भूमि और कायाकल्प उपन्यासों की रूपरेखा भी अंग्रेजी में लिखी थी। उनकी डायरी भी अंग्रेजी में लिखी हुई

मिली है। वहीं, प्रदर्शनी में पंडित जवाहर लाल नेहरू के अपनी पुत्री को अंग्रेजी में लिखे गए पत्रों का अनुवाद हिन्दी में करने के आचार्य नरेन्द्र देव का प्रेमचंद को लिखा गया आग्रह पत्र भी रखा गया है। प्रेमचंद ने पं नेहरू के इन पत्रों को हिन्दी में रूपान्तरित किया था। दिल्ली विश्वविद्यालय में प्रोफेसर रहे डा. गोयनका ने कहा कि वर्ष 1972 में प्रेमचंद पर पी.एच.डी करने के बाद उन्होंने प्रेमचंद द्वारा रचित 1500 से अधिक पृष्ठों का अप्राप्य साहित्य खोजा। इसमें 30 नई कहानियाँ मिलीं। प्रोफेसर महावीर सरन जैन ने प्रेमचन्द के कथा-साहित्य के भाषिक स्वरूप का विश्लेषण किया।

कृतियाँ

प्रेमचन्द की रचना-दृष्टि विभिन्न साहित्य रूपों में प्रवृत्त हुई। बहुमुखी प्रतिभा संपन्न प्रेमचंद ने उपन्यास, कहानी, नाटक, समीक्षा, लेख, सम्पादकीय, संस्मरण आदि अनेक विधाओं में साहित्य की सृष्टि की। प्रमुखतया उनकी ख्याति कथाकार के तौर पर हुई और अपने जीवन काल में ही वे 'उपन्यास सम्राट' की उपाधि से सम्मानित हुए। उन्होंने कुल 15 उपन्यास, 300 से कुछ अधिक कहानियाँ, 3 नाटक, 10 अनुवाद, 7 बाल-पुस्तकें तथा हजारों पृष्ठों के लेख, सम्पादकीय, भाषण, भूमिका, पत्र आदि की रचना की लेकिन जो यश और प्रतिष्ठा उन्हें उपन्यास और कहानियों से प्राप्त हुई, वह अन्य विधाओं से प्राप्त न हो सकी। यह स्थिति हिन्दी और उर्दू भाषा दोनों में समान रूप से दिखायी देती है।

उपन्यास

प्रेमचंद के उपन्यास न केवल हिन्दी उपन्यास साहित्य में बल्कि संपूर्ण भारतीय साहित्य में मील के पत्थर हैं। प्रेमचन्द कथा-साहित्य में उनके उपन्यासकार का आरम्भ पहले होता है। उनका पहला उर्दू उपन्यास (अपूर्ण) 'असरारे मआबिद उर्फ देवस्थान रहस्य' उर्दू साप्ताहिक 'आवाज-ए-खल्क' में 8 अक्टूबर, 1903 से 1 फरवरी, 1905 तक धारावाहिक रूप में प्रकाशित हुआ। उनका दूसरा उपन्यास 'हमखुर्मा व हमसवाब' जिसका हिंदी रूपांतरण 'प्रेमा' नाम से 1907 में प्रकाशित हुआ। चूंकि प्रेमचंद मूल रूप से उर्दू के लेखक थे और उर्दू से हिंदी में आए थे, इसलिए उनके सभी आरंभिक उपन्यास मूल रूप से उर्दू में लिखे गए और बाद में उनका हिन्दी तर्जुमा किया

गया। उन्होंने 'सेवासदन' (1918) उपन्यास से हिंदी उपन्यास की दुनिया में प्रवेश किया। यह मूल रूप से उन्होंने 'बाजारे-हुस्न' नाम से पहले उर्दू में लिखा लेकिन इसका हिंदी रूप 'सेवासदन' पहले प्रकाशित कराया। 'सेवासदन' एक नारी के वेश्या बनने की कहानी है। डॉ रामविलास शर्मा के अनुसार 'सेवासदन' में व्यक्त मुख्य समस्या भारतीय नारी की पराधीनता है। इसके बाद किसान जीवन पर उनका पहला उपन्यास 'प्रेमाश्रम' (1921) आया। इसका मसौदा भी पहले उर्दू में 'गोशाए-आफियत' नाम से तैयार हुआ था लेकिन 'सेवासदन' की भांति इसे पहले हिंदी में प्रकाशित कराया। 'प्रेमाश्रम' किसान जीवन पर लिखा हिंदी का संभवत: पहला उपन्यास है। यह अवध के किसान आंदोलनों के दौर में लिखा गया। इसके बाद 'रंगभूमि' (1925), 'कायाकल्प' (1926), 'निर्मला' (1927), 'गबन' (1931), 'कर्मभूमि' (1932) से होता हुआ यह सफर 'गोदान' (1936) तक पूर्णता को प्राप्त हुआ। रंगभूमि में प्रेमचंद एक अंधे भिखारी सूरदास को कथा का नायक बनाकर हिंदी कथा साहित्य में क्रांतिकारी बदलाव का सूत्रपात कर चुके थे।

गोदान का हिंदी साहित्य ही नहीं, विश्व साहित्य में महत्वपूर्ण स्थान है। इसमें प्रेमचंद की साहित्य संबंधी विचारधारा 'आदर्शोन्मुख यथार्थवाद' से 'आलोचनात्मक यथार्थवाद' तक की पूर्णता प्राप्त करती है। एक सामान्य किसान को पूरे उपन्यास का नायक बनाना भारतीय उपन्यास परंपरा की दिशा बदल देने जैसा था। सामंतवाद और पूंजीवाद के चक्र में फँसकर हुई कथानायक होरी की मृत्यु पाठकों के जेहन को झकझोर कर रख जाती है। किसान जीवन पर अपने पिछले उपन्यासों 'प्रेमाश्रम' और 'कर्मभूमि' में प्रेमंचद यथार्थ की प्रस्तुति करते-करते उपन्यास के अंत तक आदर्श का दामन थाम लेते हैं। लेकिन गोदान का कारुणिक अंत इस बात का गवाह है कि तब तक प्रेमचंद का आदर्शवाद से मोहभंग हो चुका था। यह उनकी आखिरी दौर की कहानियों में भी देखा जा सकता है। 'मंगलसूत्र' प्रेमचंद का अधूरा उपन्यास है। प्रेमचंद के उपन्यासों का मूल कथ्य भारतीय ग्रामीण जीवन था। प्रेमचंद ने हिंदी उपन्यास को जो ऊँचाई प्रदान की, वह परवर्ती उपन्यासकारों के लिए एक चुनौती बनी रही। प्रेमचंद के उपन्यास भारत और दुनिया की कई भाषाओं में अनुदित हुए, खासकर उनका सर्वाधिक चर्चित उपन्यास गोदान।

असरारे मआबिद उर्फ देवस्थान रहस्य' उर्दू साप्ताहिक 'आवाज-ए-खल्क' में 8 अक्टूबर, 1903 से 1 फरवरी, 1905 तक प्रकाशित।

सेवासदन 1918
प्रेमाश्रम 1922
रंगभूमि 1925
निर्मला 1925
कायाकल्प 1927
गबन 1928
कर्मभूमि 1932
गोदान 1936
मंगलसूत्र (अपूर्ण)

कहानी

इनकी अधिकतर कहानियाँ में निम्न व मध्यम वर्ग का चित्रण है। डॉ. कमलकिशोर गोयनका ने प्रेमचंद की संपूर्ण हिंदी-उर्दू कहानी को प्रेमचंद कहानी रचनावली नाम से प्रकाशित कराया है। उनके अनुसार प्रेमचंद ने कुल 301 कहानियाँ लिखी हैं जिनमें 3 अभी अप्राप्य हैं। प्रेमचंद का पहला कहानी संग्रह सोजे वतन नाम से जून 1908 में प्रकाशित हुआ। इसी संग्रह की पहली कहानी दुनिया का सबसे अनमोल रतन को आम तौर पर उनकी पहली प्रकाशित कहानी माना जाता रहा है। डॉ. गोयनका के अनुसार कानपुर से निकलने वाली उर्दू मासिक पत्रिका जमाना के अप्रैल अंक में प्रकाशित सांसारिक प्रेम और देश-प्रेम (इश्के दुनिया और हुब्बे वतन) वास्तव में उनकी पहली प्रकाशित कहानी है। उनके जीवन काल में कुल नौ कहानी संग्रह प्रकाशित हुए–'सप्त सरोज', 'नवनिधि', 'प्रेमपूर्णिमा', 'प्रेम-पचीसी', 'प्रेम-प्रतिमा', 'प्रेम-द्वादशी', 'समरयात्रा', 'मानसरोवर'–भाग एक व दो और 'कफन'। उनकी मृत्यु के बाद उनकी कहानियाँ 'मानसरोवर' शीर्षक से 8 भागों में प्रकाशित हुई। प्रेमचंद साहित्य के मुदराधिकार से मुक्त होते ही विभिन्न संपादकों और प्रकाशकों ने प्रेमचंद की कहानियों के संकलन तैयार कर प्रकाशित कराए। उनकी कहानियों में विषय और शिल्प की विविधता है। उन्होंने मनुष्य के सभी वर्गों से लेकर पशु-पक्षियों तक को अपनी कहानियों में मुख्य पात्र बनाया है। उनकी कहानियों में किसानों, मजदूरों, स्त्रियों, दलितों, आदि की समस्याएं गंभीरता से चित्रित हुई हैं। उन्होंने समाज सुधार, देशप्रेम, स्वाधीनता संग्राम आदि से संबंधित कहानियाँ लिखी हैं। उनकी ऐतिहासिक कहानियाँ तथा प्रेम संबंधी कहानियाँ भी काफी लोकप्रिय

साबित हुई। प्रेमचंद की प्रमुख कहानियों में ये नाम लिये जा सकते हैं–'पंच परमेश्वर', 'गुल्ली डंडा', 'दो बैलों की कथा', 'ईदगाह', 'बड़े भाई साहब', 'पूस की रात', 'कफन', 'ठाकुर का कुआँ', 'सद्गति', 'बूढ़ी काकी', 'तावान', 'विध्वंस', 'दूध का दाम', 'मंत्र' आदि।

नाटक

प्रेमचंद ने 'संग्राम' (1923), 'कर्बला' (1924) और 'प्रेम की वेदी' (1933) नाटकों की रचना की। ये नाटक शिल्प और संवेदना के स्तर पर अच्छे हैं लेकिन उनकी कहानियों और उपन्यासों ने इतनी ऊँचाई प्राप्त कर ली थी कि नाटक के क्षेत्र में प्रेमचंद को कोई खास सफलता नहीं मिली। ये नाटक वस्तुतः संवादात्मक उपन्यास ही बन गए हैं।

लेख/निबंध

प्रेमचंद एक संवेदनशील कथाकार ही नहीं, सजग नागरिक व संपादक भी थे। उन्होंने 'हंस', 'माधुरी', 'जागरण' आदि पत्र-पत्रिकाओं का संपादन करते हुए व तत्कालीन अन्य सहगामी साहित्यिक पत्रिकाओं 'चाँद', 'मर्यादा', 'स्वदेश' आदि में अपनी साहित्यिक व सामाजिक चिंताओं को लेखों या निबंधों के माध्यम से अभिव्यक्त किया। अमृतराय द्वारा संपादित 'प्रेमचंद–विविध प्रसंग' (तीन भाग) वास्तव में प्रेमचंद के लेखों का ही संकलन है। प्रेमचंद के लेख प्रकाशन संस्थान से 'कुछ विचार' शीर्षक से भी छपे हैं। प्रेमचंद के मशहूर लेखों में निम्न लेख शुमार होते हैं–साहित्य का उद्देश्य, पुराना जमाना नया जमाना, स्वराज के फायदे, कहानी कला (1,2,3), कौमी भाषा के विषय में कुछ विचार, हिंदी-उर्दू की एकता, महाजनी सभ्यता, उपन्यास, जीवन में साहित्य का स्थान आदि।

अनुवाद

प्रेमचंद एक सफल अनुवादक भी थे। उन्होंने दूसरी भाषाओं के जिन लेखकों को पढ़ा और जिनसे प्रभावित हुए, उनकी कृतियों का अनुवाद भी किया। 'टॉलस्टॉय की कहानियाँ' (1923), गाल्सवर्दी के तीन नाटकों का 'हड़ताल' (1930), 'चाँदी की डिबिया' (1931) और 'न्याय' (1931) नाम से अनुवाद किया। उनके द्वारा रतननाथ सरशार के उर्दू उपन्यास 'फसान-ए-आजाद' का हिंदी अनुवाद 'आजाद कथा' बहुत मशहूर हुआ।

व्यक्तित्त्व

सादा एवं सरल जीवन के मालिक प्रेमचन्द सदा मस्त रहते थे। उनके जीवन में विषमताओं और कटुताओं से वह लगातार खेलते रहे। इस खेल को उन्होंने बाजी मान लिया जिसको हमेशा जीतना चाहते थे। कहा जाता है कि प्रेमचन्द हंसोड़ प्रकृति के मालिक थे। विषमताओं भरे जीवन में हंसोड़ होना एक बहादुर का काम है। इससे इस बात को भी समझा जा सकता है कि वह अपूर्व जीवनी-शक्ति का द्योतक थे। सरलता, सौजन्यता और उदारता की वह मूर्ति थे। जहाँ उनके हृदय में मित्रों के लिए उदार भाव था वहीं उनके हृदय में गरीबों एवं पीड़ितों के लिए सहानुभूति का अथाह सागर था। प्रेमचन्द उच्चकोटि के मानव थे। इनको गाँव जीवन से अच्छा प्रेम था। वह सदा साधारण गँवई लिबास में रहते थे। जीवन का अधिकांश भाग उन्होंने गाँव में ही गुजारा। बाहर से बिल्कुल साधारण दिखने वाले प्रेमचन्द अन्दर से जीवनी-शक्ति के मालिक थे। अन्दर से जरा सा भी किसी ने देखा तो उसे प्रभावित होना ही था। वह आडम्बर एवं दिखावा से मीलों दूर रहते थे। जीवन में न तो उनको विलास मिला और न ही उनको इसकी तमन्ना थी। तमाम महापुरुषों की तरह अपना काम स्वयं करना पसंद करते थे।

ईश्वर के प्रति आस्था

जीवन के प्रति उनकी अगाढ़ आस्था थी लेकिन जीवन की विषमताओं के कारण वह कभी भी ईश्वर के बारे में आस्थावादी नहीं बन सके। धीरे–धीरे वे अनीश्वरवादी से बन गए थे। एक बार उन्होंने जैनेन्दजी को लिखा 'तुम आस्तिकता की ओर बढ़े जा रहे हो–जा नहीं रहे पक्के भगत बनते जा रहे हो। मैं संदेह से पक्का नास्तिक बनता जा रहा हूँ। मृत्यू के कुछ घंटे पहले भी उन्होंने जैनेन्द्रजी से कहा था –जैनेन्द्र, लोग ऐसे समय में ईश्वर को याद करते हैं मुझे भी याद दिलाई जाती है। पर मुझे अभी तक ईश्वर को कष्ट देने की आवश्यकता महसूस नहीं हुई।

शोषण और प्रेमचंद

प्रेमचंद और शोषण का बहुत पुराना रिश्ता माना जा सकता है। क्योंकि बचपन से ही शोषण के शिकार रहे प्रेमचन्द इससे अच्छी तरह वाकिफ हो गए थे। समाज में सदा वर्गवाद व्याप्त रहा है। समाज में रहने वाले हर व्यक्ति को

किसी न किसी वर्ग से जुड़ना ही होगा। प्रेमचन्द ने वर्गवाद के खिलाफ लिखने के लिए ही सरकारी पद से त्यागपत्र दे दिया। वह इससे सम्बन्धित बातों को उन्मुख होकर लिखना चाहते थे। उनके मुताबिक वर्तमान युग न तो धर्म का है और न ही मोक्ष का। अर्थ ही इसका प्राण बनता जा रहा है। आवश्यकता के अनुसार अर्थोपार्जन सबके लिए अनिवार्य होता जा रहा है। इसके बिना जिंदा रहना सर्वथा असंभव है। प्रेमचंद जी कहते हैं कि समाज में जिंदा रहने में जितनी कठिनाइयों का सामना लोग करेंगे उतना ही वहाँ गुनाह होगा। अगर समाज में लोग खुशहाल होंगे तो समाज में अच्छाई ज्यादा होगी और समाज में गुनाह नहीं के बराबर होगा। प्रेमचन्द ने शोषितवर्ग के लोगों को उठाने का हर संभव प्रयास किया। उन्होंने आवाज लगाई ए लोगों जब तुम्हें संसार में रहना है तो जिन्दों की तरह रहो, मुर्दों की तरह जिंदा रहने से क्या फायदा। प्रेमचन्द ने अपनी कहानियों में शोषक–समाज के विभिन्न वर्गों की करतूतों व हथकण्डों का पर्दाफाश किया है। ये निम्नलिखित हैं–

1. ग्राम एवं नगर के महाजन
2. सामंतवाद के प्रतिनिधि–जमींदार
3. पूँजीवाद के प्रतिनिधि–उद्योगपति
4. सरकारी अर्द्धसरकारी अफसर

रूढ़िवाद का विरोध

जिस समय मुंशी प्रेमचन्द का जन्म हुआ वह युग सामाजिक–धार्मिक रूढ़िवाद से भरा हुआ था। इस रूढ़िवाद से स्वयं प्रेमचन्द भी प्रभावित हुए। तब प्रेमचन्द ने कथा–साहित्य का सफर शुरू किया, और अनेकों प्रकार के रूढ़िवाद से ग्रस्त समाज को यथा शक्ति कला के शस्त्र से मुक्त कराने का संकल्प लिया। अपनी कहानी के बालक के माध्यम से यह घोषणा करते हुए कहा कि 'मैं निरर्थक रुढ़ियों और व्यर्थ के बन्धनों का दास नहीं हूँ।

साहित्य के भावों की जो उच्चता, भाषा की प्रौढ़ता और स्पष्टता, सुन्दरता की जो साधना होती है, वह हमें सिनेमा में नहीं मिलती।

गोदान

गोदान, प्रेमचन्द का अंतिम और सबसे महत्वपूर्ण उपन्यास माना जाता है। कुछ लोग इसे उनकी सर्वोत्तम कृति भी मानते हैं। इसका प्रकाशन 1936 ई. में

हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय, बम्बई द्वारा किया गया था। इसमें भारतीय ग्राम समाज एवं परिवेश का सजीव चित्रण है। गोदान ग्राम्य जीवन और कृषि संस्कृति का महाकाव्य है। इसमें प्रगतिवाद, गाँधीवाद और मार्क्सवाद (साम्यवाद) का पूर्ण परिप्रेक्ष्य में चित्रण हुआ है।

गोदान हिंदी के उपन्यास-साहित्य के विकास का उज्वलतम प्रकाशस्तंभ है। गोदान के नायक और नायिका होरी और धनिया के परिवार के रूप में हम भारत की एक विशेष संस्कृति को सजीव और साकार पाते हैं, ऐसी संस्कृति जो अब समाप्त हो रही है या हो जाने को है, फिर भी जिसमें भारत की मिट्टी की सोंधी सुबास भरी है। प्रेमचंद ने इसे अमर बना दिया है।

उपन्यास का सारांश

गोदान प्रेमचंद का हिंदी उपन्यास है जिसमें उनकी कला अपने चरम उत्कर्ष पर पहुँची है। गोदान में भारतीय किसान का संपूर्ण जीवन –उसकी आकांक्षा और निराशा, उसकी धर्मभीरुता और भारतपरायणता के साथ स्वार्थपरता और बैठकबाजी, उसकी बेबसी और निरीहता–का जीता जागता चित्र उपस्थित किया गया है। उसकी गर्दन जिस पैर के नीचे दबी है उसे सहलाता, क्लेश और वेदना को झुठलाता, 'मरजाद' की झूठी भावना पर गर्व करता, ऋणग्रस्तता के अभिशाप में पिसता, तिल-तिल शूलों भरे पथ पर आगे बढ़ता, भारतीय समाज का मेरुदंड यह किसान कितना शिथिल और जर्जर हो चुका है, यह गोदान में प्रत्यक्ष देखने को मिलता है। नगरों के कोलाहलमय चकाचौंध ने गाँवों की विभूति को कैसे ढँक लिया है, जमींदार, मिल मालिक, पत्रसंपादक, अध्यापक, पेशेवर वकील और डाक्टर, राजनीतिक नेता और राजकर्मचारी जोंक बने कैसे गाँव के इस निरीह किसान का शोषण कर रहे हैं और कैसे गाँव के ही महाजन और पुरोहित उनकी सहायता कर रहे हैं, गोदान में ये सभी तत्त्व नखदर्पण के समान प्रत्यक्ष हो गए हैं। गोदान, वास्तव में, 20वीं शताब्दी की तीसरी और चौथी दशाब्दियों के भारत का ऐसा सजीव चित्र है, जैसा हमें अन्यत्र मिलना दुर्लभ है।

गोदान में बहुत सी बातें कही गई हैं। जान पड़ता है प्रेमचंद ने अपने संपूर्ण जीवन के व्यंग और विनोद, कसक और वेदना, विद्रोह और वैराग्य, अनुभव और आदर्श् सभी को इसी एक उपन्यास में भर देना चाहा है। कुछ आलाचकों को इसी कारण उसमें अस्तव्यस्तता मिलती है। उसका कथानक शिथिल, अनियंत्रित और स्थान-स्थान पर अति नाटकीय जान पड़ता है। ऊपर से देखने पर है भी ऐसा

ही, परंतु सूक्ष्म रूप से देखने पर गोदान में लेखक का अद्‌भुत उपन्यास-कौशल दिखाई पड़ेगा क्योंकि उन्होंने जितनी बातें कहीं हैं वे सभी समुचित उठान में कहीं गई हैं। प्रेमचंद ने एक स्थान पर लिखा है –'उपन्यास में आपकी कलम में जितनी शक्ति हो अपना जोर दिखाइए, राजनीति पर तर्क कीजिए, किसी महफिल के वर्णन में 10-20 पृष्ठ लिख डालिए (भाषा सरस होनी चाहिए), कोई दूषण नहीं।' प्रेमचंद ने गोदान में अपनी कलम का पूरा जोर दिखाया है। सभी बातें कहने के लिये उपयुक्त प्रसंगकल्पना, समुचित तर्कजाल और सही मनोवैज्ञानिक विश्लेषण प्रवाहशील, चुस्त और दुरुस्त भाषा और वणर्नशैली में उपस्थित कर देना प्रेमचंद का अपना विशेष कौशल है और इस दृष्टि से उनकी तुलना में शायद ही किसी उपन्यास लेखक को रखा जा सकता है।

जिस समय प्रेमचन्द का जन्म हुआ वह युग सामाजिक-धार्मिक रुढ़िवाद से भरा हुआ था। इस रुढ़िवाद से स्वयं प्रेमचन्द भी प्रभावित हुए। जब अपने कथा-साहित्य का सफर शुरु किया अनेकों प्रकार के रुढ़िवाद से ग्रस्त समाज को यथाशक्ति कला के शस्त्र द्वारा मुक्त कराने का संकल्प लिया। अपनी कहानी के बालक के माध्यम से यह घोषणा करते हुए कहा कि 'मैं निरर्थक रूढ़ियों और व्यर्थ के बन्धनों का दास नहीं हूँ।'

प्रेमचन्द और शोषण का बहुत पुराना रिश्ता माना जा सकता है। क्योंकि बचपन से ही शोषण के शिकार रहे प्रेमचन्द इससे अच्छी तरह वाकिफ हो गए थे। समाज में सदा वर्गवाद व्याप्त रहा है। समाज में रहने वाले हर व्यक्ति को किसी न किसी वर्ग से जुड़ना ही होगा।

प्रेमचन्द ने वर्गवाद के खिलाफ लिखने के लिए ही सरकारी पद से त्यागपत्र दे दिया। वह इससे सम्बन्धित बातों को उन्मुख होकर लिखना चाहते थे। उनके मुताबिक वर्तमान युग न तो धर्म का है और न ही मोक्ष का। अर्थ ही इसका प्राण बनता जा रहा है। आवश्यकता के अनुसार अर्थोपार्जन सबके लिए अनिवार्य होता जा रहा है। इसके बिना जिन्दा रहना सर्वथा असंभव है।

वह कहते हैं कि समाज में जिन्दा रहने में जितनी कठिनाइयों का सामना लोग करेंगे उतना ही वहाँ गुनाह होगा। अगर समाज में लोग खुशहाल होंगे तो समाज में अच्छाई ज्यादा होगी और समाज में गुनाह नहीं के बराबर होगा। प्रेमचन्द ने शोषितवर्ग के लोगों को उठाने का हर संभव प्रयास किया। उन्होंने आवाज लगाई 'ए लोगों जब तुम्हें संसार में रहना है तो जिन्दों की तरह रहो, मुर्दों की तरह जिन्दा रहने से क्या फायदा।'

प्रेमचन्द ने अपनी कहानियों में शोषक-समाज के विभिन्न वर्गों की करतूतों व हथकण्डों का पर्दाफाश किया है।

कथानक

उपन्यास वे ही उच्च कोटि के समझे जाते हैं जिनमें आदर्श तथा यथार्थ का पूर्ण सामंजस्य हो। 'गोदान' में समान्तर रूप से चलने वाली दोनो कथाएं हैं –एक ग्राम्य कथा और दूसरी नागरी कथा, लेकिन इन दोनो कथाओं में परस्पर सम्बद्धता तथा सन्तुलन पाया जाता है। ये दोनो कथाएं इस उपन्यास की दुर्बलता नहीं वरन, सशक्त विशेषता है।

यदि हमें तत्कालीन समय के भारत वर्ष को समझना है तो हमें निश्चित रूप से गोदान को पढ़ना चाहिए इसमें देश-काल की परिस्थितियों का सटीक वर्णन किया गया है। कथा नायक होरी की वेदना पाठको के मन में गहरी संवेदना भर देती है। संयुक्त परिवार के विघटन की पीड़ा होरी को तोड़ देती है, परन्तु गोदान की इच्छा उसे जीवित रखती है और वह यह इच्छा मन में लिए ही वह इस दुनिया से कूच कर जाता है।

गोदान औपनिवेशिक शासन के अंतर्गत किसान का महाजनी व्यवस्था में चलने वाले निरंतर शोषण तथा उससे उत्पन्न संत्रास की कथा है। गोदान का नायक होरी एक किसान है जो किसान वर्ग के प्रतिनिधि के तौर पर मौजूद है। 'आजीवन दुर्धर्ष संघर्ष के बावजूद उसकी एक गाय की आकांक्षा पूर्ण नहीं हो पाती'। गोदान भारतीय कृषक जीवन के संत्रासमय संघर्ष की कहानी है।

'गोदान' होरी की कहानी है, उस होरी की जो जीवन भर मेहनत करता है, अनेक कष्ट सहता है, केवल इसलिए कि उसकी मर्यादा की रक्षा हो सके और इसीलिए वह दूसरों को प्रसन्न रखने का प्रयास भी करता है, किंतु उसे इसका फल नहीं मिलता और अंत में मजबूर होना पड़ता है, फिर भी अपनी मर्यादा नहीं बचा पाता। परिणामत: वह जप-तप के अपने जीवन को ही होम कर देता है। यह होरी की कहानी नहीं, उस काल के हर भारतीय किसान की आत्मकथा है। और इसके साथ जुड़ी है शहर की प्रासंगिक कहानी। 'गोदान' में उन्होंने ग्राम और शहर की दो कथाओं का इतना यथार्थ रूप और संतुलित मिश्रण प्रस्तुत किया है। दोनों की कथाओं का संगठन इतनी कुशलता से हुआ है कि उसमें प्रवाह आद्योपांत बना रहता है। प्रेमचंद की कलम की यही विशेषता है।

इस रचना में प्रेमचन्द का गाँधीवाद से मोहभंग साफ-साफ दिखाई पड़ता है। प्रेमचन्द के पूर्व के उपन्यासों में जहाँ आदर्शवाद दिखाई पड़ता है, गोदान में आकर यथार्थवाद नग्न रूप में परिलक्षित होता है। कई समालोचकों ने इसे महाकाव्यात्मक उपन्यास का दर्जा भी दिया है।गोदान उपन्यास प्रेमचंद का अंतिम और सबसे महत्त्वपूर्ण उपन्यास माना जाता है। प्रेमचंद ने गोदान को 1932 में लिखना शुरू किया था और 1936 में प्रकाशित करवाया था। 1936 में प्रकाशित गोदान उपन्यास को हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय बम्बई द्वारा किया गया था। संसार की शायद ही कोई भाषा होगी, जिसमे गोदान का अनुवाद न हुआ हो। प्रेमचंद का गोदान, किसान जीवन के संघर्ष एवं वेदना को अभिव्यक्त करने वाली सबसे महत्त्वपूर्ण रचना है। यह प्रेमचंद की आकस्मिक रचना नहीं है, उनके जीवन भर के लेखन प्रयासों का निष्कर्ष है। यह रचना और भी तब महत्त्वपूर्ण बन जाती है, जब प्रेमचंद भारत के ऐसे कालखंड का वर्णन करते हैं, जिसमे सामंती समाज के अंग किसान और जमींदार दोनों ही मिट रहे हैं और पूँजीवादी समाज के मजदूर तथा उद्योगपति उनकी जगह ले रहे हैं। गोदान, ग्रामीण जीवन और कृषक संस्कृति का महाकाव्य कहा जा सकता है। ग्रामीण जीवन का इतना वास्तविक, व्यापक और प्रभावशाली चित्रण, हिन्दी साहित्य के किसी अन्य उपन्यास में नहीं हुआ है।

कथावस्तु

उपन्यास की सम्पूर्ण कहानी जिन उपकरणों से मिलकर बनती है, उसे कथावस्तु कहते है। इसी के ऊपर उपन्यास की पूरी सफलता निर्भर करती है। उपन्यास जैसा कि रॉल्फ फॉक्स लिखते हैं "मात्र कथात्मक गद्य नहीं है, वह मानव के जीवन का गद्य है। ऐसी पहली कला है जो सम्पूर्ण मानव को लेकर उसे अभिव्यक्ति प्रदान करने की चेष्टा करती है। ई.एम. फॉस्टर ने बताया है कि उपन्यास को अन्य कलाओं से अलग करने वाली महान विशेषता यह है कि उसमें गुप्त जीवन को प्रत्यक्ष करने की शक्ति है। इस प्रकार यह कला कविता, नाटक, सिनेमा, चित्रकला या संगीत से यथार्थ का एक भिन्न दृश्य प्रस्तुत करती है।" जहाँ तक 'गोदान' का सवाल है तो इसके कथावस्तु संगठन में मौलिकता है। 'रंगभूमि' और 'कर्मभूमि' की कथा के सामान इसमें बिखराव और अनियंत्रित फैलाव नहीं है। 'गोदान' की अधिकारिक कथा कृषक होरी की कथा है जो अन्य

कथांशों को अपने में बाँधने तथा समेटने का सामर्थ्य रखती है। गोदानकार ने घटनाओं की संयोजन और कथा-विकास में भी कौशल का परिचय दिया है। 'गोदान' की कथा जिस बिंदु से प्रारंभ होती है, अनेक घटनाओं का चक्कर लगाने के बाद उसी बिंदु पर आकर मिल जाती है।

कथा का यह चक्रवत-विकास 'गोदान' की मौलिकता है जो अन्य उपन्यासों में प्राप्त नहीं होता है। प्रेमचंद पर लिखी गई पहली आलोचनात्मक पुस्तक 'प्रेमचंद की उपन्यास-कला' में जनार्दन प्रसाद झा 'द्विज' लिखते हैं–"वे केवल पारिवारिक जीवन का चित्र या किसी संप्रदाय विशेष की दुरावस्थाओं का वर्णन उपस्थित करके ही अपना काम पूरा नहीं कर लेते, अपने विस्तृत समाज और विशाल राष्ट्र की व्यापक एवं गंभीर समस्याओं पर पूरा-पूरा प्रकाश डालते हुए भिन्न-भिन्न अवस्थाओं में विभक्त सांसारिक जीवन की विशद व्याख्या करना भी उनका उद्देश्य रहता है। अपने इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए ये जीवन-व्यापार के प्रायः सभी क्षेत्रों से कथा–सामग्री का संचयन किया करते हैं। किसान, जमींदार, राजा, रंक, साधू, चोर, पुलिस, हाकिम, वकील, विद्यार्थी, अध्यापक, राजनीतिज्ञ, धर्मनीतिज्ञ, सुधारक, प्रचारक, देश-सेवक, पण्डे, गुंडे आदि सभी प्रकार के लोगों की जीवन-घटना के रंग-बिरंगे चित्र खींचकर ये हमारे लिए मनोवैज्ञानिक अध्ययन की भरी-पूरी सामग्री तो प्रस्तुत करते हैं, साथ ही इस बात का भी ध्यान रखते हैं कि इनकी इस सामग्री से हमें अपने जीवन को उत्साहपूर्ण उद्योगी, सुदृढ़ और शिक्षामय बनाने की सुविधाएँ प्राप्त हों। इनके उपन्यासों की यह वस्तु–विविधता सचमुच बेजोड़ है।

'गोदान' की कथावस्तु को लेकर आलोचकों में भी एक राय नहीं है। नन्द दुलारे वाजपेयी, जैनेन्द्र कुमार और शिवनारायण श्रीवास्तव जैसे विद्वान गोदान की कथा-संचयन को असंगठित एवं विश्रृंखल मानते हैं। नन्ददुलारे वाजपेयी ने 'प्रेमचंद-साहित्यिक विवेचन' में 'गोदान' की कथावस्तु के संबंध में लिखा है कि इसमें ग्रामीण और शहरी कथाएँ इतनी अलग-अलग हैं कि इन दोनों कथाओं को लेकर दो स्वतंत्र उपन्यासों की रचना की जा सकती हैं। स्वयं उन्हीं के शब्दों में कहें तो–"गोदान के नागरिक और ग्रामीण पत्र एक बड़े मकान के दो खण्डों में रहने वाले दो परिवारों के समान हैं, जिनका एक दूसरे के जीवन-क्रम से बहुत कम संपर्क है। वे कभी आते-आते मिल जाते हैं और कभी किसी बात पर झगड़ा भी कर लेते हैं। परंतु न तो उनके मिलने में और न उनके झगड़े में ही कोई ऐसा सम्बन्ध स्थापित होता है जिसे स्थायी

कहा जा सके।" गाँव की कहानी के शहर की कहानी से नहीं जुड़ने का आरोप लगाते हुए जैनेन्द्र कुमार भी अपनी पुस्तक 'प्रेमचंद एक कृति व्यक्तित्त्व' में लिखतें हैं–"गाँव की कथा पर उसमें शहर कुछ थोपा हुआ सा है। वह अनिवार्य नहीं है, पुस्तक की कथा के साथ एक नहीं है।" इसी प्रकार शिवनारायण श्रीवास्तव भी अपनी पुस्तक 'हिंदी उपन्यास' में गोदान की कथा-संरचना पर विशृंखलता का आरोप लगाते हुए लिखते हैं– "इन दो प्रकार के जीवनों को साथ-साथ रख देने से एक के सहारे दुसरे की शक्ति और दुर्बलता के बोध में सहायता तो मिलती है, परन्तु दोनों कहानियों के बीच अत्यंत क्षीण सम्बन्ध-सूत्र होने के कारण कथा में प्रभाव की अन्विति का अभाव खटकता है। आपस में कोई नि:सर्ग संबंध न होने के कारण दोनों कहानियाँ स्पष्टत: चिपकाकर रखी हुई सी जान पड़ती है।" ग्रामीण और शहरी जीवन के आपस में न जुड़ने को लेकर नन्ददुलारे वाजपेयी, जैनेन्द्र कुमार एवं शिवनारायण श्रीवास्तव के विचार उनके अपने तर्कों के आधार पर भले ही सत्य जान पड़े लेकिन 'गोदान' का तटस्थता से अवलोकन करने पर उस पर लगाए गए आरोपों में सच्चाई नहीं दिखाई पड़ती है। इसलिए कमल किशोर गोयनका के शब्दों में कहें तो "जो लोग गोदान की कथावस्तु को दो अलग-अलग समान्तर कथाएँ मानते हैं, वे वास्तव में प्रेमचंद को नहीं समझ पाए हैं।"

प्रेमचंद किसी भी कथा को प्रत्येक संभावित कोणों से प्रस्तुत करने वाले लेखक थे। यह भी कारण है कि 'गोदान' में समान्तर रूप से चलने वाली दोनों कथाएँ (शहरी एवं ग्रामीण) 'गोदान' की दुर्बलता नहीं वरन सशक्त विशेषता बनकर उभरती है। गोदान में वस्तुत: तीन प्रकार की कथाएँ हैं–

1. होरी की कथा–होरी की कथा गोदान की आधिकारिक कथा है। कृषि-संस्कृति तथा कृषक जीवन के ध्वंस को होरी की कहानी एक ऐसे परंपरागत कृषक की कहानी है जो विभिन्न शोषण-शक्तियों के बीच कृषक जीवन की मर्यादा बनायें रखने के प्रयत्न में मजदूर बनकर मरने को मजबूर है। होरी से सम्बंधित कथा को ही 'ग्राम्य-कथा' माना गया है।

2. गोबर की कथा–गोबर की कथा होरी की कथा का अगला चरण है जिसमें एक कृषक अपने पारंपरिक जीवन को छोड़कर शहरी-संपर्क में आता है और अंतत: मजदूर बन जाता है। इसलिए होरी और गोबर दोनों की कथाएँ एक दूसरे से गहरे रूप से जुड़ी हुई है। दोनों कथाएं उपन्यासकार के उद्देश्य प्रतिपादन में पूर्णतया सहायक हैं।

3. नागर पात्रों की कथाएँ–'गोदान' में नागर पात्रों की दो प्रकार की कथाएं संयोजित की गई हैं–(i) रायसाहब से संपर्क की कथा तथा (ii) नागर पात्रों के परस्पर संसर्ग की कथा। कुल मिलाकर देखें तो 'गोदान' की कथावस्तु में दो परस्पर विरोधी (गाँव और शहर) धरातल मौजूद हैं लेकिन दोनों कथावस्तु में बाधक नहीं अपितु 'विषमतापूर्ण और शोषणयुक्त' समाज को समझने में ही मददगार है। कमल किशोर गोयनका सही ही लिखते हैं–"प्रेमचंद के कथा-शिल्प की यह प्रवृत्ति है कि वह जिस विषय को उपन्यास के लिए चुनते हैं उसे प्रत्येक संदर्भ और परिस्थिति में डालकर प्रस्तुत करते हैं। गोदान की कथा-रचना भी इसका अपवाद नहीं है।... नागर पात्रों की कथा लेखक ने ग्रामीण जीवन की पवित्रता, निःस्वार्थता एवं मानवीयता के कंट्रास्ट में रखकर प्रस्तुत की है।"

कथावस्तु के इस विवेचन के अतिरिक्त 'गोदान' के कथा-शिल्प की कुछ और भी निम्नलिखित महत्वपूर्ण विशेषताएँ हैं–

'गोदान' की कथा की सबसे बड़ी विशेषता इसकी यथार्थता है। इसकी कथा गाय आगमन से प्रारंभ होकर गोदान से ही समाप्त होती है। अनेक आर्थिक तंत्रों द्वारा होरी तथा अन्य किसानों का शोषण, शहरी रसिकों द्वारा झुनिया से मसखरापन, रायसाहब, नोखेराम झिंगुरी सिंह इत्यादि का शोषण, होरी का अपनी बेटी की अधेर उम्र वाले व्यक्ति से शादी करना तथा होरी का मजदूर बनकर मरने के लिए विवश होना सामाजिक-यथार्थ है। इसके अतिरिक्त पुलिस, बिरादरी, पंच आदि के शोषण को भी यथार्थ रूप में प्रस्तुत किया गया है।

'गोदान' के कथातंत्र में घटना-बाहुल्य नहीं. जो घटनाएँ हैं भी वे अत्यंत स्वाभाविक तथा मनोवैज्ञानिक है। असंभव एवं अस्वाभाविक घटनाओं का अभाव है यहाँ। 'गोदान' की अधिकांश कथा दृश्यों द्वारा कही गई है जिसके कारण वह एक दृश्यात्मक उपन्यास बन गया है। शिकार पार्टी, मालती द्वारा ओंकारनाथ को शराब पिलाने का प्रसंग तथा धनुष-यज्ञ अभिनय में मेहता का बहुरुपियापन जैसे प्रसंग दृश्य-योजना का अन्यतम उदाहरण हैं। इसके अतिरिक्त उपन्यास के सभी परिच्छेद आपस में सुग्रंथित हैं जो दृश्य-योजना को और भी सुन्दर बना देती है।

कथातत्त्व में कथा-संकेतों, संयोगों तथा पात्रों के हृदय-परिवर्तन से कथा-विकास का भी उपयोग किया गया है। इसके कथा संकेत लेखक द्वारा आरोपित नहीं अपितु पात्रों के संवादों द्वारा स्वाभाविक रूप से अभिव्यक्त होतें हैं। हीरा का कथन 'भगवान् चाहेंगे तो बहुत दिन गाय घर में न रहेंगी' एक स्वाभाविक कथा संकेत का उदाहरण है।

गोदान के कथा-शिल्प में कतिपय दोष भी विद्यमान है इसके कथातंत्र के कुछ प्रमुख दोष निम्नलिखित हैं -

1. संयोग–गोदान में कुछ सांयोगिक घटनाओं का भी वर्णन है जिसमें लेखक स्वाभाविकता की पूर्णतः रक्षा नहीं कर पाया है। होरी द्वारा याद किये जाने पर मेहता का आना तथा मार्ग में पेट्रोल समाप्त हो जाने पर मेहता मालती को गोबर का मिलना उसी प्रकार की सांयोगिक घटनाएँ हैं।

2. हृदय-परिवर्तन–गोदान में पात्रों के हृदय-परिवर्तन की कतिपय घटनाएँ भी विद्यमान हैं। यथा–मालती, खन्ना, हीरा, मातादीन, गोबर आदि पात्रों का हृदय परिवर्तन होता है और उसमें अनेक उदात्त गुणों का उदय होता है।

3. अपूर्ण घटनाओं का उल्लेख–इस उपन्यास में अपूर्ण घटनाएँ भी उल्लिखित हैं। यथा–रूपा द्वारा होरी को भेजी गई गाय उपन्यास के अंत तक भी नहीं पहुँची पाती है।

4. नाम परिवर्तन–गोदान में पात्रों के नाम भी परिवर्तित कर दिए गए हैं, यथा-कामिनी देवी खन्ना को गोविंदी नाम दे देना लेखक की भारी भूल है।

5. आयु-उल्लेख में दोष–रूपा की आयु उपन्यास के पृष्ठ 9 पर आठ वर्ष तथा पृष्ठ 20 पर 5-6 साल बताई गई है।

6. स्थान प्रस्तुतीकरण में दोष–उपन्यास के पृष्ठ 219 पर बेलारी गाँव का वर्णन है, लेकिन उसे सेमरी नाम दे दिया गया है। यह लेखक की स्पष्ट भूल है।

7. भूमि उल्लेख में दोष–उपन्यास के पृष्ठ 11 पर होरी की जमीन पाँच बीघे तथा पृष्ठ 258 एवं 351 पर तीन बीघे बताई गई है।

8. समय उल्लेख में दोष–भोला माघ बीतने पर होरी के बैल खोलकर ले जाता है, लेकिन पृष्ठ 180 पर लेखक कार्तिक मास का उल्लेख करता है।

कुल मिलकर देखने तो 'गोदान' दोषों से पूर्णतः मुक्त नहीं है। उपन्यासकार ने इस उपन्यास में भी घटना, पात्र, काल, स्थान आदि तथ्यों के वर्णन एवं प्रस्तुतीकरण में कुछ भूलें कर दी हैं, लेकिन ये दोष इतने बड़े उपन्यास के लिए स्वाभाविक है तथा इससे उपन्यास की यथार्थपरक कथा-संरचना को कोई आघात नहीं पहुँचता है। इसमें प्रेमचंद ने होरी को किसी समझौते से बाँधकर मरने से नहीं रोका है। इसके साथ ही सुसंगठित कथानक, घटना-बाहुल्य कि कमीं, कथा का चक्रवत विकास एक घटना से अनेक घटनाओं का जन्म, यथार्थपरक एवं मनोवैज्ञानिक कथावस्तु इत्यादि विशेषताएँ

गोदान को अपने पूर्व के उपन्यासों से विशिष्ट बना देती है तथा हिंदी कथा-दिशा में क्रांतिकारी मोड़ उत्पन्न करती है। डॉ0 राजेश्वर गुरु की माने तो 'कथा का जैसा सुसंबद्ध रूप और विकास का जो स्वाभाविक क्रम गोदान में हैं वह प्रेमचंद की पिछली कृतियों में इतनी सफलता से व्यक्त नहीं हुआ है।

चरित्र-चित्रण

गोदान में चरित्रंकन की वर्णनात्मक और नाटकीय विधियों का सर्वाधिक प्रयोग किया गया है। गोदान के चरित्र-चित्रण संबंधी निम्नांकित विशेषताएँ हैं–

1. 'गोदान' में लगभग 55 पात्र हैं जिनमें 35 ग्रामीण और 20 शहरी पात्र हैं। स्पष्ट है उपन्यास में ग्रामीण पात्रों की प्रमुखता है। पात्रों के नामकरण शहरी तथा ग्रामीण जीवन के अनुरूप हैं तथा नामकरण में वंश, जाति, कर्म आदि का ध्यान रखा गया है। जैसे ग्रामीण पात्रों के नाम ग्रामीण जीवन के ही अनुरूप हैं उदाहरण–होरी, गोबर, मंगरु, साह आदि। शहरी पात्रों के नाम सुसंस्कृत हैं जैसे–मालती, ओंकारनाथ, प्रो. मेहता इत्यादि।
2. गोदान के चरित्रांकन में वर्णनात्मक विधि का सर्वाधिक प्रयोग किया गया है, यहाँ पात्रों के तीन प्रकार के वर्णन मिलते हैं–

(क) शारीरिक वर्णन–ग्रामीण पात्रों का अधिकतर शारीरिक वर्णन किया गया है।

(ख) चारित्रिक वर्णन–नागर पात्रों का चारित्रिक वर्णन अधिक किया गया है।

(ग) मिश्रित वर्णन–उपन्यास के कतिपय पात्रों का चारित्रिक एवं शारीरिक दोनों वर्णन किया गया है। जैसे धनिया का यह वर्णन मिश्रित वर्णन का ही उदाहरण है–"छत्तीसवाँ साल ही तो था, पर सारे बाल पक गए थे, चहरे पर झुर्रियां पड़ी थी. सारी देह ढल गई थी। वह सुन्दर गेहुआ रंग साँवला गया था और आँखों से भी कम सूझने लगा था। पेट ही के चिंता के कारण तो"

3. उपन्यास में प्रेमचंद ने लेखकीय वर्णन द्वारा भी पात्रों का चरित्रांकन करने का सफल प्रयास किया है। यथा होरी का यह कथन कि 'खेती में जो मरजाद है वह नौकरी में नहीं' लेखक के ही विचार हैं, जो होरी के चरित्र को उद्घाटित करने में पूर्णतया सक्षम हैं।

4. गोदान में पात्रों के चरित्रांकन के लिए मानसिक कार्य पद्धतियों का भी प्रयोग किया गया है। हीरा, मालती, मातादीन में उदात्तीकरण की प्रवृत्ति विद्यमान है। हीरा द्वारा होरी पर पुरानी कमाई से गाय खरीदने का आरोप 'आरोपण मानसिक कार्य-व्यापार पद्धति' का उदाहरण है। शिकार यात्रा के समय तेंदुआ देखकर भयभीत हो जाना तथा रायसाहब द्वारा अपना मजाक उड़ायें जाने पर खन्ना अहिंसावाद का सहारा लेता हुआ कहता है "मैं शिकार खेलना उस जमाने का संस्कार मानता हूँ जब आदमी पशु था", यह तर्काभास का उदहारण है। होरी के भी अनेक कार्य 'निर्देशन मानसिक कार्य-व्यापर' पद्धति से संचालित होते हैं।
5. पात्र-योजना के मनोविश्लेषणात्मक पद्धति में से केवल निराधार प्रत्यक्षीकरण का प्रयोग किया गया है। होरी मृत्यु से पूर्व कहता है "तुम आ गए गोबर? मैंने मंगल के लिए गाय ले ली है। वह खड़ी है देखो." इस कथन के समय उसके सम्मुख न तो गोबर होता है न ही गाय, लेकिन पुत्र और गाय की प्रबल लालसा इन दोनों को होरी के सम्मुख खड़ा कर देता है।
6. गोदान के पात्रों के अनेक ऐसे कार्य हैं जिन्हें उनकी अन्तः प्रेरणाओं को जानकर ही समझा जा सकता है। होरी गाय आने से पहले उसे अन्दर बांधने का निर्णय करता है, लेकिन गाय आने पर उसे बाहर बाँधता है। उसके इस कार्य के पीछे उसको आत्म-प्रदर्शन की अन्तः प्रेरणा काम करती है। "वह गाँव वालों को गाय दिखाना चाहता था, जिससे लोगों को मालूम हो कि यह होरी महतो का घर है।"
7. गोदान में पात्रों के संवाद भी चरित्रांकन में सहायक हुए हैं। इसमें पात्र अपने संवादों से स्वयं अपना, दूसरे उपस्थित पात्र और तीसरे अनुपस्थित पात्र का चरित्रांकन करते हैं। आत्म चरित्रांकन की प्रवृत्ति होरी और मेहता में अधिक है। धनिया के संबंध में अलग-अलग पात्रों की अलग-अलग राय है। परमेश्वरी धनिया को कर्कशा, दारोगा दिलेर औरत, झुनिया गुस्सैल तथा होरी उसे त्याग और ममता की मूर्ति मानता है।

   उपन्यास में घटनाओं द्वारा भी पात्रों का का चरित्र-चित्रण हुआ है। यथा–हीरा द्वारा गाय को जहर देकर मारना उसकी ईर्ष्या वृत्ति का ही प्रकाशन करता है। स्वयं होरी द्वारा दमड़ी बंसार को बाँस बेचने के प्रसंग में अपने भाइयों के रुपये मारने की चेष्टा उसके स्वार्थी प्रवृत्ति का उद्घाटन करती है।

8. गोदान में पात्रों के आवेगज आचरणों का पूर्ण प्रयोग हुआ है। धनिया के व्यक्तित्त्व में तो आवेगज आचरणों का भण्डार है। होरी शांतिप्रिय होने पर भी आवेगज आचरण करने लगता है। पुनिया के चिल्लाने पर वह समझता है कि दमड़ी बंसार ने उसे मारा है। वह तुरंत दमड़ी को लात मारता है और कहता है "कोई तिरछी आँख से देखें तो आँख निकल ले।" पात्रों के आवेगज आचरण, कथा-विकास, पात्रों के अव्यक्त गुणों के प्रकाशन, अन्य पात्रों के दंभ स्फोट आदि कार्यों में सहायक हुए हैं।

इस प्रकार हम पाते हैं कि 'गोदान' में पूर्व उपन्यासों के चरित्रोद्घाटन की विधियाँ वर्णनात्मक और नाटकीय का ही सर्वाधिक प्रयोग किया गया है। पात्रों को मनोवैज्ञानिक आधार प्रदान करना तथा उनके अचेतन मन के विश्लेषण की ओर लेखक की विशेष रुचि नहीं है। इसमें चरित्र-चित्रण की जितनी भी विधियों को अपनाया गया है वे सफल एवं प्रभावशाली हैं।

भाषा -शैली

1. भाषा पर 'जीवन की सच्चाई' के निशान ढूंढने वाले लेखक प्रेमचंद जनसाधारण की भाषा के पक्षधर रचनाकार थे। उनके अनुसार– "जो साहित्यकार अमीरों का मुँह जोहने वाला है, वह ऐसी रचना शैली स्वीकार करता है जो जनसाधारण का है वह जनसाधारण की भाषा में लिखता है। यही कारण है कि प्रेमचंद आम जन की बात को साधारण एवं बोलचाल की भाषा में लिखते थे। उनके लिए काव्यात्मकता, रसात्मकता का पर्याय न होकर जीवन-संघर्ष से प्राप्त मूल्यों का निचोड़ है। बाख्तिन उपन्यास को इसी अर्थ में खेल का मैदान कहते हैं, जहाँ कई विरोधी वर्ग, वर्ण, लिंग, संकाय, नस्ल अपनी जोर आजमाईश कर सकते हैं। प्रेमचंद भी अपनी भाषा की समग्रता में ही मनुष्य जीवन के सारे खेल उकेरते हैं। उनकी भाषा ठेठ आनंद के निमित्त लिखी गई या कुलाँचे मारती भाषा नहीं हैं। वह जीवन-संघर्ष से प्राप्त अनुभवों की भाषा है। इसलिए प्रेमचंद की भाषा न केवल उपन्यास का अपितु वह सम्पूर्ण हिंदी गद्य की भाषा का प्रतिनिधित्व करती है। 'गोदान' के संबंध में भी यह बात अक्षरशः उपयुक्त है। इसके अतिरिक्त गोदान में भाषा संबंधी और भी विशेषताएँ हैं–
2. 'गोदान' की भाषा का शब्द-भंडार संस्कृत, अंग्रेजी भाषा के तत्सम और तद्भव, देशज, विदेशज, आवृत्तिमूलक तथा ध्वन्यात्मक शब्दों के संयोग

से निर्मित हैं। नागर पात्रों के कथा-वर्णन, पात्रों के चरित्रांकन, विभिन्न स्थितियों के वर्णन तथा लेखकीय विचारों की वर्णन में जहाँ तत्सम शब्दों का प्रचुरता से प्रयोग किया गया है, वहीं लेखक ने घरेलू एवं ग्रामीण प्रसंगों में तद्भव शब्दावली का प्रयोग किया है। यह भी ध्यान रखने की बात है कि प्रेमचंद हिंदी से ज्यादा उर्दू में सहज थे। यहाँ तक कि उन्होंने अपनी लेखनी का आरम्भ उर्दू से ही किया था। गोदान में संस्कृत के अलावा उर्दू शब्दों का भी भरपूर प्रयोग किया गया है। तद्भव शब्दों के प्रयोग द्वारा लेखक ने ग्रामीण वातावरण की सृष्टि की है तथा हिंदी के परंपरा की रक्षा भी की है। उपन्यास में दो भाषाओं के संयोग से बने संकर शब्दों का भी प्रयोग किया गया है। कुछ उदाहरण देखें–

1. देशज शब्द–डांडी, खलेटी, छाछ, भिनसार, माहुर, बौड़म, दुमक, पोंगा इत्यादि।

2. आवृत्तिमूलक शब्द–दवा-दारु, डील-डौल, आलसी-वालसी, ताक-झाक, भाव-ताव, सेंत-मेंत, रस-वस, पानी-वाणी।

3. विदेशज शब्द–

4. लेखक द्वारा प्रयुक्त अरबी फारसी के शब्द–हुक्काम, इजलास, याराना, लाजिम, जर्द, काफूर

5. नागर पात्रों द्वारा प्रयुक्त अरबी-फारसी के शब्द–कायल, मयास्सर, फरियाद, असबाब, हकीकत, वफादारी, दखल मातबर इत्यादि.

6. ग्रामीण पात्रों द्वारा प्रयुक्त शब्द–बकाया, हवालात, ऐयाशी, गनीमत, मुफ्तखोरी, गुलाम.

7. अंग्रेजी शब्द

(क) लेखक द्वारा प्रयुक्त–कौंसिल, ड्रामा, यूनिवर्सिटी, मिनिस्टर, थर्मामीटर, चेक-बुक, स्टेज, पेक्तिस, केबिनेट

(ख) पात्रों द्वारा प्रयुक्त–नेशनलिस्ट, डिग्री, परसेंट, टैक्स, बैंकर, ट्रेडजी, डेमोक्रेसी

(ग) अंग्रेजी के तद्भव शब्द–कमिशनर, पिंसिन (पेंशन), इंसपिटटर (इन्स्पेक्टर)

(घ) अंग्रेजी के वहुवचनीय शब्द–बैंकों, फिलासफारों, सिनेमा-स्टारों, नर्सों

संकर शब्द

फारसी + **हिंदी**–बेपर, बेकाम, बेजोड़, बेघरम, बेपूँजी
हिंदी + **फारसी**–चूड़ीदार, लच्छेदार, टुकड़ेखोर
फारसी+अंग्रेजी–शिकार-पार्टी, बीमा-कंपनी, जिला बोर्ड
उर्दू+हिंदी–जहरवाद, मालिकपन, हरजाईपन, हवागाड़ी
उर्दू-अंग्रेजी–मर्द-डॉक्टर, जनाना-क्लब
अंग्रेजी+हिंदी–रेलगाड़ी, मोटरगाड़ी, मिलवाले, होटलवाले
हिंदी+अंग्रेजी–छोटे-सर्जन, बड़े सर्जन, शक्कर-मिल

मुहावरे तथा लोकोक्तियाँ–गोदान में मुहावरों तथा लोकोक्तियों का सुन्दर प्रयोग मिलता है। लेखक, ग्रामीण एवं नागर-पात्र सभी मुहावरों का प्रयोग दृष्टव्य हैं–"वह झुग्गा, वह बहत्तर घाट का पानी पिये हुए, इसे उंगुलियों पर नचा रही है और यह समझता है वह इस पर जान देती है। तुम उसे समझा दो, नहीं कोई ऐसी-वैसी बात हो गयी तो कहीं के न रहेंगे". इसी तरह बिन धरती भूत का डेरा, नातिन खेती बहुरियाँ घर, जुलाहे का गुस्सा दाढ़ी पर न उतारो आदि अर्थवान लोकोक्तियों का भी प्रयोग हुआ है।

सूक्तियाँ–गोदान में कतिपय मर्मस्पर्शिनी सूक्तियों का भी प्रयोग मिलता है। यथा ज्यादा सीधा होना भी अच्छा नहीं।

सटीक विशेषण–सूक्ष्म भावनाओं को प्रकट करने के लिए आतंकमय कम्पन, गुलाबी मादकता, प्रखर ताप, दुर्बल मुस्कान वेदनामय आनंद जैसे सटीक विशेषणों का भी प्रयोग किया गया है।

अलंकार–गोदान में अलंकारों का अत्यंत आकर्षक प्रयोग मिलता है। उपमा तथा उत्प्रेक्षा अलंकारों का बहुलता से प्रयोग किया गया है। अंग्रेजी के कुछ सुन्दर उपमानों का भी प्रयोग हुआ है। यथा–सेवा ही वह सीमेंट है, जो दंपत्ति को जीवन पर्यंत स्नेह और साहचर्य में जोड़े रख सकता है। उपमा अलंकारों का भी बहुत सुन्दर प्रयोग उपलब्ध होता है। गाय मनमारे उदास बैठी थी, जैसे कोई वधू ससुराल में आई हो।

पात्रानुकूल भाषा–पात्रानुकूल भाषा गोदान की अन्यतम विशेषता है। इसमें ग्रामीण नागर, शिक्षित, अशिक्षित, हिन्दू, मुसलमान, शराबी, पठान, बाल-पात्र इत्यादि कई वर्गों के पात्र हैं। इन सभी प्रकार के पात्रों की भाषा की उनके वर्ग, धर्म, स्वाभाव, चरित्र, वय आदि के अनुरूप निर्मित की गई है। ग्रामीण पात्रों

होरी-धनिया, गोबर, झुनियाँ, दातादीन आदि अधिकतर अपभ्रंश शब्दों का प्रयोग करते हैं। कुछ ग्रामीण पात्र भी तत्सम शब्दों का प्रयोग करते हैं। डॉ0 कमलकिशोर गोयनका का आरोप है कि ग्रामीण पात्रों द्वारा तत्सम शब्दों का प्रयोग अनुचित है।

भावानुकूल भाषा–गोदान में विभिन्न भावों तथा प्रसंगों के अनुसार भाषा भी रूपांतरित हो जाती है। प्रेम प्रसंग प्रकृति वर्णन, ग्रामीण प्रसंग हो या नगर प्रसंग, आदि विभिन्न प्रसंगों की भाषा सर्वथा उनके अनुरूप ही हैं।

व्यंग्यात्मकता–झिंगुरी सिंह, कारिंदा साहब, सहुआइन आदि सभी शोषक वर्गों के खिलाफ व्यंग्यात्मक भाषा का प्रयोग किया गया है। धार्मिक शक्तियों के खिलाफ भी व्यंग्य किया गया है। यथा–"दातादीन अपनी जवानी में स्वयं बड़े रसिया रह चुके थे, लेकिन अपने नेम-धर्म से कभी नहीं चूँके" मातादीन भी सुयोग्य पुत्र की भांति उन्हीं के पद-चिह्नों पर चल रहा था। धर्म का मूल तत्त्व है पूजा-पाठ, कथाव्रत और चौका-चूल्हा, जब पिता-पुत्र दोनों ही मूल तत्त्व को पकड़े हुए हैं तो किसी की मजाल है कि उन्हें पथभ्रष्ट कहे। कहीं-कहीं कथन का, कहीं स्थिति का कहीं टीका का है तो कहीं संबोधन का। इस प्रकार सर्वत्र व्यंग्य का सुन्दर प्रयोग मिलता है।

अमानक प्रयोग–गोदान में शब्द, अर्थ एवं वाक्य-रचना के कुछ अमानक प्रयोग भी विद्यमान हैं यथा-

(क) कारक-दोष–तो उनके सारे यश में कालिमा पूत जाएगी।

(ख) लिंग-दोष–जाड़े के दिन न जाने कब दोपहर हो गया।

(ग) बोलचाल की भाषा का प्रभाव–झिंगुरी सिंह के सभी रिनियाँ थे

(घ) न्युनपद दोष

कर्ता लोप)–× बंटवारे के समय उससे चालीस रुपये लेकर भाइयों को देना पड़ा था।

(क्रिया लोप)–साधारण जनता के लिए सुधरी जमीन।

(ङ) अनुप्रयुक्त विश्लेषण–रायसाहब का परिवार बहुत विशाल था।

(च) असंगतक्रिया प्रयोग–रायसाहब अपने कारखाने में बिजली बनवा लेते थे।

भाषा शैली के उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि 'गोदान' की भाषा शैली भी अपने पूर्व उपन्यासों से विशिष्ट एवं प्रभावशाली है। भाषा-रचना में कुछ त्रुटियाँ जरुर रह गई है, लेकिन उससे प्रेमचंद के भाषा-अधिकार और अभिव्यक्ति-कौशल की गुणवत्ता कम नहीं होती। खासकर 'गोदान' में प्रेमचंद

एक सशक्त भाषाकार के रूप में सामने आते हैं। जैनेन्द्र कुमार ने प्रेमचंद की भाषा-शैली की प्रशंसा करते लिखा है-"प्रेमचंद भाषा के जादूगर थे, बात को ऐसा सुलझाकर कहने की आदत मैं नहीं जानता, मैंने कहीं और देखी है।

वातावरण एवं देशकाल चित्रण

गोदान का देशकाल अपने युग का ही प्रतिबिम्ब है। इसका देशकाल राजनीतिक जीवन नहीं अपितु कृषक और उसके ग्रामीण जीवन से संबंधित है। कृषक और उसके ग्रामीण जीवन की सभी संभाव्य परिस्थितियों और दशाओं तथा उनके साथ नगर-जीवन की सभी परिस्थितियों का भी यथार्थ एवं स्पष्ट चित्रण उपन्यास में मिलता है। गोदान में जिस देशकाल का चित्रण हुआ है, वह रचना से पूर्व भी सत्य था। रचना-काल में भी सत्य था और रचना-काल के पश्चात् अनेक वर्षों तक सत्य बना रहा। पहले हरित-क्रांति फिर बाद में वैज्ञानिक विकास के कारण कृषि-विज्ञान के क्षेत्र में भी निरंतर नए-नए आविष्कार हो रहे हैं तथा हमारा समाज भी अपनी जड़ता से धीरे-धीरे मुक्त हो रहा है। फिर क्यों आज भी किसान खासकर समृद्ध राज्यों के किसान आत्महत्या करने को मजबूर हैं। इस प्रकार गोदान का देशकाल त्रिकालस्पर्शी है जो इसकी बहुत बड़ी विशेषता है। वास्तव में 'गोदान' का देशकाल भारतीय गाँवों का देशकाल है तथा बेलारी गाँव का चित्र सभी गाँवों का चित्र है। उपन्यास में ग्राम-जीवन का सम्पूर्ण एवं यथार्थ चित्र प्रस्तुत किया गया है। अतः इसका देशकाल सीमित नहीं, अपितु व्यापक है।

सारांश

गोदान प्रेमचंद का हिंदी उपन्यास है, जिसमें उनकी कला अपने चरम उत्कर्ष पर पहुँची है। गोदान में भारतीय किसान का संपूर्ण जीवन –उसकी आकांक्षा और निराशा, उसकी धर्मभीरुता और भारतपरायणता के साथ स्वार्थपरता और बैठकबाजी, उसकी बेबसी और निरीहता–का जीता-जागता चित्र उपस्थित किया गया है। उसकी गर्दन जिस पैर के नीचे दबी है उसे सहलाता, क्लेश और वेदना को झुठलाता, 'मरजाद' की झूठी भावना पर गर्व करता, ऋणग्रस्तता के अभिशाप में पिसता, तिल-तिल शूलों भरे पथ पर आगे बढ़ता, भारतीय समाज का मेरुदंड यह किसान कितना शिथिल और जर्जर हो चुका है, यह गोदान में प्रत्यक्ष देखने को मिलता है। नगरों के कोलाहलमय चकाचौंध ने गाँवों की विभूति

को कैसे ढँक लिया है, जमींदार, मिल मालिक, पत्रसंपादक, अध्यापक, पेशेवर वकील और डाक्टर, राजनीतिक नेता और राजकर्मचारी जोंक बने कैसे गाँव के इस निरीह किसान का शोषण कर रहे हैं और कैसे गाँव के ही महाजन और पुरोहित उनकी सहायता कर रहे हैं, गोदान में ये सभी तत्त्व नखदर्पण के समान प्रत्यक्ष हो गए हैं। गोदान, वास्तव में, 20वीं शताब्दी की तीसरी और चौथी दशाब्दियों के भारत का ऐसा सजीव चित्र है, जैसा हमें अन्यत्र मिलना दुर्लभ है।

गोदान में बहुत सी बातें कही गई हैं। जान पड़ता है प्रेमचंद ने अपने संपूर्ण जीवन के व्यंग और विनोद, कसक और वेदना, विद्रोह और वैराग्य, अनुभव और आदर्श सभी को इसी एक उपन्यास में भर देना चाहा है। कुछ आलाचकों को इसी कारण उसमें अस्त-व्यस्तता मिलती है। उसका कथानक शिथिल, अनियंत्रित और स्थान-स्थान पर अति नाटकीय जान पड़ता है। ऊपर से देखने पर है भी ऐसा ही, परंतु सूक्ष्म रूप से देखने पर गोदान में लेखक का अद्‌भुत उपन्यास-कौशल दिखाई पड़ेगा क्योंकि उन्होंने जितनी बातें कहीं हैं वे सभी समुचित उठान में कहीं गई हैं। प्रेमचंद ने एक स्थान पर लिखा है –'उपन्यास में आपकी कलम में जितनी शक्ति हो अपना जोर दिखाइए, राजनीति पर तर्क कीजिए, किसी महफिल के वर्णन में 10-20 पृष्ठ लिख डालिए (भाषा सरस होनी चाहिए), कोई दूषण नहीं।' प्रेमचंद ने गोदान में अपनी कलम का पूरा जोर दिखाया है। सभी बातें कहने के लिये उपयुक्त प्रसंगकल्पना, समुचित तर्कजाल और सही मनोवैज्ञानिक विश्लेषण प्रवाहशील, चुस्त और दुरुस्त भाषा और वर्णनशैली में उपस्थित कर देना प्रेमचंद का अपना विशेष कौशल है और इस दृष्टि से उनकी तुलना में शायद ही किसी उपन्यास लेखक को रखा जा सकता है।

गबन

गबन प्रेमचंद द्वारा रचित उपन्यास है। 'निर्मला' के बाद 'गबन' प्रेमचंद का दूसरा यथार्थवादी उपन्यास है। कहना चाहिए कि यह उसके विकास की अगली कड़ी है। गबन का मूल विषय है –'महिलाओं का पति के जीवन पर प्रभाव'।

गबन प्रेमचन्द के एक विशेष चिन्ताकुल विषय से सम्बन्धित उपन्यास है। यह विषय है, गहनों के प्रति पत्नी के लगाँव का पति के जीवन पर प्रभाव। गबन में टूटते मूल्यों के अंधेरे में भटकते मध्यवर्ग का वास्तविक चित्रण किया गया। इन्होंने समझौतापरस्त और महत्वाकांक्षा से पूर्ण मनोवृत्ति तथा पुलिस के चरित्र को बेबाकी से प्रस्तुत करते हुए कहानी को जीवंत बना दिया गया है।

इस उपन्यास में प्रेमचंद ने पहली नारी समस्या को व्यापक भारतीय परिप्रेक्ष्य में रखकर देखा है और उसे तत्कालीन भारतीय स्वाधीनता आंदोलन से जोड़कर देखा है। सामाजिक जीवन और कथा-साहित्य के लिए यह एक नई दिशा की ओर संकेत करता है। यह उपन्यास जीवन की असलियत की छानबीन अधिक गहराई से करता है, भ्रम को तोड़ता है। नए रास्ते तलाशने के लिए पाठक को नई प्रेरणा देता है।

कथानक

प्रेमचंद ने अपने उपन्यासों के लिए जो कथानक चुने हैं, उनका आधार भारतीय नागरिक और ग्रामीण समाज के विविध् वर्ग हैं। 'गबन में उन्होंने नगरीय मध्यवर्ग के जीवन की समस्याओं को आधार बनाया है। इस उपन्यास के प्रारंभ में प्रमुख नारी पात्र जालपा के बचपन की एक घटना का रोचक वर्णन है, जिसमें वह, उसकी सखियाँ तथा उनकी माताएँ एक बंजारे फेरी वाले से अपनी-अपनी पसन्द की वस्तुएँ खरीदती हैं। जालपा को एक चंद्रहार पसन्द आता है पर उसकी माँ मानकी बिसाती से चंद्रहार की चमक ज्यादा दिन न रहने की शंका प्रकट करती है तो फेरी वाला-"चार दिन में तो बिटिया को असली चंद्रहार मिल जाएगा"-कह कर उसके मन में चंद्रहार के प्रति तीव्र लालसा को और तीव्र करता है।

शीघ्र ही वह दिन आता है जिसकी जालपा को बहुत प्रतीक्षा थी। उसके पिता दीनानाथ प्रयाग के एक प्रतिष्ठित सज्जन दयानाथ के पुत्र रमानाथ से उसका विवाह तय करते हैं। बारात आती है पर चढ़ावे के आभूषणों में चंद्रहार नहीं होता। इससे जालपा बहुत निराश होती है, पर सखियों के समझाने पर निश्चय करती है कि वह पति और ससुर से आग्रहपूर्वक यह हार लेकर रहेगी। ससुराल में जाते ही वह घोषणा करती है कि जब तक हार नहीं मिलता, तब तक वह किसी भी आभूषण को नहीं पहनेगी।

दयानाथ कचहरी में पचास रुपये मासिक पर काम करता है। वह रिश्वतखोरी को समाज के लिए अभिशाप समझता है इसलिए उसे ईमानदारी का संतोष तो है पर आर्थिक दृष्टि से वह बहुत खोखला जीवन व्यतीत कर रहा है। अपने पुत्र रमानाथ के विवाह में उसने न चाहते हुए भी, सीमा से अधिक व्यय कर दिया था। इतना ही नहीं, आभूषण भी उधार लेकर बनवाए गए थे और जालपा के मायके से मिला नकद रुपया भी रमानाथ की इच्छानुसार

व्यर्थ की धूमधम में खर्च हो गया था। इधर महाजन पैसों के लिए बार-बार तंग कर रहा था, उधर रमानाथ के लिए यह भी संकट था कि वह जालपा से अपने घर की झूठी अमीरी की चर्चा कर चुका था। ऐसे में जालपा से गहने लौटाने की बात कहना तो बहुत कठिन था। अंततः उसने एक उपाय सोचा। रात को चुपके से जालपा की अलमारी से गहनों की संदूकची निकालकर पिता को दे दी। यहीं से उस पर संकट की घड़ी शुरू हो गई। जालपा इस चोरी से बहुत दुखी हुई। रमानाथ भी यह कहकर कि उसके पिता पैसा निकालना ही नहीं चाहते, अपने को बचाने के प्रयास में लगा रहा। एक दिन जब जालपा ने अपने घर जाने की जिद पकड़ ली तो रमानाथ ने उसे यह कहकर रोका कि वह जल्दी ही कोई नौकरी करेगा। अंततः उसे अपने एक मित्र रमेश की सहायता से म्यूनिसिपैलिटी में चुंगी क्लर्क की नौकरी मिल गई जहाँ ऊपरी आमदनी की भी अधिक सुविधा थी। अब रमानाथ को विश्वास हो गया कि वह जल्दी ही जालपा के लिए गहने जुटा सकेगा। इस बीच उसने जालपा के एक पत्र के द्वारा, जो उसे डाक में डालने के लिए दिया गया था, उसे खोलकर पढ़ने से उसे पता चला कि जालपा कितनी वेदना सह रही है। तब उसने निश्चय किया कि वह जल्दी ही जालपा को गहनों से लाद देगा। गंगू नामक एक सर्राफ ने उसे एक जड़ाऊ चन्द्रहार और शीशफूल उधार दे दिया। एक बार उधर की चीज लाकर रमानाथ की तो आदत ही बदल गई। गहने, साड़ी, घड़ी-जो उसे ठीक लगता, उधर खाते से ले लेना उसे बुरा नहीं लगता था।

धीरे-धीरे इन दोनों के संपर्क क्षेत्र में भी वृद्धि होती गई। एक पार्टी में मिले इन्द्रभूषण नामक अधेड़ वकील और उनकी युवा पत्नी रतन से उनकी मित्राता क्रमशः गहरी होती गई। एक दिन रतन ने जालपा के जड़ाऊ कंगन पर रीझकर वैसे ही कंगन बनवाने का निश्चय किया। उसके लिए दिए गए छः सौ रुपये लेकर रमानाथ जब गंगू सर्राफ के पास पहुँचा तो उसने रुपये रमानाथ के पिछले हिसाब में जमा कर दिए और कंगन के झूठे वायदे करके उसे बार-बार टालने लगा। रमानाथ अब विकट समस्या में फँस गया था। एक दिन रतन ने आग्रहपूर्वक रमानाथ से पैसे वापिस लौटा देने की बात की। या फिर वह स्वयं उस सर्राफ के पास जाना चाहती थी। ऐसे में रमानाथ ने उस दिन की चुंगी की आमदनी आठ सौ रुपये खजाने में जमा न करके, रतन को दिखा कर विश्वास दिलाना चाहा कि उसके पैसे सुरक्षित हैं। पर रतन ने अपने पैसे वापिस ले लिये। जैसे-तैसे करके उसने पाँच सौ रुपये तो जमा कर लिए। तीन सौ के लिए वह अपने मित्रों

के पास इधर-उधर भटकता फिरा, लेकिन सभी प्रयत्न व्यर्थ हो गए। जालपा को पत्र लिखकर सारी परिस्थिति समझानी चाही पर उसे पत्र मिलता, इससे पहले ही शर्मिन्दगी को न छुपा पाने के कारण, उसने घर से भागना ही उचित समझा। बिना सोचे समझे रेल में बैठ गया। वहीं देवीदीन खटीक नामक एक विनोदी और समझदार वयोवृद्ध से उसकी मुलाकात हुई जो रमानाथ को अपने साथ कलकत्ते ले गया। देवीदीन और उसकी पत्नी जग्गो ने उसे वापिस लौटने के लिए बहुत समझाया, पर पुलिस के डर से उसने न जाने का ही निश्चय किया क्योंकि वह अपने को गबन का अपराधी समझता था।

इस बीच एक समाचार पत्र में छपे शतरंज-पहेली को हल करने से उसे पचास रुपये की प्राप्ति भी हुई। उन रुपयों से उसने जग्गो के साथ ही चाय की दुकान खोल ली, पर एक दिन अपनी ही नासमझी से वह पुलिस के हाथ पड़ गया। रमानाथ की मजबूरी से लाभ उठाकर उसे सरकारी गवाह बनने के लिए भी विवश किया गया। वह नहीं जानता था कि इस बीच उसकी पत्नी ने अपने गहने बेचकर उसके द्वारा गबन की गई समूची रकम चुका दी है। स्वयं पुलिस ने इलाहाबाद में हुई इस घटना की जाँच करवायी तो उसे भी इस बात का पता चल गया, पर उन्होंने रमानाथ को अंधेरे में ही रखा।

रमेश बाबू को जब रमानाथ के कलकत्ते में होने का समाचार मिला तो उसने रमानाथ के घर यह सूचना भिजवा दी और उसे यह जानकर आश्चर्य हुआ कि जालपा यह सब कुछ जानती है, क्योंकि जिस पहेली को रमानाथ ने हल किया था, वह जालपा के द्वारा ही भेजी गई थी। बाद में जालपा रतन और देवर गोपी के साथ कलकत्ता पहुँची। रात्रि के समय देवीदीन के साथ उस बंगले में गई जहाँ रमानाथ को पुलिस ने ठहराया हुआ था। सख्त पहरे के होते हुए भी उसने पत्थर में पत्र लपेटकर रमानाथ को वास्तविक स्थिति से अवगत कराया। निश्चिंत होकर रमानाथ ने इंस्पेक्टर से कह दिया कि वह झूठी गवाही नहीं देगा। पर एक बार छोटी अदालत में निर्दोष व्यक्तियों के विरुद्ध वह गवाही दे चुका था, अतः उन्होंने जालपा को भी तंग करने की धमकी दी तो उसे झुकना पड़ा उसकी गवाही से निर्दोष लोगों को कठिन करावास तो मिला ही, दिनेश नामक युवक को फाँसी की सजा हो गई। प्रायश्चित करने के उद्देश्य से जालपा उस युवक के घर रहकर उसका सारा काम करने लगी। जोहरा से सभी कुछ जानकर रमानाथ ने जज के घर जाकर सारी असलियत स्पष्ट कर दी। फिर से मुकदमा चलने पर सभी निर्दोष लोगों के साथ-साथ रमानाथ भी छूट गया।

अब रमानाथ पूरी तरह से बदल चुका था। उसने खेती करना ही जीवन का ध्येय बना लिया। जालपा के साथ ही जोहरा, दयानाथ, गोपी और रतन भी उसके पास आकर रहने लगे। दयानाथ, जोहरा और रतन, जो अलग-अलग कष्टमय जीवन जी रहे थे, अब साथ रहकर जीवन के सुखद अनुभवों से गुजरने लगे पर एक दिन बाढ़ की स्थिति में जोहरा एक बच्चे को बचाने के लिए नदी में कूद पड़ी और गहरी लहरों में सदा के लिए समा गई।

समीक्षा

गबन उपन्यास की मूल कथा रमानाथ और जालपा, या यूँ कहें रमानाथ से संबंधित है, जो प्रयाग में जालपा और दयानाथ आदि तथा कलकत्ते में देवीदीन, जग्गो, जोहरा आदि के संसर्ग से विकसित होती है। कुछ समीक्षकों ने प्रयाग और कलकत्ते की कथाओं को दो स्वतंत्र कहानी माना है और कहा है कि इन दो स्थानों की घटनाओं पर दो स्वतंत्र उपन्यासों का निर्माण हो सकता था। (नंददुलारे वाजपेयी, 'प्रेमचंद-साहित्यक विवेचन) पर वास्तव में ऐसा नहीं है। जीवनक्रम के अनुसार पात्र अनेक परिस्थितियों और संदर्भों से गुजरता है, इसी प्रकार रमानाथ भी ऐसी ही भिन्न घटनाओं और स्थितियों से गुजरता है। ये परिवर्तन आरोपित न होकर, पूर्वापर-क्रम से जुड़े हुए हैं। विस्तार और प्रतिपाध से प्रमुख रूप से जुड़े हुए होने के कारण रमानाथ की कथा 'आधिकारिक कथा है। वह ऐसा नवयुवक है जो पिता के खर्च न देने पर कॉलेज छोड़ देता है और कॉलेज के अन्य युवकों की भाँति फैशनपरस्त, फिजूलखर्च, प्रदर्शनप्रिय और मूलतः दुर्बल प्रकृति का है। अपने फैशन के शौक को वह दोस्तों की सहायता से ही पूरा करता है। उसके अपने ही शब्दों में-मैं जरा साफ सुथरे कपड़े पहनता हूँ, जरा नई प्रथा के अनुसार चलता हूँ, इसके सिवा आपने मुझमें कौन सी बुराई देखी है? लेकिन दयानाथ उसकी अंग्रेजियत से परेशान है। वह उस वर्ग का प्रतिनिधि है, जिसे देवीदीन 'भद्र समाज समझते हैं। सफाई वकील के शब्दों में 'गबन उपन्यास की कथा 'विलासप्रिय पदलोलुप युवक के 'धर्मनिष्ठ और कर्त्तव्यशील युवक बनने की कथा है। प्रयाग में उसकी चारित्रिक दुर्बलता उसे 'गबन की सीढ़ी तक पहुँचाती है, उसी प्रकार परिस्थिति के दबाव में आकर वह कलकत्ते में सरकारी गवाह बनने के लिए विवश है। इस प्रकार परवर्ती घटनाएँ रमानाथ के पूर्ववर्ती इतिहास से ही जुड़ी हुई है।

रमानाथ के साथ-साथ जालपा की कथा भी महत्त्वपूर्ण है। यह कथा रमानाथ की कथा के विस्तार तथा प्रतिपाध से प्रमुख रूप से जुड़ी हुई है। जालपा

मूलत: एक आभूषण-प्रेमी, प्रदर्शनप्रिय तथा (प्रारम्भ में) आत्मकेंद्रित स्त्री की कहानी है जो बाद में कर्तव्यपरायण तथा सेवानिष्ठ नारी बनती है। रमानाथ के घर से भागने से पूर्व की जालपा एक अत्यन्त साधरण और सामान्य गुणावगुणों से युक्त नारी है जो रमानाथ के घर से भाग जाने के बाद एक भिन्न रूप में दिखाई देती है। चंद्रहार बेचकर रमानाथ के आफिस के रुपये चुकाना, सर्राफ को रुपये देने के लिए रतन को कंगन बेचना आदि के साथ-साथ शतरंज की पहेली प्रकाशित करवाना, पति को कलकत्ते पहुँचकर स्थितियों का निर्भय होकर सामना करना तथा रमानाथ की गवाही के कारण फाँसी की सजा पाने वाले दिनेश के परिवार की सेवा आदि घटनाएँ जालपा के चारित्रिक वैशिष्टय का ही संकेत हैं। यद्यपि रमानाथ के द्वारा 'गबन की घटना जालपा की आभूषणप्रियता तथा रतन से घनिष्ठ सम्पर्क बनने का ही परिणाम है, तथापि यह भी स्पष्ट है कि रमानाथ के अंतर-परिमार्जन के लिए जालपा का परिवर्तित व्यवहार एक प्रेरणा बनकर उसके सम्मुख आता है।

इनके अतिरिक्त देवीदीन के आगमन से कथा एक नया मोड़ लेती है। उसकी नकली हस्ताक्षर करके मनीआर्डर को हड़प लेने की घटना रमानाथ की कथा से बहुत साम्य रखती है। लेकिन उसका 'स्वदेशी के लिए पुत्रों का बलिदान, उसके देशभक्तिपूर्ण उदगार रमानाथ के मन में राष्ट्रीय भावना उद्वेलित करने का आधार बने हैं। रतन और जोहरा की कथाएँ प्रधन कथा में सहायक कथाएँ हैं। रतन के पैसे वापिस करने के लिए ही रमानाथ आफिस की रकम घर लेकर आता है। रमानाथ के घर से जाने के बाद जालपा का शतरंज की पहेली प्रकाशित करवाना और कलकत्ते जाना रतन की ही सहायता से संभव हो सका। इतना अवश्य है कि उसकी मृत्यु का प्रसंग दुखद और प्रतिपाध से सर्वथा असंबद्ध है। जोहरा का समावेश रमानाथ और जालपा से संपर्क सूत्र बनाने के लिए हुआ है। ये सभी गौण कथाएँ मूल अथवा आधिकारिक कथा के विकास में समुचित योगदान करती हैं।

समीक्षा की दृष्टि से मूल कथानक के पाँच सोपान होते हैं-प्रारम्भ, विकास, संघर्ष, चरमबिन्दु और उपसंहार। आरम्भ जिज्ञासावर्द्धक तथा कौतूहल बढ़ाने वाला हो तो पाठक की रोचकता उपन्यास में निरन्तर बनी रहती है। 'गबन उपन्यास का आरम्भ बहुत प्रभावशाली ढंग से हुआ है। 'बरसात के दिन हैं, सावन का महीना। ...सबके दिल उमंगों से भरे हुए हैं। धनी साड़ियों ने प्रकृति की हरियाली से नाता जोड़ा है। इसी समय ...। पढ़कर पाठक आने वाली स्थितियों

से अनायास ही जुड़ जाता है। झूला झूलती जालपा का बिसाती के पास जाकर चंद्रहार लेना उसकी रुचियों से परिचय कराता है। 'चार दिन में तो बिटिया को असली चंद्रहार मिल ही जायेगा–बिसाती का यह कथन जालपा के मन में दबे-ढके चंद्रहार के प्रति आकर्षण भाव को और बढ़ावा देता है। इस छोटी सी घटना का प्रभाव आगे आने वाली परिस्थितियों पर बहुत गहरा पड़ता है।

विवाहोपरान्त चंद्रहार न मिलने की स्थिति से कथानक का विकास होता है। जालपा का चंद्रहार के लिए हठ करना, रमानाथ का आश्वासन देना और आभूषण-चोरी इत्यादि कथानक के विकास की स्थितियाँ हैं। रतन को केवल रुपये दिखाने की भावना से म्यूनिसिपैलिटी का धन घर लाना और रतन के पैसे वापिस ले लेने की स्थिति में खजाने में वापिस न जमा कराने के कारण रमानाथ का घर से भागना संघर्ष का सूत्रपात है। पुलिस के पंजे में फँसकर रमानाथ बाहरी और भीतरी संघर्ष से जूझता है। जालपा रमानाथ की खोज के लिए अनेक प्रयत्न करती है। उसे ढूँढ़कर न्याय के मार्ग पर लाने के लिए अनेक संघर्ष करती है। दूसरी ओर रमानाथ आन्तरिक संघर्ष से जूझता है। एक ओर गबन के कारण मिलने वाला दण्ड तथा दूसरी ओर झूठी गवाही। जालपा की प्रेरणा से वह झूठी गवाही बदलने का प्रयत्न भी करता है पर असफल रहता है। कथानक का चरमबिन्दु है वह स्थिति, जब रमानाथ को पता चलता है कि उसकी झूठी गवाही के कारण फाँसी का दण्ड पाने वाले दिनेश की वृद्ध माँ, बेबस पत्नी और नन्हे बच्चों की सेवा करने के लिए जालपा ने अपने को पूरी तरह लीन कर दिया है। यह स्थिति रमानाथ के लिए असह्य है। वह सारी उलझनों को छोड़कर हर विपत्ति को सहने के लिए उत्सुक हो उठता है और अपनी गवाही बदल देता है। उपसंहार में सभी समस्याओं का समाधन हो जाता है। जोहरा का त्यागपूर्ण बलिदान अंत में पाठक के मन को करुणा से भर देता है, पर अंततः रमानाथ और जालपा शांतिमय जीवन की ओर अग्रसर होते हैं।

गबन के कथा-शिल्प में लेखक ने कथा-संकेत, संयोग आदि का भी प्रयोग किया है। रमेश बाबू के साथ शतरंज खेलते हुए, एक-एक फर्जी (मोहरे) का पिटना रमानाथ की आने वाली हार का प्रतीक है। इसी प्रकार जालपा के द्वारा सर्राफ के लाए गहने रख लिए जाने पर लेखक की टिप्पणी है-"हम क्षणिक मोह और संकोच में पड़कर अपने जीवन के सुख और शांति को कैसे होम कर देते हैं। अगर जालपा मोह के इस झोंके में अपने को स्थिर रख सकती, अगर रमा संकोच के आगे सिर न झुका देता, दोनों के हृदय में प्रेम का सच्चा प्रकाश होता

तो वे पथ-भ्रष्ट होकर सर्वनाश की ओर न जाते। अन्यत्रा रमेश द्वारा लिखे पत्र को, जिसमें पैसे न देने की बात थी, रमानाथ फाड़कर एकाग्रचित हो दीपक को देखने लगता है। इस स्थिति के लिए प्रेमचन्द ने लिखा है-"इतनी ही एकाग्रता से वह कदाचित आकाश की काली, अभेध मेघराशि की ओर ताकता। संयोग की घटनाएँ प्रस्तुत उपन्यास में अधिक नहीं हैं। समाचार-पत्र में शतरंज की पहेली प्रकाशित करवाकर जालपा-रमानाथ का पता लगाती है। इसी प्रकार घूमते हुए रमानाथ जालपा को दिनेश के घर का कार्य करते हुए देखता है। ये आकस्मिक संयोग तो नहीं है, लेकिन इसके द्वारा कथानक में रोचकता के साथ-साथ घटनाक्रम में परिवर्तनशीलता देखी जा सकती है।

नाटकीय व्यंग्य कथानक में रोचकता की वृद्धि करते हैं। रमानाथ आफिस के रुपये रतन से वापिस लेने जाता है तो घोर अन्तर्द्वन्द्व से घिरा हुआ है। दूसरी ओर रतन मस्ती से झूला ही नहीं झूल रही, वरन रमानाथ से झूलने-झुलाने की बात कहती है। ऐसे में रमानाथ की व्याकुलता और रतन की रसिकता स्थिति को और भी जटिल और विचित्र बना देती है। इसी प्रकार रमानाथ का अनजाने ही स्टेशन पर आ जाना, टिकट के लिए कुलियों के जमादार को अंगूठी देना, जमादार का वापिस न आना और गाड़ी के चलते ही टिकट-चेकर का वहाँ आना स्थिति की नाटकीयता और रमानाथ की बेचैनी को दर्शाता है। प्रेमचन्द इस प्रकार के दृश्यों से कथानक को सहज ही रोचक, आकर्षक और स्वाभाविक बनाने में कुशल रहे हैं।

पूर्वदीपित-शैली अर्थात फ्रलैश बैक का प्रयोग भी कथानक में कौतूहल की वृद्धि करता है। देवीदीन का खादी प्रेम का पूर्व इतिहास, रमानाथ द्वारा शतरंज-पहेली हल करने की घटना, रतन के पति वकील बाबू की मृत्यु के समय उनकी स्मृति में अपने स्वर्गीय पुत्र की स्मृति आदि घटनाएँ उपन्यास में मार्मिकता की वृद्धि करती हैं। रतन, देवीदीन, जोहरा से संबंधित उपकथाओं में अनेक स्थलों पर मार्मिकता की प्रस्तुति हुई है।

सुगठितता कथानक का आवश्यक तत्त्व है। उसमें वर्णित घटनाएँ और स्थितियाँ सुव्यवस्थित और क्रमबद्ध होनी चाहिए। प्रेमचन्द के उपन्यासों में प्रायः घटना-बहुलता होते हुए भी एक क्रमबद्धता और सुगठित कथानक के दर्शन होते हैं। सर्वत्र एक कार्य कारण-शृंखला को देखा जा सकता है। बचपन में जालपा का चंद्रहार के लिए स्वप्न संजोना, ससुराल में चंदहार न मिलने पर निराशा, गहनों की चोरी से आभूषणप्रियता में वृद्धि, रमानाथ का उधर पर गहने

बनवाना और फिर एक-एक विपत्तियों का आगमन-सभी घटनाएँ परस्पर एक नियमित शृंखला में बँधी हुई हैं।

स्वाभाविकता या विश्वसनीयता कथानक की सफलता के लिए अत्यंत आवश्यक तत्त्व है। घटनाएँ काल्पनिक होते हुए भी स्वाभाविक प्रतीत होती हैं तो कथानक विश्वसनीय बन जाता है। 'गबन में निम्न मध्यवर्गीय परिवार की आर्थिक, सामाजिक स्थिति, ऊँची कल्पनाओं के कारण झूठी शान, मिथ्या अभिमान की वृत्ति आज समाज को रसातल की ओर ले जा रही है। उनका संकट स्वयं उनके ही द्वारा लाया जाता है जैसे कि रमानाथ का जीवन-वृत्त। मिथ्याभिमानी युवक का एक झूठ को छिपाने के लिए निरन्तर झूठ के जाल में फँसते जाना, और अपनी ही मूर्खता के कारण घर परिवार को संकट में डाल देना अस्वाभाविक नहीं। इसके अतिरिक्त जालपा का आभूषणों के प्रति आवश्यकता से अधिक रुचि दिखाना, रतन का अनमोल विवाह, देवीदीन जैसे निस्वार्थी पात्र आज भी हमारे समाज में देखे जा सकते हैं। इसी प्रकार सरकारी दफ्तरों में रिश्वत की परंपरा, पुलिस की चालें, अदालतों में बेकसूरों को फँसाने के लिए दी जाने वाली झूठी गवाहियाँ आदि दिन-रात समाचार पत्रों में आज भी पढ़ी जाती हैं।

कुछ समीक्षकों की दृष्टि में प्रस्तुत उपन्यास की कुछ घटनाएँ विश्वसनीय नहीं हैं। जैसे जालपा का इतने बड़े कलकत्ता शहर में रमानाथ को ढूँढ़ निकालना, जोहरा जैसी नर्तकी का रमानाथ और जालपा से प्रभावित होकर उनका मैत्री-संबंध, रमानाथ का जज के घर आधी रात को जाकर अपना बयान बदलना आदि। पर ध्यान से देखा जाय तो इन सभी घटनाओं के पीछे कोई-न-कोई कारण निहित है। जालपा रमानाथ को शतरंज की एक पहेली के माध्यम से ढूँढ़ने में सफल होती है। जोहरा जालपा के त्याग और न्याय के लिए संघर्षशील स्वभाव से प्रभावित होती है और जज का एक व्यक्ति के बयान बदलने पर विश्वास करना, किसी निर्दोष को जीवनदान के प्रश्न से जुड़ा है।

अंततः 'गबन उपन्यास का कथानक प्रत्येक कसौटी पर खरा उतरा है।

पात्र योजना

'गबन' में पात्रों की संख्या 50 से भी अधिक है, जिनमें प्रमुख पात्र 10 ही हैं-5 पुरुष पात्र रमानाथ, दयानाथ, देवीदीन, रमेश बाबू और इन्द्रभूषण वकील। तथा 5 स्त्री पात्र हैं-जालपा, रतन, जोहरा, जग्गो तथा जागेश्वरी। अनेक पात्र ऐसे

भी हैं जिनकी यद्यपि कोई निजी विशेषता नहीं है, लेकिन प्रमुख कथा विस्तार तथा मूल भाव की प्रस्तुति में ये सहायक सिद्ध हुए हैं।

स्थूल रूप से पात्रों को दो वर्गों में बाँट सकते हैं–वर्गगत और व्यक्तिगत। वर्गगत पात्र अपने वर्ग के अनुसार ही व्यवहार करते हैं। उनका जीवन, स्वभाव और कर्म अपने वर्ग का प्रतिनिधित्व करता है। प्रस्तुत उपन्यास में रमानाथ, दयानाथ, दीनदयाल, इन्द्रभूषण वर्गगत पात्र हैं। रमानाथ आज के उन युवकों का प्रतिनिधि पात्र है जो अपनी हैसियत से ऊँची कल्पनाएँ करते हैं, आर्थिक अभाव को समझते हुए भी आकाश को छूना चाहते हैं और अपने इस प्रयत्न में न केवल स्वयं वरन अपने साथ सभी को संकट में डाल देते हैं। दयानाथ निम्नमध्यवर्गीय नौकरीपेशा लोगों की तस्वीर प्रस्तुत करते हैं, जो अपनी ईमानदारी पर अडिग रहते हैं। दीनदयाल जमींदार का मुख्तियार है वह वर्गीय शान, शाही खर्च आदि को यथावत प्रस्तुत करता है। इन्द्रभूषण वकील, जो रतन का पति है, उच्चवर्गीय लोगों की सच्ची तस्वीर प्रस्तुत करता है। रतन उन मध्यवर्गीय महिलाओं की प्रतिच्छवि है जो आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न होने पर भी अनमोल विवाह के अभिशाप को झेलती है।

व्यक्तिगत पात्र चारित्रिक दृष्टि से अनेक विशेषताओं से सम्पन्न होते हैं। जालपा, देवीदीन, जोहरा इसी श्रेणी के पात्र हैं। जालपा प्रारंभ में एक मध्यवर्गीय परिवार की साधरण गुणों से सम्पन्न एक ऐसी महिला है जो आभूषण–प्रेम को ही जीवन का सर्वस्व मानती है, किन्तु रमानाथ के घर छोड़कर जाने के बाद उसका विशिष्ट व्यक्तित्त्व उभरकर सामने आता है। देवीदीन एक मस्त, निर्भीक और विनोदी व्यक्ति है। निम्नवर्ग के व्यक्ति प्रायः ऐसे गुणों से युक्त नहीं होते हैं। जोहरा वेश्या वर्ग से जुड़ी होने पर भी भिन्न गुणों से युक्त है और रमानाथ तथा जालपा की सरलता और सादगी से प्रभावित होकर भिन्न रूप प्रदर्शित करती है।

इसके अतिरिक्त पात्रों को 2 अन्य दृष्टियों से भी देखा जा सकता है–स्थिर पात्र और गतिशील पात्रा। जो पात्र आदि से अंत एक ही साँचे में ढले हुए प्रतीत हों (इस रूप में वे कभी–कभी प्रभावहीन और अनुभूति रहित भी हो जाते हैं) स्थिर पात्र होते हैं। गतिशील अर्थात जीवन के उतार–चढ़ाव के साथ–साथ उत्तरोत्तर विकास। इस रूप में ये पात्र सजीव और प्रभावशाली होते हैं। गबन के प्रायः अधिकतर पात्र गतिशील हैं। रमानाथ परिस्थितियों के परिवर्तन के साथ–साथ अनेक प्रकार की मानसिकता से गुजरता तो है ही, साथ ही अच्छाई

और बुराई के भिन्न पक्षों से जुड़ता जाता है। एक समय चंद्रहार के लिए अड़ जाने वाली जालपा भिन्न परिस्थितियों में चंद्रहार को आधे मूल्य पर बेचकर परिवार की मर्यादा बचाती है। पैसे-पैसे को बचाकर रखने वाला दयानाथ अपने पुत्र के विवाह में खुला खर्च करता है। अपने पति को फटकारने वाली जग्गो, बाद में उसी के लिए दिन भर दुकानदारी करती है। पुलिस के कहने से रमानाथ का मन बदलने के लिए प्रयत्नशील जोहरा पहले नृत्य और मदिरा का आधार ग्रहण करती है पर बाद में वह स्नेही और सेवामयी स्त्री के रूप में दिखाई देती है। मानकी, रामेश्वरी, गोपी, दारोगा आदि पात्र स्थिर कहे जा सकते हैं। यूँ भी ये पात्र थोड़े समय के लिए तो आते हैं, पर जितना समय वे उपन्यास के रंगमंच पर प्रकट होते हैं, इसी रूप में दिखाई देते हैं।

प्रेमचंद से पूर्व उपन्यासों में प्राय: घटनाओं आदि के चित्रण पर अधिक ध्यान दिया जाता था, पर प्रेमचंद ने पात्रों के चरित्र-विश्लेषण पर अधिक ध्यान दिया था। मानव चरित्र पर प्रकाश डालना और उसके रहस्यों को खोलना-उपन्यास का मूल तत्त्व मानने वाले प्रेमचन्द ने 'गबन में मानव गुणों और अवगुणों के सजीव चित्र अंकित किए हैं। पात्रों की चारित्रिक विविधितओं को संवादों और घटनाओं के माध्यम से प्रस्तुत किया है। प्रेमचन्द ने अधिकांश पात्रों का प्रथम परिचय औपचारिक रीति से दिया है। इसे लेखकीय वर्णन कह सकते हैं। देवीदीन का प्रारम्भिक परिचय उसकी रूपाकृति के साथ-साथ उसकी चारित्रिक प्रवृत्तियों की ओर भी संकेत करता है। दयानाथ और रमानाथ का स्वभावगत परिचय इस रूप में दिया गया है-"दयानाथ बहुत ऊँचे आदर्श का आदमी न होने पर रिश्वत को हराम समझता था, जबकि रमानाथ को शतरंज खेलने, सैर सपाटे करने, मित्रों की मदद से विभिन्न फैशन करने के अतिरिक्त और कोई कार्य नहीं था।"

भाषा-शिल्प

प्रेमचंद के अन्य उपन्यासों की भाँति 'गबन की भाषा भी आम-बोलचाल की भाषा है। इस उपन्यास के सभी पात्र जिस-जिस वर्ग से सम्बन्ध रखते हैं, उनकी भाषा का रूप भी वैसा ही है। उपन्यास के प्रमुख पात्र दयानाथ, रमानाथ, जालपा, मानकी, दीनदयाल आदि इलाहाबाद के मध्यवर्ग के नौकरीपेशा परिवार से संबंध् रखते हैं। अत: उनकी भाषा उसी वर्ग की व्यावहारिक भाषा है। ये पात्र उच्चशिक्षित भी नहीं हैं, अत: उनकी भाषा का रूप जन सामान्य की भाषा के बिल्कुल निकट दिखाई पड़ता है। उपन्यास के आरंभ में ही एक बिसाती वाले

से मोल-भाव करती मानकी की भाषा में साधरण शब्दों का प्रयोग होते हुए भी उनकी सहज विश्वसनीयता प्रेमचंद की भाषा के सामर्थ्य की धोतक है-

माँ ने बिसाती से पूछा-बाबा, यह हार कितने का है?

बिसाती ने हार को रूमाल से पोंछते हुए कहा-"खरीद तो बीस आने की है, मालकिन जो चाहें दे दें।"

माता ने कहा-यह तो बड़ा महँगा है। चार दिन में इसकी चमक-दमक जाती रहेगी।

बिसाती ने मार्मिक भाव से सिर हिलाकर कहा-बहूजी, चार दिन में तो बिटिया को असली चन्द्रहार मिल जाएगा।

सहज, सरल भाषा से युक्त यह संवाद पाठक के सामने अनायास ही एक चित्र खींच देता है, जिसमें खरीददार की सस्ता माल खरीदने की मानसिकता और बेचने वाले की प्रभावपूर्ण तर्कशीलता स्पष्ट दिखाई देते हैं। इसी प्रकार जालपा के विवाह के अवसर पर उसकी सखियों की बातचीत तथा विवाह के पश्चात सर्राफ के तगादों से झल्लाए दयानाथ का अपनी पत्नी से वार्तालाप आम बोलचाल की भाषा के सटीक उदाहरण हैं।

दफ्तरों में, बाजारों में और पुलिस थानों में जैसी भाषा का प्रयोग किया जाता है, 'गबन में अवसर और स्थिति के अनुरूप वैसी ही भाषा का प्रयोग किया गया है। पुलिस स्टेशन पर रमानाथ से उसकी असलियत जानने के लिए पूछताछ करते दारोगा और कांस्टेबल की भाषा का यह उदाहरण देखिए-

दारोगा ने गंभीर भाव से कहा-मामला कुछ संगीन है, क्या कुछ शराब का चस्का पड़ गया था?

'मुझसे कसम ले लीजिए, जो कभी शराब मुँह से लगायी हो।

कांस्टेबल ने विनोद करके कहा-मुहब्बत के बाजार में लुट गये होंगे, हुजूर।

रमा ने मुस्कराकर कहा-मुझसे फाकेमस्तों का वहाँ कहाँ गुजर?

दारोगा-तो क्या जुआ खेल डाला? या, बीबी के लिए जेवर बनवा डाले।

पुलिस वालों की यह भाषा उनके चरित्र और मुजरिमों से उनका अपराध् कबूल कराने के उनके ढंग का सही खाका खींचती है। इसी प्रकार रमानाथ के दफ्तर का एक चपरासी सरकारी रुपये अपने पास रखने की जिध्म्मेदारी से इनकार करता हुआ कहता है-श्श्नहीं बाबू साहब, मैं यहाँ रुपये नहीं रखने दूँगा। सब घड़ी बराबर नहीं जाती। कहीं रुपये उठ जाएँ तो मैं बेगुनाह मारा जाऊँ। सुभीते का ताला भी तो नहीं है यहाँ। स्पष्ट है कि 'गबन की भाषा में पात्राानुकूल

स्वाभाविकता है जो प्रेमचंद की भाषायी पकड़ के साथ-साथ सभी चरित्रों में गहरी पैठ की भी सूचक है।

प्रेमचंद आम जनता के लेखक थे। उन्होंने उनकी भाषा में उन्हीं की समस्याओं को प्रस्तुत किया। इसलिए उनकी भाषा में जिस शब्द-समूह का प्रयोग हुआ है, वह भी जनसाधरण की भाषा का है। उनकी भाषा में वह स्वाभाविकता और सहजता है, जो सोच-समझकर प्रयोग नहीं की जाती। यही कारण है कि प्रेमचन्द की अन्य कृतियों की भाँति 'गबन में भी तत्सम, तदभव, देशज और विदेशी सभी शब्दों का प्रयोग हुआ है। जहाँ इस उपन्यास में मार्मिक, आनन्द, अनुराग, कातर, प्रसन्न, पुरुषार्थ, त्रिया, आकांक्षा, रोदन, विकृत जैसे तत्सम शब्दों का प्रयोग हुआ है, वहीं टीम-टाम, अकारथ, कलेवा, कनबतियाँ, लहलहाना, संदूकची, जड़ाऊ, सुलगना, मुरझाना जैसे देशज और तद्भव शब्दों की भी बहुतायत है। चूँकि प्रेमचंद का आरंभिक लेखन उर्दू में था इसलिए हिन्दी-लेखन में भी उर्दू शब्दों का आना स्वाभाविक ही था। 'गबन में भी आईना, सूरत, तकाजे, तहरीर, शहादत, जिरह, जहीन, इलजाम, रंजीदा, तरद्दुद, शुबहा, सबब आदि अरबी-फारसी शब्दों का इतनी सहजता से प्रयोग हुआ है कि वह आम आदमी की भाषा प्रतीत होती है। इसी प्रकार अल्टरनेटिव, गवर्नमेंट, डाइरक्टरी, डिग्री, एप्रूवर, प्राउड आदि अंग्रेजी शब्द भी भाषा में घुले-मिले हैं।

मुहावरे और लोकोक्तियाँ भाषा के वे अवयव हैं, जो उसे अधिक प्रभावशाली और मार्मिक बनाते हैं। इनमें प्रयुक्त सीधे-सरल शब्द भी इतने अर्थव्यंजक हो उठते हैं कि कथ्य बहुत गहरा और पैना हो जाता है। 'गबन में भी आम आदमी द्वारा प्रयुक्त मुहावरों और लोकोक्तियों का इतना व्यापक और सटीक प्रयोग हुआ है कि वे कहीं भी आरोपित नहीं जान पड़ते। रमानाथ की उच्छश्रृंलता से चिंतित पिता दयानाथ को ढांढ़स बंधाती रामेश्वरी का यह कथन देखिए-"रामेश्वरी को अपने विवाह की बात याद आयी। दयानाथ भी तो गुलछर्रे उड़ाते थे, लेकिन उसके आते ही उन्हें चार पैसे कमाने की पिफक्र कैसी सिर पर सवार हो गयी थी।" ...बोली-"बहू आ जायेगी, तो उसकी आँखें भी खुलेंगी। जब तक गले में जुआ नहीं पड़ा है, तभी तक यह कुलेलें हैं। जुआ पड़ा और सारा नशा हिरन हुआ।"

इस एक संवाद में प्रयुक्त गुलछर्रे उड़ाना, सिर पर सवार होना, आँखें खुलना, गले में जुआ पड़ना, कुलेंले करना, नशा हिरन होना आदि मुहावरों का एक साथ प्रयोग जहाँ एक ओर रामेश्वरी जैसी आम गृहिणी द्वारा प्रयुक्त भाषा का

नमूना प्रस्तुत करता है, वहीं दूसरी ओर अर्थ को अधिक सार्थक एवं व्यंजक बनाता है। यही नहीं 'गबन में ऐसे अनेक प्रसंग और स्थल हैं जहाँ 'मन डाल-डाल दौड़ना, मेंढ़की को जुकाम, कंगाल को पारस मिलना, भीगी बिल्ली बनना, आटे-दाल का भाव मालूम होना, मुँह देखे की प्रीत, आँख ओट पहाड़ ओट, जले पर नमक छिड़कना, मियाँ की जूती मियाँ के सिर, तबेले की बला बंदर के सिर आदि मुहावरों और लोकोक्तियों का प्रयोग इस उपन्यास की भाषा को सहजता एवं अर्थवत्ता प्रदान करते हैं। किसी भाषा के शब्द भंडार को समृद्ध करने में मुहावरों और लोकोक्तियों के अतिरिक्त सूक्तियों का भी महत्त्वपूर्ण हाथ होता है। सूक्तियाँ जीवन की वास्तविकताओं और अनुभवों पर आधरित वे यथार्थ कथन होते हैं, जो अपने भीतर गहरा अर्थ लिये होते हैं। प्रेमचंद मानव जीवन के पारखी थे, अत: उनकी कृतियों में सूक्तियों का अथाह भण्डार अनायास ही देखा जा सकता है। 'गबन भी इसका अपवाद नहीं है। उपन्यास में अपने कथन को पुष्ट करने, पात्रों की मनरूस्थितियों को उजागर करने अथवा स्थितियों को उनके यथार्थ रूप में प्रस्तुत करने के लिए 'गबन में कई सूक्तियों का प्रयोग लेखक ने किया है। उदाहरण-स्वरूप कुछ सूक्तियाँ इस प्रकार हैं–

1. अनुराग स्पूफर्ति का भंडार है।
2. जो अपना पेट भी न पाल सके उसे जीते रहने का, दूसरों का बोझ बनने का कोई हक नहीं है।
3. हम क्षणिक मोह और संकोच में पड़कर अपने जीवन के सुख और शांति का कैसे होम कर देते हैं।
4. यौवन में प्रेम की क्षुध इतनी नहीं होती, जितनी आत्मप्रदर्शन की।

भाषा यदि विचारों और भावों के संप्रेषण का साधन है, तो शैली उसकी प्रस्तुति की पद्धति। लेखक अपनी रुचि और कथ्य की आवश्यकता के अनुसार अनेक शैलियों का प्रयोग अपनी रचना में करता है। उपन्यासों में प्राय: वर्णनात्मक, विवेचनात्मक, विश्लेषणात्मक, शैलियों का प्रयोग देखा जाता है। गबन में प्रेमचंद ने मुख्य रूप से वर्णनात्मक, विवेचनात्मक, काव्यात्मक और संवाद शैलियों का प्रयोग करते हुए कथा को विस्तार दिया है। वर्णनात्मक शैली में लेखक विविध् पात्रों, घटनाओं और स्थितियों का वर्णन करता है। पुत्रा के विवाह में अपनी हैसियत से बढ़कर खर्च करने के पश्चात वास्तविकताओं से दो-चार होते दयानाथ की मनोदशा का वर्णन लेखक ने इस प्रकार किया है-श्श्महाशय दयानाथ जितनी उमंगों से ब्याह करने गये थे, उतना ही हतोत्साह होकर लौटे। दीनदयाल ने खूब

दिया, लेकिन वहाँ से जो कुछ मिला, वह सब नाच-तमाशों, नेग-चार में खर्च हो गया। बार-बार अपनी भूल पर पछताते, क्यों दिखावे और तमाशे में इतने रुपये खर्च किये। ये पंक्तियाँ स्थितियों के वर्णन के साथ-साथ कथा में आगे आने वाले मोड़ की भी संकेतक हैं।

विवेचनात्मक शैली में लेखक प्रस्तुत पात्रों, स्थितियों और घटनाओं का विवेचन करता है। अपने पति वकील साहब की बिगड़ती स्थिति का वर्णन करते हुए रतन जालपा को पत्र लिखती है। इस पत्र में लेखक ने होने वाले अनिष्ट की शंका से कंपित रतन के हृदय की मानसिक अवस्था का चित्रण करते हुए कहा है-"बहन, नहीं कह सकती, क्या होने वाला है-दिल घबड़ा रहा है बहन, जी चाहता है, थोड़ी सी संखिया खाकर सो रहूँ। विधता को संसार दयालु, कृपालु, दीनबंधु और जाने कौन-कौन सी उपलबिध्याँ देता है। मैं कहती हूँ, उससे निर्दयी, निर्मम, निष्ठुर कोई शत्रु भी नहीं हो सकता... जिस दंड का हेतु ही हमें मालूम न हो, उस दंड का मूल्य ही क्या। वह तो जबरदस्त की लाठी है, जो आघात करने के लिए कोई कारण गढ़ लेती है।"

पत्रात्मक शैली का प्रयोग भी 'गबन में अनेक स्थानों पर हुआ है। जैसे रमानाथ द्वारा घर छोड़ने से पूर्व अपने मन के ऊहापोह और विचारों के अंतर्मथन की सूचना पत्र द्वारा देना, जालपा द्वारा अपनी सखियों को पत्र लिखकर अपने विवाहित जीवन के विषय में बताना, रतन द्वारा जालपा को पत्र लिखकर अपने पति के बिगड़ते स्वास्थ्य के विषय में सूचित करना और रमानाथ को अपने निर्दोष होने की सूचना जालपा के पत्र से प्राप्त होना आदि।

इसी प्रकार काव्यात्मक शैली का प्रयोग उपन्यास की कथात्मकता में सरसता का संचार करता है। 'गबन का आरम्भ लेखक ने इसी शैली में किया है-श्शबरसात के दिन हैं, सावन का महीना। आकाश में सुनहरी घटाएँ छायी हुई हैं। रह-रहकर रिमझिम वर्षा होने लगती है।.. ये फुहारें मानो चिन्ताओं को हृदय से धो डालती हैं, माना मुरझाये हुए मन को भी हरा कर देती हैं। इसी प्रकार उपन्यास के अंत में मृतप्राय रतन की दशा का वर्णन अत्यंत हृदयग्राही है, मानो एक चित्र साकार हो गया हो-वह सूर्य मुखी का-सा खिला हुआ चेहरा मुरझाकर पीला हो गया था। वह रंग जिन्होंने चित्र को जीवन और स्पन्दन प्रदान कर रखा था, उड़ गये थे, केवल आकार शेष रह गया था। वह श्रवणप्रिय, प्राणप्रद, विकास और आह्लाद में डूबा हुआ संगीत मानो आकाश में विलीन हो गया था।

संवाद शैली को भी इस उपन्यास में पर्याप्त स्थान मिला है। इस शैली के प्रयोग से कथा में रोचकता और प्रभविष्णुता का समाहार हुआ है। 'गबन के अधिकांश संवाद संक्षिप्त, कथा-विकास में सहायक और पात्रों की चरित्रगत विशेषताओं को उभारने वाले हैं। जालपा और रमानाथ के प्रेम-प्रसंग, दयानाथ और रमानाथ की पारस्परिक नोक-झोंक, रमानाथ और देवीदीन के आत्मपरिचयात्मक विवरण, जालपा और रतन तथा जोहरा और रमानाथ का चरित्रांकन संवादों के माध्यम से ही हुआ है। इसी प्रकार दारोगा और देवीदीन तथा दारोगा और रमानाथ के संवाद संक्षिप्त और सारगर्भित हैं। एकाध् अपवाद को छोड़कर संक्षिप्तता और सार्थकता की दृष्टि से 'गबन की संवाद योजना का विशिष्ट स्थान है। कहीं-कहीं हास्य-व्यंग्य से युक्त चटपटे और रोचक संवादों ने उपन्यास की शैली को पूर्णता प्रदान की है।

कर्मभूमि

कर्मभूमि प्रेमचन्द का राजनीतिक उपन्यास है, जो पहली बार 1932 में प्रकाशित हुआ। आज कई प्रकाशकों द्वारा इसके कई संस्करण निकल चुके हैं। इस उपन्यास में विभिन्न राजनीतिक समस्याओं को कुछ परिवारों के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है। ये परिवार यद्यपि अपनी पारिवारिक समस्याओं से जूझ रहे हैं तथापि तत्कालीन राजनीतिक आन्दोलन में भाग ले रहे हैं।

उपन्यास के पात्र

प्रेमचन्द्र का यह उपन्यास पाँच भागों में विभाजित है। इस उपन्यास में लाला समरकांत, उनके पुत्र अमरकांत, पुत्रवधु सुखदा, रेणुकांत (सुखदा का पुत्र), पुत्री नैना सकीना, हाफिज हलीम और उनके पुत्र सलीम, धनीराम और उनके पुत्र मनीराम, डॉ. शांतिकुमार और स्वामी आत्मानन्द, गूदड़, प्रयाग, काशी, सलोनी और मुन्नी आदि की कहानी है। कर्मभूमि में परिवारों की कथा है। इसमें प्रेमचन्द देशानुराग, समाज–सुधार, मठिरा–निवारण, अछूतोद्धार, शिक्षा, गरीबों के लिए मकानों की समस्या, देश के प्रति कर्त्तव्य, जन–जागृति आदि की ओर संकेत करते हैं। कृषकों की समस्या उपन्यास में है तो, किंतु वह प्रमुख नहीं हो पायी। सम्पूर्ण कथा का कार्य–क्षेत्र प्रधानतः काशी और हरिद्वार के पास का देहाती इलाका है।

राजनीतिक उपन्यास

प्रेमचन्द का कर्मभूमि उपन्यास एक राजनीतिक उपन्यास है, जिसमें विभिन्न राजनीतिक समस्याओं को कुछ परिवारों के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है। ये परिवार यद्यपि अपनी पारिवारिक समस्याओं से जूझ रहे हैं तथापि तत्कालीन राजनीतिक आन्दोलन में भाग ले रहे हैं। उपन्यास का कथानक काशी और उसके आस–पास के गाँवों से संबंधित है। आन्दोलन दोनों ही जगह होता है और दोनों का उद्देश्य क्रान्ति है। किन्तु यह क्रान्ति गाँधी जी के सत्याग्रह से प्रभावित है। गाँधीजी का कहना था कि जेलों को इतना भर देना चाहिए कि उनमें जगह न रहे और इस प्रकार शक्ति और अहिंसा से अंग्रेज सरकार पराजित हो जाए।

समस्या

इस उपन्यास की मूल समस्या यही है। उपन्यास के सभी पात्र जेलों में ठूस दिए जाते हैं। इस तरह प्रेमचन्द क्रान्ति के व्यापक पक्ष का चित्रण करते हुए तत्कालीन सभी राजनीतिक एवं सामाजिक समस्याओं को कथानक से जोड़ देते हैं। निर्धनों के मकान की समस्या, अछूतोद्धार की समस्या, अछूतों के मन्दिर में प्रवेश की समस्या, भारतीय नारियों की मर्यादा और सतीत्व की रक्षा की समस्या, ब्रिटिश साम्राज्य के दमन चक्र से उत्पन्न समस्याएँ, भारतीय समाज में व्याप्त धार्मिक पाखण्ड की समस्या पुनर्जागरण और नवीन चेतना के समाज में संचरण की समस्या, राष्ट्र के लिए आन्दोलन करने वालों की पारिवारिक समस्याएँ आदि इस उपन्यास में बड़े यथार्थवादी तरीके से व्यक्त हुई हैं।

कथानक

अमरकांत बनारस के रईस समरकांत के पुत्र हैं। वे विद्यार्थी–जीवन से ही सार्वजनिक जीवन में कार्य करने के शौकीन हैं। अपने मित्र सलीम की आर्थिक सहायता भी करते रहते हैं। प्रारम्भ में उनके लोभी पिता के आदर्शों में काफी अंतर बना रहता है। अमरकांत का विवाह लखनऊ के एक धनी परिवार की एकमात्र संतान सुखदा से हो जाता है, किंतु दोनों के दृष्टिकोणों में साम्य नहीं है। साथ–साथ रहते हुए भी दोनों को एक –दूसरे से प्रेम नहीं है। सुखदा को अपने पति का खादी बेचना और सार्वजनिक कार्य पसन्द नहीं। पत्नी से प्रेम न पाकर अमरकांत सकीना की मुहब्बत में पड़ जाते है। वे पहले से ही डॉक्टर शांतिकुमार के साथ काशी में कार्य करते थे। गोरे सिपाहीयों द्वारा सताई गयी मुन्नी के मुकदमे

के सम्बन्ध में उन्होंने काफी कार्य किया। व्यवहारिकता और आर्दश में संघर्ष होने के कारण अपने पिता तथा सुखदा से उनका पहले से ही जी ऊबा हुआ था, लेकिन जब सकीना के साथ उनका प्रेमपूर्ण व्यवहार देखकर पठानिन ने उन्हें फटकारा तो वे शहर छोड़कर चले गये।

हरिद्वार में

शहर छोड़कर वे हरिद्वार के पास एक ऐसे देहाती इलाके में पहुँचे चहाँ मुर्दाखोर और अछूत कहे जाने वाले लोग और किसान रहते थे। वे सलोनी के यहाँ रहते हुए गूदड़, प्रयाग, काशी आदि के सम्पर्क में आये और गाँववालों में शिक्षा, अच्छी–अच्छी आदतों, सफाई आदि का प्रचार करने प्रचार करने लगे। यहाँ रहते हुए उनकी मुन्नी से भेंट हुई। दोनों में परस्पर आकर्षण भी उत्पन्न हुआ। काशी से आये आत्मानन्द से उन्हें अपने सेवा–कार्य में बराबर सहायत प्राप्त होती रहती थी। कृषकों की सहायता के लिए वे महंत आशाराम गिरि से मिले किंतु उन्हें अधिक सफलता प्राप्त न हुई किंतु काशी में सुखदा के त्याग समाचार सुनकर भी वे उत्तेजित हो उठाते हैं और लगानबन्दी का आंदोलन शुरू कर देते हैं। उनका पुराना मित्र सलीम, अब आई. सी. एस. ऑफिसर और उस इलाके का इंचार्ज, उन्हें पकड़ ले जाता है। किंतु लाला समरकांत, जिनमें अब परिवर्तन हो चुका था, जन –सेवा की ओर मुड़कर उसी इलाके में पहुँच जाते हैं और किसान –आन्दोलन के सिलसिले में कारावास दण्ड भी भुगतते हैं। उनके प्रभाव से सलीम के हृदय में भी परिवर्तन हो जाता है। वह स्वंय आन्दोलन की बागडोर संभालता है और अंत में पकड़ा जाता है। तत्पश्चात मुन्नी और सकीना (वह भी उस इलाके में पहुँच जाती है) भी गिरफ्तार हो जाती हैं। उग्र आत्मनन्द भी सरकारी शिकंजे से बच नहीं पाते।

काशी में

उधर काशी के मन्दिरों में अछूतों के प्रवेश, गरीबों के लिए मकान बनवाने आदि समस्याओं को लेकर आन्दोलन छिड़ जाता है और सरकार से संघर्ष होता है। इस आन्दोलन का संचालन सुखदा, पठानिन, रेणुकादेवी और यहाँ तक कि समरकांत भी करते हैं। ये सब और डॉक्टर शांतिकुमार जेल–यात्रा करते हैं। नैना भी वहाँ आ जाती है और एक जलूस का नेतृत्व करते हुए चुंगी की ओर जाती है। वहाँ उसका पति मनीराम उसे गोली मार देता है। उसकी मृत्यु से चुंगी के

मेम्बरों में भी हृदय –परिर्वतन हो जाता है और वे गरीबों के मकानों के लिए जमीन दे देते हैं। जो आन्दोलन सुखदा ने प्रारम्भ किया था, उसका अंत नैना की बलि से होता है। लखनऊ के सेण्ट्रल जेल में अमरकांत, मुन्नी, सकीना, सुखदा, पठानिन, रेणुका आदि सब मिल जाते हैं। धनीराम का पुत्र मनीराम मृत्यु को प्राप्त होता है।

अंत

अंत में सेठ धनीराम की मध्यस्थता से सरकार द्वारा एक कमेटी नियुक्त हो जाती है जो सरकार से मिलकर किसानों और गरीबों की समस्याओं पर विचार करेगी। उस कमेटी में अमर और सलीम तो रहते ही हैं, उनके अतिरिक्त तीन अन्य सदस्यों को चुनने का उन्हें अधिकार दिया गया। सरकार ने भी उस कमेटी में दो सदस्यों अपने रखे। यह समझौते वाली नीति 1930 के कांग्रेस और सरकार के अस्थायी समझौते के प्रभाव के रूप में है। सरकार तब कैदियों को छोड़ देती है। अमरकांत, सकीना और मुन्नी को बहन के रूप में स्वीकार करते हैं और अमरकांत और सुखदा एक दूसरे का महत्त्व पहचानते हैं।

निर्मला

निर्मला, मुंशी प्रेमचन्द द्वारा रचित प्रसिद्ध हिन्दी उपन्यास है। इसका प्रकाशन सन् 1927 में हुआ था। सन् 1926 में दहेज प्रथा और अनमेल विवाह को आधार बना कर इस उपन्यास का लेखन प्रारम्भ हुआ। इलाहाबाद से प्रकाशित होने वाली महिलाओं की पत्रिका 'चाँद' में नवम्बर 1925 से दिसम्बर 1926 तक यह उपन्यास विभिन्न किस्तों में प्रकाशित हुआ।

महिला-केन्द्रित साहित्य के इतिहास में इस उपन्यास का विशेष स्थान है। इस उपन्यास की कथा का केन्द्र और मुख्य पात्र 'निर्मला' नाम की 15 वर्षीय सुन्दर और सुशील लड़की है। निर्मला का विवाह एक अधेड़ उम्र के व्यक्ति से कर दिया जाता है। जिसके पूर्व पत्नी से तीन बेटे हैं। निर्मला का चरित्र निर्मल है, परन्तु फिर भी समाज में उसे अनादर एवं अवहेलना का शिकार होना पड़ता है। उसकी पति परायणता काम नही आती। उस पर सन्देह किया जाता है, उसे परिस्थितियाँ उसे दोषी बना देती है। इस प्रकार निर्मला विपरीत परिस्थितियों से जूझती हुई मृत्यु को प्राप्त करती है।

निर्मला में अनमेल विवाह और दहेज प्रथा की दुखान्त कहानी है। उपन्यास का लक्ष्य अनमेल-विवाह तथा दहेज प्रथा के बुरे प्रभाव को अंकित करता है। निर्मला के माध्यम से भारत की मध्यवर्गीय युवतियों की दयनीय हालत का चित्रण हुआ है। उपन्यास के अन्त में निर्मला की मृत्यृ इस कुत्सित सामाजिक प्रथा को मिटा डालने के लिए एक भारी चुनौती है। प्रेमचन्द ने भालचन्द और मोटेराम शास्त्री के प्रसंग द्वारा उपन्यास में हास्य की सृष्टि की है।

निर्मला के चारों ओर कथा-भवन का निर्माण करते हुए असम्बद्ध प्रसंगों का पूर्णत: बहिष्कार किया गया है। इससे यह उपन्यास सेवासदन से भी अधिक सुग्रंथित एवं सुसंगठित बन गया है। इसे प्रेमचन्द का प्रथम 'यथार्थवादी' तथा हिन्दी का प्रथम 'मनोवैज्ञानिक उपन्यास' कहा जा सकता है। निर्मला का एक वैशिष्ट्य यह भी है कि इसमें 'प्रचारक प्रेमचन्द' के लोप ने इसे ने केवल कलात्मक बना दिया है, बल्कि प्रेमचन्द के शिल्प का एक विकास-चिन्ह भी बन गया है।

कथानक

प्रेमचन्द कृत 'निर्मला' उपन्यास में अनमेल विवाह और दहेज-प्रथा की दु:खांत कहानी है। उपन्यास के अंत में निर्मला की मृत्यु इस कुत्सित सामाजिक प्रथा को मिटा डालने के लिए एक भारी चुनौती है। पिता उदयभानु लाल की मृत्यु हो जाने पर माता कल्याणी दहेज न दे सकने के कारण अपनी पुत्री निर्मला का विवाह भालचन्द्र और रंगीली के पुत्र भुवन मोहन से न कर बूढ़े वकील तोताराम से कर देती है। तोताराम के तीन पुत्र पहले ही से थे, इस पर भी उनकी विलासिता किसी प्रकार कम न हुई। इतना ही नहीं, निर्मला के घर में आने पर एक नवयुवती वधू के हृदय की उमंगों का आदर और उसे अपना प्रेम देने के स्थान पर तोताराम को अपनी पत्नी और अपने बड़े लड़के मंसाराम के पारस्परिक सम्बन्ध पर विलासिताजन्य सन्देह होने लगता है, जो अंततोगत्वा न केवल मंसाराम के प्राणंत का कारण बनता है, वरन सारे परिवार के लिए अभिशाप बन जाता है।

उपकथायें

निर्मला और तोताराम की इस प्रधान कथा के साथ सुधा की कहानी जुड़ी हुई है। तोताराम को जब निर्मला और मंसाराम के सम्बन्ध में निराधार सन्देह होने लगता है और, निर्मला अपने को निर्दोष सिद्ध करने के लिए

मंसाराम के प्रति निष्ठुरता का अभिनय करती है और जब मंसाराम को घर से हटाकर बोर्डिंग में दाखिल कर दिया जाता है, तो बालक मंसाराम के हृदय को मार्मिक आघात पहुँचना है। उसकी दशा दिन-पर-दिन गिरती जाती है, और अंत में अपने पिता का भ्रम दूरकर वह मृत्यु को प्राप्त होता है। तोताराम को मानसिक विक्षोभ होता है। इसी समय समय प्रेमचन्द ने सुधा और उसके पति डॉ. भुवन मोहन का (जिसके साथ निर्मला का पहले विवाह होने वाला था) निर्मला से मित्रतापूर्ण सम्बन्ध स्थापित कराया है। सुधा और निर्मला घनिष्ठ मित्र बन जाती हैं। सुधा अपने शील सौजन्य और सहानुभूतिपूर्ण हृदय से निर्मला को मुग्ध कर लेती है। वह निर्मला की छोटी बहन कृष्णा का विवाह अपने देवर से कराती ही नहीं वरन निर्मला की माता की गुप्त रूप से अधिक सहायता भी करती है। निर्मला के मायके में कृष्ण के विवाह के बाद सुधा का पुत्र मर जाता है। निर्मला के भी एक बच्ची पैदा होती है। उसे लेकर वह अपने घर लौट आती है। एक दिन सुधा की अनुपस्थिति में जब निर्मला उसके घर गयी तो डॉ. भुवन मोहन आत्मसंयम खो बैठते हैं। पता लगने पर सुधा अपने पति की ऐसी भर्त्सना करती है कि वह आत्मग्लानि के वशीभूत हो आत्महत्या कर लेता है। इस घटना के पश्चात तो निर्मला के जीवन की विषादपूर्ण कथा अपने चरम सीमा पर पहुँच जाती है।

हास्य

प्रेमचन्द ने भालचन्द और मोटेराम शास्त्री के प्रसंग द्वारा उपन्यास में हास्य की सृष्टि की है।

स्फल उपन्यास

आकस्मिक रूप से घटित होने वाली कुछ घटनाओं को छोड़कर 'निर्मला' के कथानक का विकास सीधे-सरल ढंग से होता है। प्रासंगिक कथाओं के कारण उसमें दुरूहता उत्पन्न नहीं हुई है। कथानक में कसावट है। कथा अत्यंत दृढ़ता के साथ विवृत होती हुई अपने अंतिम लक्ष्य तक पहुँच जाती है।

प्रतिज्ञा

'प्रतिज्ञा' उपन्यास विषम परिस्थितियों में घुट-घुट कर जी रही भारतीय नारी की विवशताओं और नियति का सजीव चित्रण है। प्रतिज्ञा का नायक विधुर अमृतराय

किसी विधवा से शादी करना चाहता है ताकि किसी नवयौवना का जीवन नष्ट न हो। ..। नायिका पूर्णा आश्रयहीन विधवा है। समाज के भूखे भेड़िये उसके संचय को तोड़ना चाहते हैं। उपन्यास में प्रेमचंद ने विधवा समस्या को नए रूप में प्रस्तुत किया है एवं विकल्प भी सुझाया है। इसी पुस्तक में प्रेमचंद की अंतिम और अपूर्ण उपन्यास मंगलसूत्र भी है। इसका बहुत थोड़ा अंश ही वे लिख पाए थे। यह गोदान के तुरंत बाद की कृति है जिसमें लेखक अपनी शक्तियों के चरमोत्कर्ष पर था।

कथानक

प्रेमचन्द कृत उपन्यास (प्र.1904 ई. के लगभग) 'प्रतिज्ञा' में लाला बदरीप्रसाद और देवकी, पण्डित बसंतकुमार और पूर्णा के परिवारों, विधुर अमृतराय और दाननाथ की कथा है और प्रेमचन्द्र ने विधवा नारी की समस्या उठाई है। लाला बदरीप्रसाद की एक पुत्री प्रेमा और एक पुत्र कमला प्रसाद तथा पुत्रवधू सुमित्रा हैं। अमृतराय और दाननाथ घनिष्ठ मित्र है। और प्रेमा से प्रेम करते है। प्रेमा अमृतराय की साली है। अमृतराय अमरनाथ का भाषण सुनकर प्रेमा से विवाह न कर किसी विधवा से विवाह करने की प्रतिज्ञा करते तथा अपना जीवन निस्सहाय विधवाओं की सहायता के लिए अर्पित कर देते हैं। प्रेमा का पिता उसका विवाह दाननाथ के साथ कर देता है, यद्यपि प्रेमा और अमृतराय एक-दूसरे को अपने-अपने हृदय में स्थान दिये रहते हैं। प्रेमा पत्नी के रूप में अपने कर्त्तव्य-पथ से विचलित न होकर पतिव्रत धर्म का पालन करती है। गंगा में डूब जाने के कारण बसंतकुमार की मृत्यु हो जाने के उपरांत उसकी पत्नी पूर्णा प्रेमा के पिता लाला बदरीप्रसाद के यहाँ आकर रहने लगती है, किंतु कृपण और दुराचारी तथा विलासी कमलाप्रसाद अपनी पत्नी सुमित्रा से उदासीन रहने के कारण अब पूर्णा को अपने प्रेमजाल में फाँसने की चेष्टा में रत रहता है और साथ ही अमृतराय की नारी-सहायता सम्बन्धी योजनाओं का विरोध करता है। दाननाथ भी अपने मित्र का विरोध करता है-अपने प्रति प्रेमा के प्रेम की परीक्षा करने के लिए। प्रेमा यद्यपि अपने पतिव्रत में कोई अंतर नहीं आने देती किंतु उसकी सहानुभूति पूर्णतः अमृतराय की सहायता भी करती है। उधर एक दिन कमलाप्रसाद पूर्णा को अपने बाग में ले जाकर बलात्कार करने की चेष्टा करने में उसके द्वारा घायल होता है। पूर्णा अमृतराय के आश्रम में चली जाती है। कमलाप्रसाद सुधरकर अपना दुराचरण छोड़ देता है और सुमित्रा के साथ सुखपूर्वक रहने लगता है। अमृतराय ने आश्रम के लिए जीवन अर्पित कर अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण की।

सारांश

बनारस में अमृतराय नामक सज्जन रहते हैं। वे पेशे से वकील हैं पर उन्हें वकालत से ज्यादा समाज –सेवा ही पसंद है, दाननाद उन्के मित्र हैं। अमृतराय का विवाह शहर के जाने माने रईस लाला बदरी प्रसाद की प्रथम पुत्री से होता है पर प्रसव –काल में ही उसकी और बच्चे की भी मौत हो जाती है। अमृतराय दो साल देशाटन करके वापस लौटते हैं तो लालाजी की दूसरी कन्या प्रेमा सयानी बन कर दिखायी देती है। प्रेमा के परिचय से अमृतराय अपनी वेदना भूल जाते हैं और दोनों का परस्पर प्रेम होता है। लालाजी तो प्रेमा का विवह अमृतराय के दोस्त दाननाद से करना चाहते थे, पर अमृतराय से प्रमा का लगाँव देखकर अपना निर्णय बदलते हैं। अमृतराय और प्रेमा का विवह होनेवाला ही है, पर एक घटना से सब कुछ बदल जाता है।

अमृतराय आर्य –मंदिर में एक व्याख्यान सुनकर प्रतिज्ञा करते हैं की वे एक विधवा से ही शादी करेंगे। इस प्रतिज्ञा से लालाजी नाराज हो जाते हैं कि यह संप्रदाय के खिलाफ है। पर प्रेमा उसके निर्ण्य का स्वगत करती है और उस से अपना प्रेम त्याग देते है। अब दाननाद से फिर प्रेमा का विवाह तय होता है, दाननाद तो संकोच करते हैं कि मित्र से प्रेम करनेवाली युवती इस विवाह के लिए तैयार नहीं होगी। पर अमृतराय के कारण दाननाद विवाह के लिए 'हाँ ' कहते हैं। दाननाद और प्रेमा का विवाह हो जाता है।

लाला बदरीप्रसाद के पड़ोस वसन्तकुमार प्रवाह के बीच में जाकर डूब जाते हैं, इसलिए पूर्ण विधवा बन जाती है। उसका अपना कोई नही है। अत: लालाजी अपने घर में उसे आश्रय देखर उसकी रक्षा करते हैं। लालाजी का पुत्र कमलाप्रसाद दुराचारी और लम्पट है। पूर्णा के सौंदर्य से वह चकित हो जाता है और गलत नीति अपनाकर उसे पाने का प्रयास करते रहता है। वह जाल बिछाकर पूर्णा को फँसाना चाहता है और कई झूठी बातें कहकर उसका मन जीतने की कोशिश करता है। सुमित्रा, जो उसकी पत्नी है–पूर्णा को धैर्य देती है और अन्याय के खिलाफ की प्रेरणा देती है। दाननाद प्रेमा को पाकर संतुष्ट नहीं शंकालु बन जाते हैं। उन्हें शक है कि प्रेमा अभी अमृतराय के प्रेम से बाहर नहीं आयी। वे कमलाप्रसाद की दोस्ती से अमृतराय के खिलाफ जाने लगते हैं और उनकी निन्दा भी करने लगते हैं। अमृतराय अपनी जमीन–जायदाद बेचकर ' वनीता–भवन' का निर्माण करते हैं जो विद्यवाओं और अनाथ बालिकाओं का शरणालय है, उसके

संचालन के लिए अमृतराय चन्दा वसूल करना चाहते हैं तो कमलाप्रसाद और दाननाद इसकी भी आलोचना करते हैं। एक कार्यक्रम में कमलाप्रसाद के भेजे गये गुण्डे लोग अमृतराय पर आक्रमण करते हैं। पर प्रेमा बीच में आकर उन्हें रोकती है। उसके भाषण से चन्दा –वसूली कार्यक्रम सफल हो जाता है। पर इससे दाननाद और प्रेमा के बीच दूरियाँ बढ़ जाती है।

एक दिन बहान बनाकर कमलाप्रसाद पूर्णा को शहर से दूर अपने बगीचे में ले चलता हैं। वहाँ पूर्णा पर बलात्कार करने की कोशिश करता है, तो पूर्णा उस्के चेहरे पर कुर्सी दे-मारकर भाग जाती है, कमलाप्रसाद बुरी तरह चोट खाकर गिर पड़ता है। पूर्णा भागकर अमृतराय की शरण में जाती है और वनिता भवन में आश्रय पाती है। पूर्णा के कारण कमलाप्रसाद की जगहं साई होती है और वह पूरी तरह बदल जाता है। इधर दाननाद भी अपने किए पर पूछताच है कि कमलाप्रसाद जैसे दुष्ट की बातों में आकर वे अमृतराय का विरोध करते आये। वे अमृतराय से क्षमा मांगते हैं और अमृतराय तो सांर्दय हैं, वे भी मित्रता का हाथ आगे बढ़ाते हैं। दोनों मित्रों के पुनर्मिलन से प्रेमा बहुत खुश होती है और दाननाद को पूरे दिल के साथ अपनाती है।

वनिता-भवन में जाकर पूर्णा मानसिक शान्ति का अनुभव करती है। वह भवन विधवाओं का आश्रम ही नहीं, उनका प्रशिक्षणाय भी है, वहाँ विधवाओं की बनी चीजों की बिक्री होती है और इससे उन्हें स्वावलम्बन का अनुभव भी होता है। जब दाननाद अपने मित्र को प्रतिज्ञा की याद दिलाते हैं तब अमृतराय वनिता भवन की ओर दिखाकर सूचना देते है कि अब उसका निर्वाह करने में ही प्रतिज्ञा पूरी होगी। दाननाद जानते हैं कि अब अमृतराय आजीवन अविवाहित रहकर समाज सेवा करेगें।

मंगलसूत्र

प्रेमचंद द्वारा लिखित 'मंगलसूत्र' उपन्यास उनका अपूर्ण उपन्यास है। 1936 ई. में अपने अंतिम दिनों में प्रेमचंद 'मंगलसूत्र' उपन्यास लिख रहे थे किंतु वे उसे पूर्ण न कर सके। इस उपन्यास का अंतिम रूप क्या होता, यह तो कहना कठिन है तो भी ऐसी प्रतीत होता है कि वे इसकी रचना आत्मकथात्मक रूप में करना चाहते थे।

कथानक

'मंगलसूत्र' में एक साहित्यिक के जीवन की समस्य बतायी गयी है। इसी दृष्टि से यह उपन्यास प्रेमचंद्र के अन्य उपन्यासों से भिन्न है। इसके चार अध्यायों में देव साहित्य-साधना में अपना जीवन व्यतीत करते हैं। उन्हें कुछ व्यसन भी लगे हुए हैं। इन दोनों कारणों से उनका भौतिक जीवन तो सुखी नहीं होता। हाँ, उन्हें ख्याति अवश्य प्राप्त होती है। उनके दो पुत्र, वकील संतकुमार और मधुकुमार हैं। ज्येष्ठ पुत्र संतकुमार जीवन में सुख और ऐश्वर्य चाहता है और पिता की जीवनदर्शन का समर्थन नहीं करता। छोटा पुत्र उनके विचारों और आर्दशों से सहमत है। वह भी पिता की भाँति आदर्शवादी है। प्रेमचंद्र ने देवकुमार को जीवन के संघर्षों के फलस्वरूप स्वनिर्धारित आदर्श से विचलित होता हुआ सा चित्रित किया है। भविष्य में क्या होता, इसका अनुमान मात्र प्रेमचंद्र की पिछली कृतियों के आधार पर किया जा सकता है। देवकुमार की एक पुत्री पंकजा भी है, जिसका विवाह हो जाता है।

प्रेमाश्रम

'प्रेमाश्रम', जिसका प्रकाशन 1922 ई. में हुआ था, मुंशी प्रेमचन्द का सर्वप्रथम उपन्यास है, जिसमें उन्होंने नागरिक जीवन और ग्रामीण जीवन का सम्पर्क स्थापित किया है और राजनीतिक क्षेत्र में पदार्पण करते हैं। परिवारों की कथा का मोह तो वे इस उपन्यास में भी नहीं छोड़ सके, क्योंकि प्रभाशंकर रायकमलानन्द गायत्री और डिप्टी ज्वालासिंह के परिवारों की कथा से ही उपन्यास का ताना-बाना बना गया है, तो भी वे जीवन के व्यापक क्षेत्र में आते हैं। भारतीय स्वतंत्रता संग्राम की प्रथम झाँकी और भागनागत राम-राज्य की स्थापना का स्वप्न 'प्रेमाश्रम' की अपनी विशेषता है। उसका उद्देश्य है—साम्य सिद्धांत। प्रेमशंकर द्वारा हाजीपुर में स्थापित प्रेमाश्रम में जीवन-मरण के गूढ़ जटिल प्रश्नों की मीमांसा होती थी। सभी लोग पक्षपात और अहंकार से मुक्त थे। आश्रम सारल्य, संतोष और सुविचार की तपोभूमि बन गया था वहाँ न धन की पूजा होती थी और न दीनता पैरों तले कुचली जाती थी। आश्रम में सब एक-दूसरे के मित्र और हितैषी थे। मानव-कल्याण उनका चरम लक्ष्य था। उसका व्यावहारिक रूप हमें उपन्यास के 'उपसंहार' शीर्षक अंश में मिलता है। लखनपुर गाँव में स्वार्थ-सेवा और माया का प्रभाव नहीं रह गया। वहाँ अब मनुष्य की मनुष्य के रूप में प्रतिष्ठा हुई है-ऐसे मनुष्य की जिसके जीवन में सुख, शांति, आनन्द और आत्मोल्लास है।

कथानक

'प्रेमाश्रम' की कथा का सूत्रपात बनारस से बारह मील दूर लखनपुर गाँव से होता है। जमींदार ज्ञानशंकर की ओर से शुद्ध घी के लिए बयाना बँटना है। केवल मनोहर नहीं लेता। मनोहर की घृष्टता जमींदार और उसके कारिन्दा गौस खाँ के लिए असह्य थी। ज्ञानशंकर तो उससे बहुत नाराज होते हैं और इस मामले को लेकर अपने चाचा प्रभाशंकर तक से बिगड़ जाते हैं। प्रभाशंकर पुराने रईस हैं, बनारस के औरंगाबाद मुहल्ले में रहते हैं और अपने असामियों के प्रति भी वात्सल्य भाव रखते हैं। उनके भाई जटाशंकर के पुत्र ज्ञानशंकर को उनकी यह उदारता पसन्द नहीं। अपने चाचा की नीति से प्रसन्न न होने के कारण वे प्रभाशंकर के दारोगा पुत्र दयाशंकर पर चल रहे अभियोग में जरा भी सहायता करने के लिए प्रस्तुत नहीं हैं किंतु उनके मित्र डिप्टी ज्वालासिंह ने दयाशंकर को छोड़ दिया। नौबत यहाँ तक पहुँची कि ज्ञानशंकर ने परिवार में बँटवारा करा लिया। डिप्टी ज्वालासिंह न्यायशील और दयालु व्यक्ति थे। कर्तव्य-पालन की ओर उनका सदैव ध्यान रहता था। वे गाँव के दौरे में बेगारी बंद करा देने की आज्ञा देते हैं और मनोहर के पुत्र बलराज की निर्भीकता से प्रसन्न होते हैं। ज्ञानशंकर अत्यन्त स्वार्थ-प्रिय और धनलोलुप है। जब अपने ससुर राय कमलानंद (लखनऊ) के पुत्र की मृत्यु के समय वे अपनी पत्नी विद्या (राय कमलानंद की छोटी पुत्री) के साथ लखनऊ पहुँचते हैं तो उनकी निगाह अपनी विधवा साली गायत्री पर और उसके धन-सम्पत्ति पर भी पड़ती है।

राय कमलानंद बड़े ही रसिक और अनुभवी व्यक्ति हैं। वे ज्ञानशंकर नीयत तुरंत ताड़ जाते हैं। वे यह भी समझ जाते है कि ज्ञानशंकर की दृष्टि गायत्री और उसकी धन-सम्पत्ति पर ही नहीं, उनकी अपनी धन-सम्पत्ति पर भी है। सरल-हृदया गायत्री ज्ञानशंकर के पंजे में धीरे-धीरे फँसती जाती है। वे अपने उद्देश्य की पूर्ति में सतत प्रयत्नशील रहते हैं। उधर गाँव में आये दिन कोई-न-कोई अत्याचार होता रहता है। ज्ञानशंकर के भाई प्रेमशंकर भी अमेरिका से लौट आते हैं। वे नवीन आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक विचारों से अनुप्राणित होकर घर वापिस आये हैं। ज्ञानशंकर को उनके वापिस आने से हार्दिक प्रसन्नता न हुई। प्रेमशंकर के विदेश-गमन के फलस्वरुप उनके जाति-बहिष्कार या प्रायश्चित की समस्या भी उठती है। यहाँ तक कि प्रेमशंकर निर्भीक होकर अपने मार्ग का निर्माण स्वयं करते हैं। वे सब प्रकार का आर्थिक

लोभ छोड़कर जन-सेवा का मार्ग ग्रहण करते और हाजीपुर में अपना आश्रम स्थापित करते हैं। ज्ञानशंकर को अपने भाई का साम्य-सिद्धांत बिल्कुल पसन्द नहीं। प्रेमशंकर ने जब पैतृक सम्पत्ति में अपने अधिकार को तिलांजलि दे दी तो ज्ञानशंकर को अत्यंत प्रसन्नता हुई। वे अब गायत्री के यहाँ गोरखपुर आने-जाने गले और अपनी बुद्धि, व्यावहारिकता, प्रबन्ध-पटुता और कार्य-कुशलता के फलस्वरूप उस पर पूर्ण रूप से हावी ही नहीं हो गये, वरन उसकी धार्मिकता का अनुचित लाभ उठाते हुए 'राधा-कृष्णभाव' की भक्ति का भी आनन्द उठाने लगे।

इसी समय विलासी का अपमान करने के कारण मनोहर ने साथ जाकर बलराज द्वारा गौस खाँ कारिन्दा की हत्या करा दी, जिसके फलस्वरुप सारा गाँव विपत्ति में पड़ गया। गाँववालों पर मुकदमा चला। प्रेमशंकर और डिप्टी ज्वालासिंह उनकी आर्थिक और कानूनी सहायता के लिए कटिबद्ध हो गये। ज्ञानशंकर को यह बात बिल्कुल अच्छी न लगी। उधर राय कमलानन्द ज्ञानशंकर की 'भक्ति' के जाल से गायत्री को बचाना चाहते थे। ज्ञानशंकर ने उन्हें विष देकर मार डालना चाहा किंतु राय कमलानन्द अपने योग-बल द्वारा विष को पचा गये। राय कमलानन्द अपने को चेतावनी देनी चाही। यद्यपि विद्या को अपने पति की स्वार्थपरता एवं क्षुद्रता बिल्कुल न सुहाती थी तो भी उसे पति के नैतिक चरित्र के सम्बन्ध में अभी तक कोई सन्देह न था। इसलिए राय कमलानन्द की चेतावनी उसे अच्छी न लगी किंतु बनारस आकर जब उसने ज्ञानशंकर और गायत्री का 'भक्ति-सम्बन्ध' देखा तो आँखें खुल गयी। गायत्री को तो इससे आत्मग्लानि हुई ही, विद्या को भी अत्यधिक मानसिक क्लेश हुआ। जब ज्ञानशंकर ने मायाशंकर को गायत्री की गोद देना चाहा तब तो उसने अपने हाथों इहलीला ही समाप्त कर दी। विद्या की मृत्यु ने गायत्री के सामने सारी परिस्थिति स्पष्ट कर दी। वह ज्ञानशंकर की बदनीयती और क्रूरता से ही अवगत न हुई वरन विद्या के रक्त से अपने ही हाथ साँप कर तीर्थाटन के लिए चली जाती है। वह बदरीनारायण जाना चाहती थी, किंतु चित्रकूट में एक महात्मा की (जो वास्तव में राय कमलानन्द थे) चर्चा सुनकर वह उधर ही चल पड़ी। वह अपने मानसिक संघर्ष को लिये जब पहाड़ी पर चढ़ने की चेष्टा कर रही थी, उस समय पैर फिसल जाने के कारण पर्वत के गहन गर्त में गिरकर मृत्यु को प्राप्त हो गयी। प्रेमशंकर और डिप्टी ज्वालासिंह ने इरफान अली वकील, और डॉ. प्रियनाथ चोपड़ा की सहायता से गाँव वालों की रक्षा

की, यद्यपि मनोहर ने जेल ही में आत्माहत्या कर ली थी। इतना ही, नहीं, इरफान अली और डा. प्रियनाथ चोपड़ा जैसे आत्म-सेवियों के हृदय में प्रेमशंकर अपने स्नेह और त्याग से परिवर्तन उपस्थित कर देते हैं। इजाद हुसेन भी, जो पहले हिन्दू-मुस्लिम इत्तिहाद के बहाने अपना ही स्वार्थ साधते थे, प्रेमशंकर के व्यक्तित्त्व से प्रभावित हो सच्चाई और ईमान का मार्ग ग्रहण करते हैं। श्रद्धा, जो अपनी जड़ और मिथ्या धार्मिकता के कारण अपने पति से कटी-कटी रहती है, अब उनकी सेवा त्याग, संयम, साधना, परोपकार-व्यस्तता आदि को प्रायश्चित का असली रूप समझ कर पति के चरणों की सच्ची उपासिका बन सचमुच श्रद्धा और अनुराग की देवी बन जाती है।

प्रभाशंकर का पुत्र दयाशंकर वैराग्य धारण कर लेता है। उनके दो अन्य पुत्र तेजशंकर और पद्मशंकर आसानी से समृद्ध हो जाने की आकांक्षा से प्रेरित हो भैरव-मंत्र जगाने के प्रयत्न में अपना-अपना अंत कर डालने हैं। मिथ्या विश्वास और कुशिक्षा ने दो जीवन-पुष्पों को अपने पैरों तले कुचल दिया। मायाशंकर प्रारम्भ से ही संतोष और त्याग की भावना लिए हुए था। प्रेमशंकर के संरक्षण में रहने के कारण उसके ये संस्कार और भी दृढ़ हो गये। अपने तिलकोत्सव के समय उसने जो भाषण दिया, उसमें दीनों के कल्याण, कर्त्तव्य-पालन, न्याय, धर्म, दुर्बलों के आँसुओं की ओर ही अधिक ध्यान दिया गया था। उसने जमींदारी-उन्मूलन और सहकारिता के भाव व्यक्त किये थे। ज्ञानशंकर ने अपने जीवन भर की आशाओं पर पानी फिरते देख गंगा में डूबकर आत्महत्या कर ली।

अंत में प्रेमाश्रम के सदस्यों के साथ प्रेमशंकर और मायाशंकर दीनों की रक्षा और उनके जीवन को सुखमय बनाने में दत्तचित्त रहते हैं। राजसभा के सदस्यों के रूप में भी वे जन-सेवा की भावना से ही प्रेरित होते हैं। गाँव में रामराज्य की स्थापना कर वे दिव्य आनन्द का अनुभव करते हैं। विविध सुधारों, सफाई, शिक्षा, अच्छी कृषि के लिए अच्छे बीज की व्यवस्था की जाती है। वे प्रजा के ट्रस्टी बन जाते हैं।

4

रांगेय राघव

रांगेय राघव जन्म: 17 जनवरी, 1923, मृत्यु: 12 सितंबर, 1962) असाधारण प्रतिभा के धनी रचनाकार थे। हिन्दी के विशिष्ट और बहुमुखी प्रतिभावालों में से एक थे। इनका मूल नाम टी.एन.बी.आचार्य (ति:मल्लै नंबकम् वीरराघव आचार्य) था। हिन्दी साहित्य का सभंवत: ऐसा कोई अंग नहीं है, जहाँ हिन्दी साहित्य के साधक डॉ. रांगेय राघव ने अपनी साधना का प्रयोग न किया हो। ये गौर वर्ण, उन्नत ललाट, लम्बी नासिका और चेहरे पर गंभीरतामयी मुस्कान बिखेरे हुए हिन्दी साहित्य के अनन्य उपासक थे। वे रामानुजाचार्य परम्परा के तमिल देशीय आयंगर ब्राह्मण थे।

जीवन परिचय

रांगेय राघव का जन्म 17 जनवरी, 1923 ई. में आगरा में हुआ था। पिता श्री रंगाचार्य के पूर्वज लगभग तीन सौ वर्ष पहले जयपुर और फिर भरतपुर के बयाना कस्बे में आकर रहने लगे थे। रांगेय राघव का जन्म हिन्दी प्रदेश में हुआ। उन्हें तमिल और कन्नड़ भाषा का भी ज्ञान था। रांगेय की शिक्षा आगरा में हुई थी। 'सेंट जॉन्स कॉलेज' से 1944 में स्नातकोत्तर और 1949 में 'आगरा विश्वविद्यालय' से गुरु गोरखनाथ पर शोध करके उन्होंने पी.एच.डी. की थी। रांगेय राघव का हिन्दी, अंग्रेजी, ब्रज और संस्कृत पर असाधारण अधिकार था।

कार्यक्षेत्र

13 वर्ष की आयु में लिखना शुरू किया। 1942 में अकालग्रस्त बंगाल की यात्रा के बाद एक रिपोर्ताज लिखा–तूफानों के बीच। यह रिपोर्ताज हिंदी में चर्चा का विषय बना। साहित्य के अतिरिक्त चित्रकला, संगीत और पुरातत्त्व में विशेष रुचि। मात्र 39 वर्ष की आयु में कविता, कहानी, उपन्यास, नाटक, रिपोर्ताज के अतिरिक्त आलोचना, संस्कृति और सभ्यता पर कुल मिलाकर 150 से अधिक पुस्तकें लिखीं। रांगेय राघव के कहानी-लेखन का मुख्य दौर भारतीय इतिहास की दृष्टि से बहुत हलचल-भरा विरल कालखंड है। कम मौकों पर भारतीय जनता ने इतने स्वप्न और दु:स्वप्न एक साथ देखे थे। आशा और हताशा ऐसे अड़ोस-पड़ोस में खड़ी देखी थी। रांगेय राघव की कहानियों की विशेषता यह है कि इस पूरे समय की शायद ही कोई घटना हो जिसकी गूँजें-अनुगूँजे उनमें न सुनी जा सकें। सच तो यह है कि रांगेय राघव ने हिंदी कहानी को भारतीय समाज के उन धूल-काँटों भरे रास्तों, आवारे-लफंडरों-परजीवियों की फक्कड़ जिंदगी, भारतीय गाँवों की कच्ची और कीचड़-भरी पगडंडियों की गश्त करवाई, जिनसे वह भले ही अब तक पूर्णत: अपरिचित न रही हो पर इस तरह हिली-मिली भी नहीं थी और इन 'दुनियाओं' में से जीवन से लबलबाते ऐसे-ऐसे कद्दावर चरित्र प्रकट किए जिन्हें हम विस्मृत नहीं कर सकेंगे। 'गदल' भी एक ऐसा ही चरित्र है।

सृजन-यात्रा

अपनी सृजन-यात्रा के बारे में रांगेय राघव ने स्वयं कोई खास ब्योरा नहीं छोड़ा है। खासकर अपने प्रारंभिक रचनाकाल के बारे में, लेकिन एक जगह उन्होंने लिखा है, ''चित्रकला का अभ्यास कुछ छूट गया था। 1938 ई. की बात है, तब ही मैंने कविता लिखना शुरू किया। सांध्या-भ्रमण का व्यसन था। एक दिन रंगीन आकाश को देखकर कुछ लिखा था। वह सब खो गया है और तब से संकोच से मन ने स्वीकार किया कि मैं कविता कर सकता हूँ। 'प्रेरणा कैसे हुई' पृष्ठ लिखना अत्यंत दुरुह है। इतना ही कह सकता हूँ कि चित्रों से ही कविता प्रारंभ हुई थी और एक प्रकार की बेचैनी उसके मूल में थी। अपनी प्रसिद्ध पुस्तक प्राचीन ब्राह्मण कहानियाँ की प्रस्तावना में रांगेय राघव लिखते हैं कि 'आर्य परम्पराओं का अनेक अनार्य परम्परओं से मिलन हुआ है। भारत की पुरातन

कहानियों में हमें अनेक परम्परओं के प्रभाव मिलते हैं। महाभारत के युद्ध के बाद हिन्दू धर्म में वैष्णव और शिव चिन्तन की धारा वही और इन दोनों सम्प्रदयों ने पुरातन ब्राह्मण परम्पराओं को अपनी अपनी तरह स्वीकार किया। इसी कारण से वेद और उपनिषद में वर्णित पौराणिक चरित्रों के वर्णन में बदलाव देखने को मिलता है। और बाद के लेखन में हमें अधिक मानवीय भावों की छाया देखने को मिलती है। मैं ये महसूस करता हूँ कि मेरे से पहले के लेखकों ने अपने विश्वास और धारणाओं के आलोक में मुख्य पात्रो का वर्णन किया है और ऊँचे मानवीय आदर्श खड़े किये हैं और अपने पात्रों को साम्प्रदायिकता से बचाये रखा है इसलिये मैंने पुरातन भारतीय चिन्तन को पाठकों तक पहुँचाने का प्रयास किया है।' उनके बारे में कहा जाता था कि वो दोनो हाथों से रात दिन लिखते थे और उनके लिखे ढेर को देखकर समकालीन ये भी कयास लगाते थे कि शायद वो तन्त्र सिद्ध है नहीं तो इतने कम समय में कोई भी इतना ज्यादा और इतना बढ़िया कैसे लिख सकता है। उन्हें हिन्दी का पहला मसिजीवी कलमकार भी कहा जाता है जिनकी जीविका का साधन सिर्फ लेखन था।

हिंदी के शेक्सपीयर

शायद बहुत कम लोग यह जानते होंगे कि हिन्दी साहित्य का यह अनूठा व्यक्तित्व वस्तुतः तमिल भाषी था, जिसने हिन्दी साहित्य और भाषा की सेवा करके अपने अलौकिक प्रतिभा से हिन्दी के 'शेक्सपीयर' की संज्ञा ग्रहण की। रांगेय राघव नाम के पीछे उनके व्यक्तित्त्व और साहित्य में दृष्टिगत होने वाली समन्वय की भावना परिलक्षित होती है। अपने पिता रंगाचार्य के नाम से उन्होंने रांगेय स्वीकार किया और अपने स्वयं के नाम राघवाचार्य से राघव शब्द लेकर अपना नाम रांगेय राघव रख लिया। उनके साहित्य में जैसे सादगी परिलक्षित होती है वैसे ही उनका जीवन सीधा-सधा और सादगीपूर्ण रहा है।

साहित्य की साधना

भरतपुर जिले में एक तहसील है वैर। शहर के कोलाहल से दूर प्राकृतिक वातावरण, ग्रामीण सादगी और संस्कृति तथा वहाँ के वातावरण की अद्भुत शक्ति ने रांगेय राघव को साहित्य की साधना में इस सीमा तक प्रयुक्त किया कि वह उस छोटी सी नगरी वैर में ही बस गये। वैर भरतपुर के जाट राजाओं के एक छोटे से किले के कारण तो प्रसिद्ध है ही, परन्तु वहाँ तमिलनाडु के स्वामी

रंगाचार्य का दक्षिण शैली का सीतारामजी का मंदिर भी बहुत प्रसिद्ध है। इस मंदिर के महंत डॉ. रांगेय राघव के बड़े भाई रहे हैं। मंदिर की शाला में बिल्कुल तपस्वी जैसा जीवन व्यतीत करने वाले तमिल भाषी व्यक्ति ने हिन्दी साहित्य की देवी की पुजारी की तरह आराधना-अर्चना की। नारियल की जटाओं के गद्दे पर लेटे-लेटे और अपने पैर के अँगूठे में छत पर टंगे पंखे की डोरी को बाँधकर हिलाते हुए वह घंटों तक साहित्य की विभिन्न विधाओं और अयामों के बारे में सोचते रहते थे। जब डॉ. रांगेय राघव सोचते तो सोचते ही रहते थे –कई दिनों तक न वह कुछ लिखते और न पढ़ते। और जब उन्हें पढ़ने की धुन सवार होती तो वह लगातार कई दिनों तक पढ़ते ही रहते। सोचने और पढ़ने के बाद जब कभी उनका मूड बनता तो वह लिखने बैठ जाते और निरन्तर लिखते ही रहते। लिखने की उनकी कला अद्‌भुत थी। एक बार तो लिखने बैठे तो वह उस रचना को समाप्त करके ही छोड़ते थे। इसी कारण जितनी कृतियाँ उन्होंने लिखीं वह सब पूरी की पूरी लिखी गईं। उनका अंतिम उपन्यास 'आखिरी आवाज' कुछ अर्थों में इस कारण अधूरा रह गया कि वह कई महीनों तक मौत से जूझते रहे। काश ऐसा होता कि वह मौत से जूझने के बाद जीवित रहे होते तो शायद एक और उपन्यास मौत के संघर्ष के बारे में हिन्दी साहित्य को मिल गया होता।

जानपील सिगरेट

सिगरेट पीने का उन्हें बेहद शौक था। वह सिगरेट पीते तो केवल जानपील ही, दूसरी सिगरेट को वह हाथ तक नहीं लगाते थे। एक दर्जन सिगरेट की डिब्बी उनकी लिखने की मेज पर रखी रहती थीं और ऐश-ट्रे के नाम पर रखा गया चीनी का प्याला दिन में तीन-चार बार साफ करना पड़ता। उनका कमरा था कि सिगरेट की गंध और धुएँ से भरा रहता था। किसी भी आँगन्तुक ने आकर उनके कमरे का दरवाजा खोला तो सिगरेट का एक भभका उसे लगता, परन्तु हिन्दी साहित्य के इस साधक के लिये सिगरेट पीना एक आवश्यकता बन गई थी। बिना सिगरेट पिये वह कुछ भी कर सकने में असमर्थ थे। परन्तु शायद सिगरेट पीने की यह आदत ही उनकी मृत्यु का कारण बनी, जिसने 1962 में हिन्दी के इस अनुपम योद्धा को हमसे हमेशा के लिये छीन लिया।

शेक्सपीयर के नाटकों का अनुवाद

विदेशी साहित्य को हिन्दी भाषा के माध्यम से हिन्दी भाषी जनता तक पहुँचाने का महान् कार्य डॉ. रांगेय राघव ने किया। अंग्रेजी भाषा के माध्यम से

कुछ फ्रांसिसी और जर्मन साहित्यकारों का अध्ययन करने के पश्चात् उनके बारे में हिन्दी जगत् को अवगत कराने का कार्य उन्होंने किया। विश्व प्रसिद्ध अंग्रेजी नाटककार शेक्सपीयर को तो उन्होंने पूरी तरह हिन्दी में उतार ही दिया। शेक्सपीयर की अनेक रचनाओं को हिन्दी में अनुवादित करके हिन्दी जगत् को विश्व की महान् कृतियों से धनी बनाया। शेक्सपीयर को दुखांत नाटकों में हेमलेट, ओथेलो और मैकबेथ को तो जिस खूबी से डॉ.–रांगेय राघव ने हिन्दी के पांडाल में उतारा वह उनके जीवन की विशेष उपलब्धियों में गिनी जाती है। उनके अनुवाद की यह विशेषता थीं कि वह अनुवाद न लगकर मूल रचना ही प्रतीत होती है। शेक्सपीयर की लब्ध प्रतिष्ठित कृतियों को हिन्दी में प्रस्तुत कर उनकी भावनाओं के अनुरूप शेक्सपीयर को हिन्दी साहित्य में प्रकट करने का श्रेय डॉ. रांगेय राघव को ही जाता है और इसी कारण वह हिन्दी के शेक्सपीयर कहे जाते हैं।

जीवनी प्रधान उपन्यास

डॉ. रांगेय राघव जी ने 1950 ई. के पश्चात् कई जीवनी प्रधान उपन्यास लिखे हैं, इनका पहला उपन्यास सन् 1951–1953 ई. के बीच प्रकाशित हुआ।

भारती का सपूत जो भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की जीवनी पर आधारित है।
लखिमा की आंखें जो विद्यापति के जीवन पर आधारित है।
मेरी भव बाधा हरो जो बिहारी के जीवन पर आधारित है।
रत्ना की बात जो तुलसी के जीवन पर आधारित है।
लोई का ताना जो कबीर–जीवन पर आधारित है।
धूनी का धुंआं जो गोरखनाथ के जीवन पर कृति है।
यशोधरा जीत गई जो गौतम बुद्ध पर लिखा गया है।
देवकी का बेटा जो कृष्ण के जीवन पर आधारित है।

लेखकों का दृष्टिकोण

प्रसिद्ध लेखक राजेंद्र यादव ने कहा है –''उनकी लेखकीय प्रतिभा का ही कमाल था कि सुबह यदि वे आद्यैतिहासिक विषय पर लिख रहे होते थे तो शाम को आप उन्हें उसी प्रवाह से आधुनिक इतिहास पर टिप्पणी लिखते देख सकते थे।"

दिल्ली विश्वविद्यालय में प्राध्यापक विभास चन्द्र वर्मा ने कहा कि आगरा के तीन 'र' का हिंदी साहित्य में महत्वपूर्ण योगदान है और ये हैं रांगेय राघव,

रामविलास शर्मा और राजेंद्र यादव। वर्मा ने कहा कि रांगेय राघव हिंदी के बेहद लिक्खाड़ लेखकों में शुमार रहे हैं। उन्होंने करीब करीब हर विधा पर अपनी कलम चलाई और वह भी बेहद तीक्ष्ण दृष्टि के साथ। उनकी रचनाओं में स्त्री पात्र अत्यंत मजबूत होती थीं और लगभग पूरा कथानक उनके इर्द-गिर्द घूमता था। सिंधु घाटी सभ्यता के एक प्रमुख केंद्र मोहन-जो-दड़ो पर आधारित उनका काल्पनिक उपन्यास 'मुर्दो का टीला' से लेकर कहानी तक में स्त्री पात्र कथा संसार की धुरी होती थी। साथ ही स्त्री के चिंतन विश्व को दर्शाती उनकी कृतियां 'रत्ना की बात', 'लोई का ताना और लखिमा की आंखें' बेमिसाल हैं जो क्रमशः तुलसी की पत्नी, कबीर की प्रेरणा और विद्यापित की प्रेमिका की दृष्टि से पेश विश्व-दर्शन है।

रचनाएँ

रांगेय राघव हिन्दी के प्रगतिशील विचारों के लेखक थे, किन्तु मार्क्स के दर्शन को उन्होंने संशोधित रूप में ही स्वीकार किया। उन्होंने अल्प समय में ही कितने साहित्य का सृजन किया, इसका अनुमान इस विवरण से लगाया जा सकता है। उनके प्रकाशित ग्रन्थों में 42 उपन्यास, 11 कहानी, 12 आलोचनात्मक ग्रन्थ, 8 काव्य, 4 इतिहास, 6 समाजशास्त्र विषयक, 5 नाटक और लगभग 50 अनूदित पुस्तकें हैं। ये सब रचनाएँ उनके जीवन काल में प्रकाशित हो चुकी थीं। 39 वर्ष की कच्ची उम्र में इनका देहान्त हुआ, लगभग 20 पुस्तकें प्रकाशन की प्रतीक्षा में थीं। यद्यपि उन्होंने कुछ अंग्रेजी ग्रन्थों के भी अनुवाद किए, किन्तु उनके अधिकांश साहित्य का परिवेश भारतीय संस्कृति और ऐतिहासिक जीवन ही रहा है।

रांगेय राघव की कृतियाँ

उपन्यास

घरौंदा
विषाद मठ
मुरदों का टीला
सीधा साधा रास्ता
हुजूर

चीवर
प्रतिदान
अँधेरे के जुगनू
काका
उबाल
पराया
देवकी का बेटा
यशोधरा जीत गई

उपन्यास

लोई का ताना
रत्ना की बात
भारती का सपूत
आँधी की नावें
अँधेरे की भूख
बोलते खंडहर
कब तक पुकारूँ
पक्षी और आकाश
बौने और घायल फूल
लखिमा की आँखें
राई और पर्वत
बंदूक और बीन
राह न रुकी

उपन्यास

जब आवेगी काली घटा
धूनी का धुआँ
छोटी सी बात
पथ का पाप
मेरी भव बाधा हरो
धरती मेरा घर

आग की प्यास
कल्पना
प्रोफेसर
दायरे
पतझर
आखिरी आवाज

कहानी संग्रह

साम्राज्य का वैभव
देवदासी
समुद्र के फेन
अधूरी मूरत
जीवन के दाने
अंगारे न बुझे
ऐयाश मुरदे
इन्सान पैदा हुआ
पाँच गधे
एक छोड़ एक
काव्य
अजेय
खंडहर
पिघलते पत्थर
मेधावी
राह के दीपक
पांचाली
रूपछाया
नाटक
स्वर्णभूमि की यात्रा
रामानुज
विरूढ़क
रिपोर्ताज

तूफानों के बीच

आलोचना

भारतीय पुनर्जागरण की भूमिका
भारतीय संत परंपरा और समाज
संगम और संघर्ष
प्राचीन भारतीय परंपरा और इतिहास
प्रगतिशील साहित्य के मानदंड
समीक्षा और आदर्श
काव्य यथार्थ और प्रगति
काव्य कला और शास्त्र

महाकाव्य विवेचन

तुलसी का कला शिल्प
आधुनिक हिंदी कविता में प्रेम और शृंगार
आधुनिक हिंदी कविता में विषय और शैली
गोरखनाथ और उनका युग

यात्र वृत्तान्त

महायात्रा गाथा (अँधेरा रास्ता के दो खंड), महायात्र गाथा, (रैन और चंदा के दो खंड)।

भारतीय भाषाओं में अनूदित कृतियाँ

जैसा तुम चाहो, हैमलेट, वेनिस का सौदागर, ऑथेलो, निष्फल प्रेम, परिवर्तन, तिल का ताड़, तूफान, मैकबेथ, जूलियस सीजर, बारहवीं रात।

पुरस्कार

हिंदुस्तानी अकादमी पुरस्कार (1947)
डालमिया पुरस्कार (1954)
उत्तर प्रदेश शासन पुरस्कार (1957 तथा 1959)
राजस्थान साहित्य अकादमी पुरस्कार (1961)
महात्मा गाँधी पुरस्कार (1966)

रांगेय राघव की कहानी कला

राघव एक कुशल कथाकार हैं। इन्होने दर्जनों उपन्यासों और कहानियों में इनके समाज, राजनीति संस्कृति एवं विविध मानवीय पहलुओं पर विचार व्यक्त किये हैं। आपकी कहानियाँ मानवतावादी दृष्टिकोण को व्यक्त करती हैं। उनके कहानी साहित्य में सामाजिक जागरूकता व नव चेतना के दर्शन होते हैं। रांगेय राघव ने 100 से अधिक कहानियाँ लिखी हैं। जिनमें राजनीतिक, आर्थिक एवं सामाजिक शोषण का चित्रण हुआ हैं।

कहानी के विषय में उनकी धारणा है, कहानी करुणा नहीं जगाती है, बल्कि करुणा के माध्यम से विवेक जगाती हैं। वह विभत्सता जो सुन्दरता के साथ चलती है, उसका उद्देश्य अंत में जाकर पूरा हो जाता हैं। उनकी कहानियाँ पाठक को इसी विभत्सता से अवगत कराने की क्षमता प्रदान करती हैं। उनकी भाषा शैली समर्थ हैं। कुत्ते की दुम और शैतान नये टेक्निक्स जैसी प्रयोगशील कहानी भी रांगेय राघव ने लिखी हैं। नयें प्रतीकों का प्रयोग उनकी कहानियाँ की विशिष्टता हैं। गदल आँचलिक कहानियों में शीर्षस्थ कही जा सकती हैं। जिसके एक ग्रामीण स्त्री अपने परिवार व रिश्तों की खातिर पुरुष समाज से भीड़ जाती है और निर्भीकता का परिचय देती हैं।

उनकी सैंकड़ों कहानियों में इन्सान पैदा हुआ एक संवेदनशील रचना हैं। प्रस्तुत कहानी की कथानक, पात्र योजना, वातावरण चित्रण, भाषा शैली एवं उद्देश्यनिष्ठता में उत्कृष्ट हैं। इन्सान पैदा हुआ भारत के उस काल की झांकी प्रस्तुत करती है, जब भारत स्वतंत्र हुआ था। पाकिस्तान का निर्माण भी उसी समय हुआ. सन 1947 के विभाजनकालीन खौफनाक मंजर का चित्रण इसका मूल कथ्य हैं। हिन्दू मुस्लिम द्वेष, साम्प्रदायिक वृणा और विभिन्न राजनैतिक दलों के स्वार्थपूर्ण कृत्यों का घिनौना रूप इसमें बड़ी नग्नता के साथ चित्रित हो गया हैं।

रांगेय राघव की कहानियों का भाषा सौष्ठव भी प्रभावोत्पादक हैं। इनकी भाषा में तत्सम प्रधान शब्दावली, देशज शब्द एवं उर्दू अंग्रेजी शब्दों का सटीक प्रयोग हुआ हैं। धरती मेरा घर में गाढोतिया लुहारों की क्षेत्रीय भाषा प्रयुक्त हुई हैं। तो कब तक पुकारू में पूर्वी राजस्थान भरतपुर की ग्राम्यांचल भाषा प्रयुक्त हो गयी हैं। आँचलिक शब्दावली का प्रयोग इनकी कहानियों की विशेषता हैं।

संवाद शैली भी रोचक हैं। इनकी कहानियों में कहीं तो वर्णनात्मक शैली प्रयुक्त हुई है कहीं आत्म कथात्मक, प्रतीकात्मक एवं व्यंग्यात्मक शैली भी आ गयी हैं। भाषा में लाक्षणिकता एवं स्थानीय कहावतों का भी प्रयोग हो गया हैं। कब तक पुकारू की विषय वस्तु भाषा शैली एवं भरतपुर रियासत की अतीत की घटनाओं व नटों की जिन्दगी का इतनी जीवंत भाषा में चित्रण हुआ है की इस पर टीवी सीरियल बन चुका है, जो अत्यंत लोकप्रिय हुआ था। कुल मिलाकर रांगेय राघव के समग्र लेखन का कलात्मक पक्ष अत्यंत रोचक प्रभावोत्पादक एवं प्रसंगानुकूल ही नहीं तकनीक में नवीनता है। जो आगे चलकर नयें कथाकारों के लिए मार्गदर्शक सिद्ध हुआ हैं।

5

जयशंकर प्रसाद

जयशंकर प्रसाद (30 जनवरी 1889 –15 नवंबर 1937), हिन्दी कवि, नाटककार, उपन्यासकार तथा निबन्धकार थे। वे हिन्दी के छायावादी युग के चार प्रमुख स्तंभों में से एक हैं। उन्होंने हिन्दी काव्य में एक तरह से छायावाद की स्थापना की जिसके द्वारा खड़ी बोली के काव्य में न केवल कमनीय माधुर्य की रससिद्ध धारा प्रवाहित हुई, बल्कि जीवन के सूक्ष्म एवं व्यापक आयामों के चित्रण की शक्ति भी संचित हुई और कामायनी तक पहुँचकर वह काव्य प्रेरक शक्तिकाव्य के रूप में भी प्रतिष्ठित हो गया। बाद के प्रगतिशील एवं नई कविता दोनों धाराओं के प्रमुख आलोचकों ने उसकी इस शक्तिमत्ता को स्वीकृति दी। इसका एक अतिरिक्त प्रभाव यह भी हुआ कि खड़ीबोली हिन्दी काव्य की निर्विवाद सिद्ध भाषा बन गयी।

आधुनिक हिन्दी साहित्य के इतिहास में इनके कृतित्त्व का गौरव अक्षुण्ण है। वे एक युगप्रवर्तक लेखक थे जिन्होंने एक ही साथ कविता, नाटक, कहानी और उपन्यास के क्षेत्र में हिंदी को गौरवान्वित होने योग्य कृतियाँ दीं। कवि के रूप में वे निराला, पन्त, महादेवी के साथ छायावाद के प्रमुख स्तम्भ के रूप में प्रतिष्ठित हुए हैं, नाटक लेखन में भारतेन्दु के बाद वे एक अलग धारा बहाने वाले युगप्रवर्तक नाटककार रहे, जिनके नाटक आज भी पाठक न केवल चाव से पढ़ते हैं, बल्कि उनकी अर्थगर्भिता तथा रंगमंचीय प्रासंगिकता भी दिनानुदिन बढ़ती ही गयी है। इस दृष्टि से उनकी महत्ता पहचानने एवं स्थापित करने में वीरेन्द्र नारायण,

शांता गाँधी, सत्येन्द्र तनेजा एवं अब कई दृष्टियों से सबसे बढ़कर महेश आनन्द का प्रशंसनीय ऐतिहासिक योगदान रहा है। इसके अलावा कहानी और उपन्यास के क्षेत्र में भी उन्होंने कई यादगार कृतियाँ दीं। विविध रचनाओं के माध्यम से मानवीय करुणा और भारतीय मनीषा के अनेकानेक गौरवपूर्ण पक्षों का उद्‌घाटन। 48 वर्षो के छोटे से जीवन में कविता, कहानी, नाटक, उपन्यास और आलोचनात्मक निबंध आदि विभिन्न विधाओं में रचनाएँ की।

कृतियाँ

काव्य

प्रसाद की काव्य रचनाएँ दो वर्गो में विभक्त है : काव्यपथ अनुसंधान की रचनाएँ और रससिद्ध रचनाएँ। आँसू, लहर तथा कामायनी दूसरे वर्ग की रचनाएँ हैं। उन्होंने काव्यरचना ब्रजभाषा में आरम्भ की और धीर-धीरे खड़ी बोली को अपनाते हुए इस भाँति अग्रसर हुए कि खड़ी बोली के मूर्धन्य कवियों में उनकी गणना की जाने लगी और वे युगवर्तक कवि के रूप में प्रतिष्ठित हुए।

कानन कुसुम
महाराणा का महत्व
झरना(1918)
आंसू
लहर
कामायनी1935
प्रेम पथिक

उन्होंने हिंदी काव्य में छायावाद की स्थापना की जिसके द्वारा खड़ी बोली के काव्य में कमनीय माधुर्य की रससिद्ध धारा प्रवाहित हुई और वह काव्य की सिद्ध भाषा बन गई। उनकी सर्वप्रथम छायावादी रचना 'खोलो द्वार' 1914 ई. में इंदु में प्रकाशित हुई। वे छायावाद के प्रतिष्ठापक ही नहीं अपितु छायावादी पद्धति पर सरस संगीतमय गीतों के लिखनेवाले श्रेष्ठ कवि भी हैं। उन्होंने हिंदी में 'करुणालय' द्वारा गीत नाट्य का भी आरंभ किया। उन्होंने भिन्न तुकांत काव्य लिखने के लिये मौलिक छंदचयन किया और अनेक छंद का संभवत: उन्होंने सबसे पहले प्रयोग किया। उन्होंने नाटकीय ढंग पर काव्य-कथा-शैली का मनोवैज्ञानिक पथ पर विकास किया। साथ ही कहानी कला की नई टेक्नीक का

संयोग काव्यकथा से कराया। प्रगीतों की ओर विशेष रूप से उन्होंने गद्य साहित्य को संपुष्ट किया और नीरस इतिवृत्तात्मक काव्यपद्धति को भावपद्धति के सिंहासन पर स्थापित किया।

काव्यक्षेत्र में प्रसाद की कीर्ति का मूलाधार 'कामायनी' है। खड़ी बोली का यह अद्वितीय महाकव्य मनु और श्रद्धा को आधार बनाकर रचित मानवता को विजयिनी बनाने का संदेश देता है। यह रूपक कथाकाव्य भी है जिसमें मन, श्रद्धा और इड़ा (बुद्धि) के योग से अखंड आनंद की उपलब्धि का रूपक प्रत्यभिज्ञा दर्शन के आधार पर संयोजित किया गया है। उनकी यह कृति छायावाद ओर खड़ी बोली की काव्यगरिमा का ज्वलंत उदाहरण है। सुमित्रानंदन पंत इसे 'हिंदी में ताजमहल के समान' मानते हैं। शिल्पविधि, भाषासौष्ठव एवं भावाभिव्यक्ति की दृष्टि से इसकी तुलना खड़ी बोली के किसी भी काव्य से नहीं की जा सकती है।

जयशंकर प्रसाद हिन्दी कवि, नाटककार, उपन्यासकार तथा निबन्धकार थे। वे हिन्दी के छायावादी युग के चार प्रमुख स्तंभों में से एक हैं। उन्होंने हिन्दी काव्य में एक तरह से छायावाद की स्थापना की जिसके द्वारा खड़ी बोली के काव्य में न केवल कमनीय माधुर्य की रससिद्ध धारा प्रवाहित हुई, बल्कि जीवन के सूक्ष्म एवं व्यापक आयामों के चित्रण की शक्ति भी संचित हुई और कामायनी तक पहुँचकर वह काव्य प्रेरक शक्तिकाव्य के रूप में भी प्रतिष्ठित हो गया। बाद के प्रगतिशील एवं नई कविता दोनों धाराओं के प्रमुख आलोचकों ने उसकी इस शक्तिमत्ता को स्वीकृति दी। इसका एक अतिरिक्त प्रभाव यह भी हुआ कि खड़ीबोली हिन्दी काव्य की निर्विवाद सिद्ध भाषा बन गयी।

आधुनिक हिन्दी साहित्य के इतिहास में इनके कृतित्त्व का गौरव अक्षुण्ण है। वे एक युगप्रवर्तक लेखक थे जिन्होंने एक ही साथ कविता, नाटक, कहानी और उपन्यास के क्षेत्र में हिंदी को गौरवान्वित होने योग्य कृतियाँ दीं। कवि के रूप में वे निराला, पन्त, महादेवी के साथ छायावाद के प्रमुख स्तम्भ के रूप में प्रतिष्ठित हुए हैं, नाटक लेखन में भारतेन्दु के बाद वे एक अलग धारा बहाने वाले युगप्रवर्तक नाटककार रहे जिनके नाटक आज भी पाठक न केवल चाव से पढ़ते हैं, बल्कि उनकी अर्थगर्भिता तथा रंगमंचीय प्रासंगिकता भी दिनानुदिन बढ़ती ही गयी है। इस दृष्टि से उनकी महत्ता पहचानने एवं स्थापित करने में वीरेन्द्र नारायण, शांता गाँधी, सत्येन्द्र तनेजा एवं अब कई दृष्टियों से सबसे बढ़कर महेश आनन्द का प्रशंसनीय ऐतिहासिक योगदान रहा है। इसके अलावा कहानी और उपन्यास

के क्षेत्र में भी उन्होंने कई यादगार कृतियाँ दीं। विविध रचनाओं के माध्यम से मानवीय करुणा और भारतीय मनीषा के अनेकानेक गौरवपूर्ण पक्षों का उद्‌घाटन किया।

कहानी संग्रह

कथा के क्षेत्र में प्रसाद जी आधुनिक ढंग की कहानियों के आरंभयिता माने जाते हैं। सन् 1912 ई. में 'इंदु' में उनकी पहली कहानी 'ग्राम' प्रकाशित हुई। उन्होंने कुल 72 कहानियाँ लिखी हैं। उनके कहानी संग्रह हैं–

छाया, प्रतिध्वनि, आकाशदीप, आँधी और इन्द्रजाल।

उनकी अधिकतर कहानियों में भावना की प्रधानता है, किंतु उन्होंने यथार्थ की दृष्टि से भी कुछ श्रेष्ठ कहानियाँ लिखी हैं। उनकी वातावरणप्रधान कहानियाँ अत्यंत सफल हुई हैं। उन्होंने ऐतिहासिक, प्रागैतिहासिक एवं पौराणिक कथानकों पर मौलिक एवं कलात्मक कहानियाँ लिखी हैं। भावना-प्रधान प्रेमकथाएँ, समस्यामूलक कहानियाँ लिखी हैं। भावना प्रधान प्रेमकथाएँ, समस्यामूलक कहानियाँ, रहस्यवादी, प्रतीकात्मक और आदर्शोन्मुख यथार्थवादी उत्तम कहानियाँ, भी उन्होंने लिखी हैं। ये कहानियाँ भावनाओं की मिठास तथा कवित्व से पूर्ण हैं।

प्रसाद जी भारत के उन्नत अतीत का जीवित वातावरण प्रस्तुत करने में सिद्धहस्त थे। उनकी कितनी ही कहानियाँ ऐसी हैं जिनमें आदि से अंत तक भारतीय संस्कृति एवं आदर्शो की रक्षा का सफल प्रयास किया गया है। उनकी कुछ श्रेष्ठ कहानियों के नाम हैं : आकाशदीप, गुंडा, पुरस्कार, सालवती, स्वर्ग के खंडहर में आँधी, इंद्रजाल, छोटा जादूगर, बिसाती, मधुआ, विरामचिह्न, समुद्रसंतरणय अपनी कहानियों में जिन अमर चरित्रों की उन्होंने सृष्टि की है, उनमें से कुछ हैं चंपा, मधुलिका, लैला, इरावती, सालवती और मधुआ का शराबी, गुंडा का नन्हकूसिंह और घीसू जो अपने अमिट प्रभाव छोड़ जाते हैं।

उपन्यास

प्रसाद ने तीन उपन्यास लिखे हैं। 'कंकाल', में नागरिक सभ्यता का अंतर यथार्थ उद्‌घाटित किया गया है। 'तितली' में ग्रामीण जीवन के सुधार के संकेत हैं। प्रथम यथार्थवादी उन्यास हैं य दूसरे में आदर्शोन्मुख यथार्थ है। इन उपन्यासों के द्वारा प्रसाद जी हिंदी में यथार्थवादी उपन्यास लेखन के क्षेत्र में अपनी गरिमा स्थापित करते हैं। 'इरावती' ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर लिखा गया इनका अधूरा

उपन्यास है, जो रोमांस के कारण ऐतिहासिक रोमांस के उपन्यासों में विशेष आदर का पात्र है। इन्होंने अपने उपन्यासों में ग्राम, नगर, प्रकृति और जीवन का मार्मिक चित्रण किया है जो भावुकता और कवित्व से पूर्ण होते हुए भी प्रौढ़ लोगों की शैल्पिक जिज्ञासा का समाधान करता है।

नाटक

प्रसाद ने आठ ऐतिहासिक, तीन पौराणिक और दो भावात्मक, कुल 13 नाटकों की सर्जना की। 'कामना' और 'एक घूँट' को छोड़कर ये नाटक मूलतः इतिहास पर आधृत हैं। इनमें महाभारत से लेकर हर्ष के समय तक के इतिहास से सामग्री ली गई है। वे हिंदी के सर्वश्रेष्ठ नाटककार हैं। उनके नाटकों में सांस्कृतिक और राष्ट्रीय चेतना इतिहास की भित्ति पर संस्थित है। उनके नाटक हैं–

स्कंदगुप्त, चंद्रगुप्त, ध्रुवस्वामिनी, जन्मेजय का नाग यज्ञ, राज्यश्री, कामना, एक घूंट।

जयशंकर प्रसाद ने अपने दौर के पारसी रंगमंच की परंपरा को अस्वीकारते हुए भारत के गौरवमय अतीत के अनमोल चरित्रों को सामने लाते हुए अविस्मरनीय नाटकों की रचना की। उनके नाटक स्कंदगुप्त, चंद्रगुप्त आदि में स्वर्णिम अतीत को सामने रखकर मानों एक सोये हुए देश को जागने की प्रेरणा दी जा रही थी। उनके नाटकों में देशप्रेम का स्वर अत्यंत दर्शनीय है और इन नाटकों में कई अत्यंत सुंदर और प्रसिद्ध गीत मिलते हैं। 'हिमाद्रि तुंग श्रृंग से', 'अरुण यह मधुमय देश हमारा' जैसे उनके नाटकों के गीत सुप्रसिद्ध रहे हैं।

इनके नाटकों पर अभिनेय न होने का आरोप है। आक्षेप लगता रहा है कि वे रंगमंच के हिसाब से नहीं लिखे गए है, जिसका कारण यह बताया जाता है कि इनमें काव्यतत्त्व की प्रधानता, स्वागत कथनों का विस्तार, गायन का बीच बीच में प्रयोग तथा दृश्यों का त्रुटिपूर्ण संयोजन है। किंतु उनके अनेक नाटक सफलतापूर्वक अभिनीत हो चुके हैं। उनके नाटकों में प्राचीन वस्तुविन्यास और रसवादी भारतीय परंपरा तो है ही, साथ ही पारसी नाटक कंपनियों, बांग्ला तथा भारतेंदुयुगीन नाटकों एवं शेक्सपियर की नाटकीय शिल्पविधि के योग से उन्होंने नवीन मार्ग ग्रहण किया है। उनके नाटकों के आरंभ और अंत में उनका अपना मौलिक शिल्प है जो अत्यंत कलात्मक है। उनके नायक और प्रतिनायक दोनों चारित्रिक दृष्टि के गठन से अपनी विशेषता से मंडित हैं। इनकी नायिकाएं भी

नारीसुलभ गुणों से, प्रेम, त्याग, उत्सर्ग, भावुक उदारता से पूर्ण हैं। उन्होंने अपने नाटकों में जहाँ राजा, आचार्य, सैनिक, वीर और कूटनीतिज्ञ का चित्रण किया है वहीं ओजस्वी, महिमाशाली स्त्रियों और विलासिनी, वासनामयी तथा उग्र नायिकाओं का भी चित्रण किया है। चरित्र चित्रण उनके अत्यंत सफल हैं। चरित्र चित्रण की दृष्टि से उन्होंने नाटकों में राजश्री एवं चाणक्य को अमर कर दिया है। नाटकों में इतिहास के आधार पर वर्तमान समस्याओं के समाधान का मार्ग प्रस्तुत करते हुए वे मिलते हैं। किंतु गंभीर चिंतन के साथ स्वच्छंद काव्यात्मक दृष्टि उनके समाधान के मूल में है। कथोपकथन स्वाभाविक है, किंतु उनकी भाषा संस्कृतगर्भित है। नाटकों में दार्शनिक गंभीतरता का बाहुल्य है पर वह गद्यात्मक न होकर सरस है। उन्होंने कुछ नाटकों में स्वगत का भी प्रयोग किया है, किंतु ऐसे नाटक केवल चार हैं। भारतीय नाट्य परंपरा में विश्वास करने के कारण उन्होंने नाट्यरूपक 'कामना' के रूप में प्रस्तुत किया। ये नाटक प्रभाव की एकता लाने में पूर्ण सफल हैं। अपनी कुछ त्रुटियों के बावजूद प्रसाद जी नाटककार के रूप में हिंदी में अप्रतिम हैं।

निबंध

प्रसाद ने प्रारंभ में समय समय पर 'इंदु' में विविध विषयों पर सामान्य निबंध लिखे। बाद में उन्होंने शोधपरक ऐतिहासिक निबंध, यथा सम्राट् चंद्रगुप्त मौर्य, प्राचीन आर्यवर्त और उसका प्रथम सम्राट् आदि भी लिखे हैं। ये उनकी साहित्यिक मान्यताओं की विश्लेषणात्मक वैज्ञानिक भूमिका प्रस्तुत करते हैं। विचारों की गहराई, भावों की प्रबलता तथा चिंतन और मनन की गंभीरता के ये ज्वलंय प्रमाण हैं।

पुरस्कार

जयशंकर प्रसाद को 'कामायनी' पर मंगलाप्रसाद पारितोषिक प्राप्त हुआ था।

बहुमुखी प्रतिभा

प्रसाद जी का जीवन कुल 48 वर्ष का रहा है। इसी में उनकी रचना प्रक्रिया इसी विभिन्न साहित्यिक विधाओं में प्रतिफलित हुई कि कभी-कभी आश्चर्य होता है। कविता, उपन्यास, नाटक और निबन्ध सभी में उनकी गति

समान है। किन्तु अपनी हर विद्या में उनका कवि सर्वत्र मुखरित है। वस्तुतः एक कवि की गहरी कल्पनाशीलता ने ही साहित्य को अन्य विधाओं में उन्हें विशिष्ट और व्यक्तिगत प्रयोग करने के लिये अनुप्रेरित किया। उनकी कहानियों का अपना पृथक् और सर्वथा मौलिक शिल्प है, उनके चरित्र-चित्रण का, भाषा-सौष्ठव का, वाक्यगठन का एक सर्वथा निजी प्रतिष्ठान है। उनके नाटकों में भी इसी प्रकार के अभिनव और श्लाय प्रयोग मिलते हैं। अभिनेयता को दृष्टि में रखकर उनकी बहुत आलोचना की गई तो उन्होंने एक बार कहा भी था कि रंगमंच नाटक के अनुकूल होना चाहिये न कि नाटक रंगमंच के अनुकूल। उनका यह कथन ही नाटक रचना के आन्तरिक विधान को अधिक महत्त्वपूर्ण सिद्ध कर देता है। कविता, नाटक, कहानी, उपन्यास-सभी क्षेत्रों में प्रसाद जी एक नवीन 'स्कूल' और नवीन जीवन-दर्शन की स्थापना करने में सफल हुये हैं। वे 'छायावाद' के संस्थापकों और उन्नायकों में से एक हैं। वैसे सर्वप्रथम कविता के क्षेत्र में इस नव-अनुभूति के वाहक वही रहे हैं और प्रथम विरोध भी उन्हीं को सहना पड़ा है। भाषा शैली और शब्द-विन्यास के निर्माण के लिए जितना संघर्ष प्रसाद जी को करना पड़ा है, उतना दूसरों को नही।

पक्ष

प्रसाद जी के काव्य की भावपक्षीय तथा कलापक्षीय विशेषताएँ निम्नवत् हैं-

भाव पक्ष

बीती विभावरी जाग री!
अम्बर पनघट में डुबो रही
तारा घट ऊषा नागरी।
खग-कुल कुल-कुल सा बोल रहा
किसलय का अंचल डोल रहा
लो यह लतिका भी भर लाई
मधु मुकुल नवल रस गागरी।
अधरों में राग अमंद पिये
अलकों में मलयज बंद किये
तू अब तक सोई है आली
आँखों में भरे विहाग री।

प्रसाद जी की रचनाओं में जीवन का विशाल क्षेत्र समाहित हुआ है। प्रेम, सौन्दर्य, देश-प्रेम, रहस्यानुभूति, दर्शन, प्रकृति चित्रण और धर्म आदि विविध विषयों को अभिनव और आकर्षक भंगिमा के साथ आपने काव्यप्रेमियों के सम्मुख प्रस्तुत किया है। ये सभी विषय कवि की शैली और भाषा की असाधारणता के कारण अछूते रूप में सामने आये हैं। प्रसाद जी के काव्य साहित्य में प्राचीन भारतीय संस्कृति की गरिमा और भव्यता बड़े प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत हुई है। आपके नाटकों के गीत तथा रचनाएँ भारतीय जीवन मूल्यों को बड़ी शालीनता से उपस्थित करती हैं। प्रसाद जी ने राष्ट्रीय गौरव और स्वाभिमान को अपने साहित्य में सर्वत्र स्थान दिया है। आपकी अनेक रचनाएँ राष्ट्र प्रेम की उत्कृष्ट भावना जगाने वाली हैं। प्रसाद जी ने प्रकृति के विविध पक्षों को बड़ी सजीवता से चित्रित किया है। प्रकृति के सौम्य-सुन्दर और विकृत-भयानक, दोनों स्वरूप उनकी रचनाओं में प्राप्त होते हैं।

इसके अतिरिक्त प्रकृति का आलंकारिक, मानवीकृत, उद्दीपक और उपदेशिका स्वरूप भी प्रसादजी के काव्य में प्राप्त होता है। 'प्रसाद' प्रेम और आनन्द के कवि हैं। प्रेम-मनोभाव का बड़ा सूक्ष्म और बहुविध निरूपण आपकी रचनाओं में हुआ है। प्रेम का वियोग-पक्ष और संयोग-पक्ष, दोनों ही पूर्ण छवि के साथ विद्यमान हैं। 'आँसू' आपका प्रसिद्ध वियोग काव्य है। उसके एक-एक छन्द में विरह की सच्ची पीड़ा का चित्र विद्यमान है, यथा-

जो घनीभूत पीड़ा थी, मस्तक में स्मृति-सी छायी।
दुर्दिन में आँसू बनकर, वह आज बरसने आयी॥

प्रसादजी का सौन्दर्य वर्णन भी सजीव, सटीक और मनमोहक होता है। श्रद्धा के सौन्दर्य का एक शब्द चित्र दर्शनीय है-

नील परिधान बीच सुकुमार, खुल रहा मृदुल अधखुला अंग।
खिला हो ज्यों बिजली का फूल, मेघ-वन बीच गुलाबी रंग॥

'प्रसाद' हिन्दी काव्य में छायावादी प्रवृत्ति के प्रवर्तक हैं। 'आँसू' और 'कामायनी' आपके छायावादी कवित्व के परिचायक हैं। छायावादी काव्य की सभी विशेषताएँ आपकी रचनाओं में प्राप्त होती हैं।

प्रसादजी भावों के तीव्रता और मूर्तता प्रदान करने के लिए प्रतीकों का सटीक प्रयोग करते हैं। प्रसाद का काव्य मानव जीवन को पुरुषार्थ और आशा का संदेश देता है। प्रसाद का काव्य मानवता के समग्र उत्थान और चेतना का प्रतिनिधि

है। उसमें मानव कल्याण के स्वर हैं। कवि 'प्रसाद' ने अपनी रचनाओं में नारी के विविध, गौरवमय स्वरूपों के अभिनव चित्र उपस्थित किए हैं।

कला पक्ष

'प्रसाद' के काव्य का कलापक्ष भी पूर्ण सशक्त और संतुलित है। उनकी भाषा, शैली, अलंकरण, छन्द-योजना, सभी कुछ एक महाकवि के स्तरानुकूल हैं।

भाषा

प्रसाद जी की भाषा के कई रूप उनके काव्य की विकास यात्रा में दिखाई पड़ते हैं। आपने आरम्भ ब्रजभाषा से किया और फिर खड़ीबोली को अपनाकर उसे परिष्कृत, प्रवाहमयी, संस्कृतनिष्ठ भाषा के रूप में अपनी काव्य भाषा बना लिया। प्रसाद जी का शब्द चयन ध्वन्यात्मक सौन्दर्य से भी समन्वित है, यथा-

खग कुल कुल कुल-सा बोल रहा,
किसलय का अंचल डोल रहा।

प्रसाद जी ने लाक्षणिक शब्दावली के प्रयोग द्वारा अपनी रचनाओं में मार्मिक सौन्दर्य की सृष्टि की है।

शैली

प्रसाद जी की काव्य शैली में परम्परागत तथा नव्य अभिव्यक्ति कौशल का सुन्दर समन्वय है। उसमें ओज, माधुर्य और प्रसाद-तीनों गुणों की सुसंगति है। विषय और भाव के अनुकूल विविध शैलियों का प्रौढ़ प्रयोग उनके काव्य में प्राप्त होता है। वर्णनात्मक, भावात्मक, आलंकारिक, सूक्तिपरक, प्रतीकात्मक आदि शैली-रूप उनकी अभिव्यक्ति को पूर्णता प्रदान करते हैं। वर्णनात्मक शैली में शब्द चित्रांकन की कुशलता दर्शनीय होती है।

अलंकरण

प्रसाद जी की दृष्टि साम्यमूलक अलंकारों पर ही रही है। शब्दालंकार अनायास ही आए हैं। रूपक, रूपकातिशयोक्ति, उपमा, उत्प्रेक्षा, प्रतीक आदि आपके प्रिय अलंकार हैं।

छन्द

प्रसाद जी ने विविध छन्दों के माध्यम से काव्य को सफल अभिव्यक्ति प्रदान की है। भावानुसार छन्द-परिवर्तन 'कामायनी' में दर्शनीय है। 'आँसू' के छन्द उसके विषय में सर्वभा अनुकूल हैं। गीतों का भी सफल प्रयोग प्रसाद जी ने किया है। भाषा की तत्समता, छन्द की गेयता और लय को प्रभावित नहीं करती है। 'कामायनी' के शिल्पी के रूप में प्रसादजी न केवल हिन्दी साहित्य की अपितु विश्व साहित्य की विभूति हैं। आपने भारतीय संस्कृति के विश्वजनीन सन्दर्भों को प्रस्तुत किया है तथा इतिहास के गौरवमय पृष्ठों को समक्ष लाकर हर भारतीय हृदय को आत्म-गौरव का सुख प्रदान किया है। हिन्दी साहित्य के लिए प्रसाद जी माँ सरस्वती का प्रसाद हैं।

छायावाद की स्थापना

जयशंकर प्रसाद ने हिंदी काव्य में छायावाद की स्थापना की जिसके द्वारा खड़ी बोली के काव्य में कमनीय माधुर्य की रससिद्ध धारा प्रवाहित हुई और वह काव्य की सिद्ध भाषा बन गई। वे छायावाद के प्रतिष्ठापक ही नहीं अपितु छायावादी पद्धति पर सरस संगीतमय गीतों के लिखनेवाले श्रेष्ठ कवि भी बने। काव्यक्षेत्र में प्रसाद की कीर्ति का मूलाधार 'कामायनी' है। खड़ी बोली का यह अद्वितीय महाकाव्य मनु और श्रद्धा को आधार बनाकर रचित मानवता को विजयिनी बनाने का संदेश देता है। यह रूपक कथाकाव्य भी है जिसमें मन, श्रद्धा और इड़ा (बुद्धि) के योग से अखंड आनंद की उपलब्धि का रूपक प्रत्यभिज्ञा दर्शन के आधार पर संयोजित किया गया है। उनकी यह कृति छायावाद ओर खड़ी बोली की काव्यगरिमा का ज्वलंत उदाहरण है। सुमित्रानन्दन पंत इसे 'हिंदी में ताजमहल के समान' मानते हैं। शिल्पविधि, भाषासौष्ठव एवं भावाभिव्यक्ति की दृष्टि से इसकी तुलना खड़ी बोली के किसी भी काव्य से नहीं की जा सकती है। जयशंकर प्रसाद ने अपने दौर के पारसी रंगमंच की परंपरा को अस्वीकारते हुए भारत के गौरवमय अतीत के अनमोल चरित्रों को सामने लाते हुए अविस्मरणीय नाटकों की रचना की। उनके नाटक स्कंदगुप्त, चंद्रगुप्त आदि में स्वर्णिम अतीत को सामने रखकर मानों एक सोये हुए देश को जागने की प्रेरणा दी जा रही थी। उनके नाटकों में देशप्रेम का स्वर अत्यंत दर्शनीय है और इन नाटकों में कई अत्यंत सुंदर और प्रसिद्ध गीत मिलते हैं। 'हिमाद्रि तुंग शृंग से', 'अरुण यह मधुमय देश हमारा' जैसे उनके नाटकों के गीत सुप्रसिद्ध रहे हैं।

कंकाल

जयशंकर प्रसाद कृत उपन्यास जो 1929 में प्रकाशित हुआ था। प्रसाद मुख्यतया आदर्श की भूमिका पर कार्य करने वाले रचनाकार हैं किंतु 'कंकाल' उनकी एक ऐसी कृति है जिसमें पूर्णतया यथार्थ का आग्रह है। इस दृष्टि से उनका यह उपन्यास विशेष स्थान रखता है।

पात्र और चरित्रचित्रण

'कंकाल' में देश की सामाजिक और धार्मिक स्थिति का अंकन है और अधिकांश पात्र इसी पीठिका में चित्रित किये गये हैं। नायक विजय और नायिका तारा के माध्यम से प्रेम और विवाह जैसे प्रश्नों से लेकर जाति-वर्ण तथा व्यक्ति-समाज जैसी समस्याओं पर लेखक ने विचार किया है।

कथावस्तु और यथार्थ

इस उपन्यास की कथावस्तु मुख्यतया मध्यमवर्ग से सम्बन्ध रखती है और समाज के पर्याप्त चित्रों को उभारा गया है जिनमें वर्तमान का एक संश्लिष्ट चित्र प्रस्तुत हो सके। वेश्यालयों की स्थिति के साथ ही काशी, प्रयाग, हरिद्वार जैसे तीर्थस्थानों के साधु-संतों का वर्णन एक विरोध प्रतीत होता है पर यथार्थ को विस्तार देने की दृष्टि से ऐसा करना नितांत आवश्यक था। यथार्थ-सामाजिक यथार्थ को उपन्यास में अंकित करने के लिए प्रसाद ने कहीं-कहीं व्यंग्य का आश्रय भी ग्रहण किया है, जो उनकी प्रवृत्ति के अधिक अनुकूल नहीं, पर यथार्थ की सार्थकता तीखे व्यंग्य में ही होती है। 'कंकाल' में ऐसा समाज अंकित है, जिसकी आधारभूमि हिल गयी हो। पुरानी मान्यताएं और विश्वास इसमें धराशायी हैं। बड़े कुलीन घरानों में क्या हाल है, इसे नायक-नायिका के जीवन में देखा जा सकता है। धर्म के ठेकेदार पादरी किसी युवती की परिस्थिति का लाभ उठाकर उसे प्रेमपाश में आबद्ध करने की चेष्टा करते हैं, समाज में स्त्रियों की स्थिति का संकेत करती हुई घण्टी एक स्थल पर कहती है–

"हिन्दू स्त्रियों का समाज ही कैसा है, इसमें उनके लिए कोई अधिकार हो तब तो सोचना-विचारना चाहिए...।

इसी प्रकार यमुना कहती है–

कोई समाज स्त्रियों का नहीं बहन! सब पुरुषों के हैं, स्त्रियों का एक धर्म है, आघात सहन करने की क्षमता..।

नवीन जागरण पर आधारित

जो सामाजिक विषमता, अन्धविश्वास, भेदभाव, पाखण्ड प्रचलित है उसके स्थान पर प्रसाद उदार मानवीयता पर आधारित एक नया समाज चाहते हैं। 'कंकाल' का यही प्रतिपाद्य है। कहा जा सकता है कि जो नवीन जागरण बीसवीं शती में अपने देश में आया है उसी की भूमिका पर कंकाल की रचना हुई है।

कथाशिल्प

'कंकाल' एक ऐसे रचनाकार की कृति है जो मुख्यतया कवि है। यथार्थ का चित्रण होते हुए भी इसमें प्रसाद की भावुकता कहीं-कहीं झलकती है और लम्बे उद्धरणों में जहाँ विचारों का क्रम है, यह अधिक स्पष्ट है। उपन्यास में घटनाओं की संख्या अधिक है और कथाक्रम की सुन्दर योजना में कुछ बाधा पड़ती है। कुछ लोग इसे प्रसाद की प्रचारात्मक दृष्टि कह सकते हैं, पर सामाजिक यथार्थ का विश्लेषण करने वाला लेखक अपने विचारों को किसी न किसी प्रकार प्रकट करेगा ही।

समाज-दर्शन

'कंकाल' की शक्ति उसका समाज-दर्शन है, जिसमें निश्चित रूप से व्यक्ति की प्रतिष्ठा है पर व्यक्ति का यह स्वातंत्य सामाजिक दायित्व तथा व्यापक मानवीयता पर आधारित है। बीसवीं शती में जो सामाजिक और राष्ट्रीय चेतना देश में विकसित हुई है, उसका प्रभाव कंकाल पर स्पष्ट है।

पुस्तक के कुछ अंश

प्रतिष्ठान के खँडहर में और गंगा-तट की सिकता-भूमि में अनेक शिविर और फूस के झोंपड़े खड़े हैं। माघ की अमावस्या की गोधूलि में प्रयाग में बाँध पर प्रभात का-सा जनरव और कोलाहल तथा धर्म लूटने की धूम कम हो गयी है, परन्तु बहुत-से घायल और कुचले हुए अर्द्धमृतकों की आर्तध्वनि उस पावन प्रदेश को आशीर्वाद दे रही है। स्वयं-सेवक उन्हें सहायता पहुँचाने में व्यस्त हैं।

यों तो प्रतिवर्ष यहाँ पर जन-समूह एकत्र होता है, पर अब की बार कुछ विशेष पर्व की घोषणा की गयी थी, इसलिए भीड़ अधिकता से हुई।

कितनों के हाथ टूटे, कितनों का सिर फूटा और कितने ही पसलियों की हड्डियाँ गवाँकर, अधोमुख होकर त्रिवेणी को प्रणाम करने लगे। एक नीरव अवसाद संध्या में गंगा के दोनों तट पर खड़े झोंपड़ी पर अपनी कालिमा बिखेर रहा था। नंगी पीठ घोड़ों पर नंगे साधुओं के चढ़ने का जो उत्साह था, जो तलवार की फिकैती दिखलाने की स्पर्धा थी, दर्शक-जनता पर बालू की वर्षा करने का जो उन्माद था, बड़े-बड़े कारचोबी झंडों को आगे से चलने का जो आतंक था, वह सब अब फीका हो चला था।

एक छायादार डोंगी जमुना के प्रशांत वक्ष को आकुलित करती हुई गंगा की प्रखर धारा को काटने लगी-उस पर चढ़ने लगी। माझियों ने कसकर दौड़ लगायी। नाव झूँसी के तट पर जा लगी। एक सम्भ्रान्त सज्जन और युवती, साथ में एक नौकर उस पर से उतरे। पुरुष यौवन में होने पर भी कुछ खिन्न-सा था, युवती हँसमुख थी, परन्तु नौकर बड़ा ही गंभीर बना था। यह सम्भवतः उस पुरुष की प्रभावशालिनी शिष्टता की शिक्षा थी। उसके हाथ में एक बाँस की डोलची थी, जिसमें कुछ फल और मिठाइयाँ थीं। साधुओं के शिविरों की पंक्ति सामने थी, वे लोग उसकी ओर चले। सामने से दो मनुष्य बातें करते आ रहे थे–

'ऐसी भव्य मूर्ति इस मेले भर में दूसरी नहीं है।'

'जैसे साक्षात् भगवान् का अंश हो।'

'अजी ब्रह्मचर्य का तेज है।'

'अवश्य महात्मा हैं।'

वे दोनों चले गये।

यह दल उसी शिविर की ओर चल पड़ा, जिधर से दोनों बातें करते आ रहे थे। पटमण्डप के समीप पहुँचने पर देखा, बहुत से दर्शक खड़े हैं। एक विशिष्ट आसन पर एक बीस वर्ष का युवक हलके रंग का काषाय वस्त्र अंग पर डाले बैठा है। जटा-जूट नहीं था, कंधे तक बाल बिखरे थे। आँखें संयम के मद से भरी थीं। पुष्ट भुजाएँ और तेजोमय मुख-मण्डल से आकृति बड़ी प्रभावशालिनी थी। सचमुच, वह युवक तपस्वी भक्ति करने योग्य था। आगन्तुक और उसकी युवती स्त्री ने विनम्र होकर नमस्कार किया और नौकर के हाथ से लेकर उपहार सामने रखा। महात्मा ने सस्नेह मुस्करा दिया। सामने बैठे हुए भक्त लोग कथा कहने वाले एक साधु की बातें सुन रहे थे। वह एक छन्द की व्याख्या

कर रहा था–'तासों चुप ह्वै रहिये'। गूँगा गुड़ का स्वाद कैसे बतावेगा, नमक की पतली जब लवण–सिन्धु में गिर गई, फिर वह अलग होकर क्या अपनी सत्ता बतावेगी! ब्रह्म के लिए भी वैसे ही 'इदमित्यं' कहना असम्भव है, इसलिए महात्मा ने कहा–'तासों चुप ह्वै रहिये'।

उपस्थित साधु और भक्तों ने एक–दूसरे का मुँह देखते हुए प्रसन्नता प्रकट की। सहसा महात्मा ने कहा, ऐसा ही उपनिषदों में भी कहा है। सम्भ्रान्त पुरुष सुशिक्षित था, उसके हृदय में यह बात समा गयी कि महात्मा वास्तविक ज्ञान–सम्पन्न महापुरुष हैं। उसने अपने साधु–दर्शन की इच्छा की सराहना की और भक्तिपूर्वक बैठकर 'सत्संग' सुनने लगा।

रात हो गयी, जगह–जगह पर अलाव धधक रहे थे। शीत की प्रबलता थी। फिर भी धर्म–संग्राम के सेनापति लोग शिविरों में डटे रहे। कुछ ठहरकर आगन्तुक ने जाने की आज्ञा चाही। महात्मा ने पूछा, 'आप लोगों का शुभ नाम और परिचय क्या है

'हम लोग अमृतसर के रहने वाले हैं, मेरा नाम श्रीचन्द्र है और यह मेरी धर्मपत्नी है।' कहकर श्रीचन्द्र ने युवती की ओर संकेत किया। महात्मा ने भी उसकी ओर देखा। युवती ने उस दृष्टि से यह अर्थ निकाला कि महात्मा जी मेरा भी नाम पूछ रहे हैं। वह जैसे किसी पुरस्कार पाने की प्रत्याशा और लालच से प्रेरित होकर बोल उठी, 'दासी का नाम किशोरी है।'

महात्मा की दृष्टि में जैसे एक आलोचक घूम गया। उसने सिर नीचा कर लिया और बोला, 'अच्छा विलम्ब होगा, जाइये। भगवान् का स्मरण रखिये।'

श्रीचन्द्र किशोरी के साथ उठे। प्रणाम किया और चले।

साधुओं का भजन–कोलाहल शान्त हो गया था। निःतब्धता रजनी के मधुर क्रोड़ में जाग रही थी। निशीथ के नक्षत्र गंगा के मुकुल में अपना प्रतिबिम्ब देख रहे थे। शांत पवन का झोंका सबको आलिंगन करता हुआ विरक्त के समान भाग रहा था। महात्मा के हृदय में हलचल थी। वह निष्पाप हृदय ब्रह्मचारी दुश्चिन्ता से मलिन, शिविर छोड़कर कम्बल डाले, बहुत दूर गंगा की जलधारा के समीप खड़ा होकर अपने चिरसंचित पुण्यों को पुकारने लगा।

वह अपने विराग को उत्तेजित करता, परन्तु मन की दुर्बलता प्रलोभन बनकर विराग की प्रतिद्वन्द्विता करने लगती और इसमें उसके अतीत की स्मृति भी उसे धोखा दे रही थी, जिन–जिन सुखों को वह त्यागने की चिंता करता, वे ही उसे धक्का देने का उद्योग करते। दूर सामने दिखने वाली कलिन्दजा की गति

का अनुकरण करने के लिए वह मन को उत्साह दिलाता, परन्तु गंभीर अर्द्धनिशीथ के पूर्ण उज्ज्वल नक्षत्र बाल-काल की स्मृति के सदृश्य मानस-पटल पर चमक उठते थे। अनन्त आकाश में जैसे अतीत की घटनाएँ रजताक्षरों से लिखी हुई उसे दिखाई पड़ने लगीं।

झेलम के किनारे एक बालिका और एक बालक अपने प्रणय के पौधे को अनेक क्रीड़ा-कुतूहलों के जल से सींच रहे हैं। बालिका के हृदय में असीम अभिलाषा और बालक के हृदय में अदम्य उत्साह। बालक रंजन आठ वर्ष का हो गया और बालिका सात की। एक दिन अकस्मात् रंजन को लेकर उसके माता-पिता हरिद्वार चल पड़े। उस समय किशोरी ने उससे पूछा, 'रंजन, कब आओगे?'

उसने कहा, 'बहुत ही जल्द। तुम्हारे लिए अच्छा-अच्छी गुड़िया लेकर आऊँगा।'

रंजन चला गया। जिस महात्मा की कृपा और आशीर्वाद से उसने जन्म लिया था, उसी के चरणों में चढ़ा दिया गया, क्योंकि उसकी माता ने सन्तान होने की ऐसी ही मनौती की थी।

निष्ठुर माता-पिता ने अन्य सन्तानों के जीवित रहने की आशा से अपने ज्येष्ठ पुत्र को महात्मा का शिष्य बना दिया। बिना उसकी इच्छा के वह संसार से-जिसे उसने अभी देखा भी नहीं था-अलग कर दिया गया। उसका गुरुद्वारे का नाम देवनिरंजन हुआ। वह सचमुच आदर्श ब्रह्मचारी बना। वृद्ध गुरुदेव ने उसकी योग्यता देखकर उसे उन्नीस वर्ष की ही अवस्था में गद्दी का अधिकारी बनाया। वह अपने संघ का संचालन अच्छे ढंग से करने लगा।

हरिद्वार में उस नवीन तपस्वी की सुख्याति पर बूढ़े-बूढ़े बाबा ईर्ष्या करने लगे और इधर निरंजन के मठ की भेंट-पूजा बढ़ गयी, परन्तु निरंजन सब चढ़े हुए धन का सदुपयोग करता था। उसके सद्गुणों का गौरव-चित्र आज उसकी आँखों के सामने खिंच गया और वह प्रशंसा और सुख्याति के लोभ दिखाकर मन को इन नयी कल्पनाओं से हटाने लगा, परन्तु किशोरी के मन में उसे बारह वर्ष की प्रतिमा की स्मरण दिला दिया। उसने हरिद्वार आते हुए कहा था-किशोरी, तेरे लिए गुड़िया ले आऊँगा। क्या यह वही किशोरी है? अच्छा यही है, तो इसे संसार में खेलने के लिए गुड़िया मिल गयी। उसका पति है, वह उसे बहलायेगा। मुझ तपस्वी को इससे क्या! जीवन का बुल्ला विलीन हो जायेगा। ऐसी कितनी ही किशोरियाँ अनन्त समुद्र में तिरोहित हो जायेंगी। मैं क्यों चिंता करूँ?

परन्तु प्रतिज्ञा? ओह वह स्वप्न था, खिलवाड़ था। मैं कौन हूँ किसी को देने वाला, वही अन्तर्यामी सबको देता है। मूर्ख निरंजन! सम्हल!! कहाँ मोह के थपेड़े में झूमना चाहता है। परन्तु यदि वह कल फिर आयी तो? भागना होगा। भाग निरंजन, इस माया से हारने के पहले युद्ध होने का अवसर ही मत दे।

निरंजन धीरे-धीरे अपने शिविर को बहुत दूर छोड़ता हुआ, स्टेशन की ओर विचरता हुआ चल पड़ा। भीड़ के कारण बहुत-सी गाड़ियाँ बिना समय भी आ-जा रही थीं। निरंजन ने एक कुली से पूछा, 'यह गाड़ी कहाँ जायेगी?'

'सहारनपुर।' उसने कहा।

देवनिरंजन गाड़ी में चुपचाप बैठ गया।

दूसरे दिन जब श्रीचन्द्र और किशोरी साधु-दर्शन के लिए फिर उसी स्थान पर पहुँचे, तब वहाँ अखाड़े के साधुओं को बड़ा व्यग्र पाया। पता लगाने पर मालूम हुआ कि महात्माजी समाधि के लिए हरिद्वार चले गये। यहाँ उनकी उपासना में कुछ विघ्न होता था। वे बड़े त्यागी हैं। उन्हें गृहस्थों की बहुत झंझट पसन्द नहीं। यहाँ धन और पुत्र माँगने वालों तथा कष्ट से छुटकारा पाने वालों की प्रार्थना से वे ऊब गये थे।

किशोरी ने कुछ तीखे स्वर से अपने पति से कहा, 'मैं पहले ही कहती थी कि तुम कुछ न कर सकोगे। न तो स्वयं कहा और न मुझे प्रार्थना करने दी।'

विरक्त होकर श्रीचन्द्र ने कहा, 'तो तुमको किसने रोका था। तुम्हीं ने क्यों न सन्तान के लिए प्रार्थना की! कुछ मैंने बाधा तो दी न थी।'

उत्तेजित किशोरी ने कहा, 'अच्छा तो हरिद्वार चलना होगा।'

"चलो, मैं तुम्हें वहाँ पहुँचा दूँगा। और अमृतसर आज तार दे दूँगा कि मैं हरद्वार से होता हुआ आता हूँ, क्योंकि मैं व्यवसाय इतने दिनों तक यों ही नहीं छोड़ सकता।"

'अच्छी बात है, परन्तु मैं हरिद्वार अवश्य जाऊँगी।'

'सो तो मैं जानता हूँ।' कहकर श्रीचन्द्र ने मुँह भारी कर लियाय परन्तु किशोरी को अपनी टेक रखनी थी। उसे पूर्ण विश्वास हो गया था कि उन महात्मा से मुझे अवश्य सन्तान मिलेगी।

उसी दिन श्रीचन्द्र ने हरिद्वार के लिए प्रस्थान किया और अखाड़े के भण्डारी ने भी जमात लेकर हरिद्वार जाने का प्रबन्ध किया।

हरिद्वार के समीप ही जाह्नवी के तट पर तपोवन का स्मरणीय दृश्य है। छोटे-छोटे कुटीरों की श्रेणी बहुत दूर तक चली गयी है। खरस्त्रोता जाह्नवी की

शीतल धारा उस पावन प्रदेश को अपने कल-नाद से गुंजरित करती है। तपस्वी अपनी योगचर्या-साधन के लिए उन छोटे-छोटे कुटीरों में रहते हैं। बड़े-बड़े मठों से अन्न-सत्र का प्रबन्ध है। वे अपनी भिक्षा ले आते हैं और इसी निभृत स्थान में बैठकर अपने पाप का प्रक्षालन करते हुए ब्रह्मानन्द का सुख भोगते हैं। सुन्दर शिला-खण्ड, रमणीय लता-वितान, विशाल वृक्षों की मधुर छाया, अनेक प्रकार के पक्षियों का कोमल कलरव, वहाँ एक अद्‌भुत शान्ति का सृजन करता है। आरण्यक-पाठ के उपयुक्त स्थान है।

गंगा की धारा जहाँ घूम गयी है, वह छोटा-सा कोना अपने सब साथियों को आगे छोड़कर निकल गया है। वहाँ एक सुन्दर कुटी है, जो नीचे पहाड़ी की पीठ पर जैसे आसन जमाये बैठी है। निरंजन गंगा की धारा की ओर मुँह किये ध्यान में निमग्न है। यहाँ रहते हुए कई दिन बीत गये, आसन और दृढ़ धारणा से अपने मन को संयम में ले आने का प्रयत्न लगातार करते हुए भी शांति नहीं लौटी। विक्षेप बराबर होता था। जब ध्यान करने का समय होता, एक बालिका की मूर्ति सामने आ खड़ी होती। वह उसे माया-आवरण कहकर तिरस्कार करता, परन्तु वह छाया जैसे ठोस हो जाती। अरुणोदय की रक्त किरणें आँखों में घुसने लगती थीं। घबराकर तपस्वी ने ध्यान छोड़ दिया। देखा कि पगडण्डी से एक रमणी उस कुटीर के पास आ रही है। तपस्वी को क्रोध आया। उसने समझा कि देवताओं को तप में प्रत्यूह डालने का क्यों अभ्यास होता है, क्यों वे मनुष्यों के समान ही द्वेष आदि दुर्बलताओं से पीड़ित हैं।

रमणी चुपचाप समीप चली आयी। साष्टांग प्रणाम किया। तपस्वी चुप था, वह क्रोध से भरा हुआ था, परन्तु न जाने क्यों उसे तिरस्कार करने का साहस न हुआ। उसने कहा, 'उठो, तुम यहाँ क्यों आयीं?'

किशोरी ने कहा, 'महाराज, अपना स्वार्थ ले आया, मैंने आज तक सन्तान का मुँह नहीं देखा।'

निरंजन ने गंभीर स्वर में पूछा, 'अभी तो तुम्हारी अवस्था अठारह-उन्नीस से अधिक नहीं, फिर इतनी दुश्चिन्ता क्यों?'

किशोरी के मुख पर लाज की लाली थी, वह अपनी वयस की नाप-तौल से संकुचित हो रही थी। परन्तु तपस्वी का विचलित हृदय उसे क्रीड़ा समझने लगा। वह जैसे लड़खड़ाने लगा। सहसा सम्भलकर बोला, 'अच्छा, तुमने यहाँ आकर ठीक नहीं किया। जाओ, मेरे मठ में आना-अभी दो दिन ठहरकर। यह

एकान्त योगियों की स्थली है, यहाँ से चली जाओ।' तपस्वी अपने भीतर किसी से लड़ रहा था।

किशोरी ने अपनी स्वाभाविक तृष्णा भरी आँखों से एक बार उस सूखे यौवन का तीव्र आलोक देखाय वह बराबर देख न सकी, छलछलायी आँखें नीची हो गयीं। उन्मत्त के समान निरंजन ने कहा, 'बस जाओ!'

किशोरी लौटी और अपने नौकर के साथ, जो थोड़ी ही दूरी पर खड़ा था, 'हर की पैड़ी' की ओर चल पड़ी। चिंता की अभिलाषा से उसका हृदय नीचे-ऊपर हो रहा था।

रात एक पहर गयी होगी, 'हर की पैड़ी' के पास ही एक घर की खुली खिड़की के पास किशोरी बैठी थी। श्रीचन्द्र को यहाँ आते ही तार मिला कि तुरन्त चले आओ। व्यवसाय-वाणिज्य के काम अटपट होते हैं, वह चला गया। किशोरी नौकर के साथ रह गयी। नौकर विश्वासी और पुराना था। श्रीचन्द्र की लाडली स्त्री किशोरी मनस्विनी थी ही।

ठंड का झोंका खिड़की से आ रहा थाय अब किशोरी के मन में बड़ी उलझन थी-कभी वह सोचती, मैं क्यों यहाँ रह गयी, क्यों न उन्हीं के संग चली गयी। फिर मन में आता, रुपये-पैसे तो बहुत हैं, जब उन्हें भोगने वाला ही कोई नहीं, फिर उसके लिए उद्योग न करना भी मूर्खता है। ज्योतिषी ने भी कह दिया है, संतान बड़े उद्योग से होगी। फिर मैंने क्या बुरा किया?

अब शीत की प्रबलता हो चली थी, उसने चाहा, खिड़की का पल्ला बन्द कर ले। सहसा किसी के रोने की ध्वनि सुनायी दी। किशोरी को उत्कंठा हुई, परन्तु क्या करे, 'बलदाऊ' बाजार गया था। चुप रही। थोड़े ही समय में बलदाऊ आता दिखाई पड़ा।

आते ही उसने कहा, 'बहुरानी कोई गरीब स्त्री रो रही है। यहीं नीचे पड़ी है।'

किशोरी ही दुःखी थी। संवेदना से प्रेरित होकर उसने कहा, 'उसे लिवाते क्यों नहीं लाये, कुछ उसे दे आते।'

बलदाऊ सुनते ही फिर नीचे उतर गया। उसे बुला लाया। वह एक युवती विधवा थी। बिलख-बिलखकर रो रही थी। उसके मलिन वसन का अंचल तर हो गया था। किशोरी के आश्वासन देने पर वह सम्हली और बहुत पूछने पर उसने कथा सुना दी-विधवा का नाम रामा है, बरेली की एक ब्राह्मण-वधु है। दुराचार

का लांछन लगाकर उसके देवर ने उसे यहाँ छोड़ दिया। उसके पति के नाम की कुछ भूमि थी, उस पर अधिकार जमाने के लिए उसने यह कुचक्र रचा है।

किशोरी ने उसके एक-एक अक्षर का विश्वास किया, क्योंकि वह देखती है कि परदेश में उसके पति ने उसे छोड़ दिया और स्वयं चला गया। उसने कहा, 'तुम घबराओ मत, मैं यहाँ कुछ दिन रहूँगी। मुझे एक ब्राह्मणी चाहिए ही, तुम मेरे पास रहो। मैं तुम्हें बहन के समान रखूँगी।'

रामा कुछ प्रसन्न हुई। उसे आश्रय मिल गया। किशोरी शैया पर लेट-लेटे सोचने लगी-पुरुष बड़े निर्मोही होते हैं, देखो वाणिज्य-व्यवसाय का इतना लोभ है कि मुझे छोड़कर चले गये। अच्छा, जब तक वे स्वयं नहीं आवेंगे, मैं भी नहीं जाऊँगी। मेरा भी नाम 'किशोरी' है!-यही चिंता करते-करते किशोरी सो गयी।

दो दिन तक तपस्वी ने मन पर अधिकार जमाने की चेष्टा की, परन्तु वह असफल रहा। विद्वत्ता ने जितने तर्क जगत को मिथ्या प्रमाणित करने के लिए थे, उन्होंने उग्र रूप धारण किया। वे अब समझते थे-जगत् तो मिथ्या है ही, इसके जितने कर्म हैं, वे भी माया हैं। प्रमाता जीव भी प्रकृति है, क्योंकि वह भी अपरा प्रकृति है। विश्व मात्र प्राकृत है, तब इसमें अलौकिक अध्यात्म कहाँ, यही खेल यदि जगत् बनाने वाले का है, तो वह मुझे खेलना ही चाहिए। वास्तव में गृहस्थ न होकर भी मैं वहीं सब तो करता हूँ जो एक संसारी करता है-वही आय-व्यय का निरीक्षण और उसका उपयुक्त व्यवहार, फिर सहज उपलब्ध सुख क्यों छोड़ दिया जाए?

त्यागपूर्ण थोथी दार्शनिकता जब किसी ज्ञाना-भ्रास को स्वीकार कर लेती है, तब उसका धक्का सम्हालना मनुष्य का काम नहीं।

उसने फिर सोचा-मठधारियों, साधुओं के लिए सब पथ खुले होते हैं। यद्यपि प्राचीन आर्यों की धर्मनीति में इसीलिए कुटीचर और एकान्त वासियों का ही अनुमोदन है, प्राचीन संघबद्ध होकर बौद्धधर्म ने जो यह अपना कूड़ा छोड़ दिया है, उसे भारत के धार्मिक सम्प्रदाय अभी फेंक नहीं सकते। तो फिर चले संसार अपनी गति से।

देवनिरंजन अपने विशाल मठ में लौट आया और महन्ती नये ढंग से देखी जाने लगी। भक्तों की पूजा और चढ़ाव का प्रबन्ध होने लगा। गद्दी और तकिये की देखभाल चली दो ही दिन में मठ का रूप बदल गया।

एक चाँदनी रात थी। गंगा के तट पर अखाड़े से मिला हुआ उपवन था। विशाल वृक्ष की छाया में चाँदनी उपवन की भूमि पर अनेक चित्र बना रही थी।

बसंत-समीर ने कुछ रंग बदला था। निरंजन मन के उद्वेग से वहीं टहल रहा था। किशोरी आयी। निरंजन चौंक उठा। हृदय में रक्त दौड़ने लगा।

किशोरी ने हाथ जोड़कर कहा, 'महाराज, मेरे ऊपर दया न होगी?'

निरंजन ने कहा, 'किशोरी, तुम मुझको पहचानती हो?'

किशोरी ने उस धुँधले प्रकाश में पहचानने की चेष्टा की, परन्तु वह असफल होकर चुप रही।

निरंजन ने फिर कहना आरम्भ किया, 'झेलम के तट पर रंजन और किशोरी नाम के दो बालक और बालिका खेलते थे। उनमें बड़ा स्नेह था। रंजन अपने पिता के साथ हरिद्वार जाने लगा, परन्तु उसने कहा था कि किशोरी मैं तेरे लिए गुड़िया ले आऊँगा, परन्तु वह झूठा बालक अपनी बाल-संगिनी के पास फिर न लौटा। क्या तुम वही किशोरी हो?'

उसका बाल-सहचर इतना बड़ा महात्मा!-किशोरी की समस्त धमनियों में हलचल मच गयी। वह प्रसन्नता से बोल उठी, 'और क्या तुम वही रंजन हो?'

लड़खड़ाते हुए निरंजन ने उसका हाथ पकड़कर कहा, 'हाँ किशोरी, मैं वहीं रंजन हूँ। तुमको ही पाने के लिए आज तक तपस्या करता रहा, यह संचित तप तुम्हारे चरणों में निछावर है। संतान, ऐश्वर्य और उन्नति देने की मुझमें जो शक्ति है, वह सब तुम्हारी है।'

अतीत की स्मृति, वर्तमान की कामनाएँ किशोरी को भुलावा देने लगीं। उसने ब्रह्मचारी के चौड़े वक्ष पर अपना सिर टेक दिया।

कई महीने बीत गये। बलदाऊ ने स्वामी को पत्र लिखा कि आप आइये, बिना आपके आये बहूरानी नहीं जातीं और मैं अब यहाँ एक घड़ी भी रहना उचित नहीं समझता।

श्रीचन्द्र आये। हठीली किशोरी ने बड़ा रूप दिखलाया। फिर मान-मनाव हुआ। देवनिरंजन को समझा-बुझाकर किशोरी फिर आने की प्रतिज्ञा करके पति के साथ चली गयी। किशोरी का मनोरथ पूर्ण हुआ।

रामा वहाँ रह गयी। हरिद्वार जैसे पुण्यतीर्थ में क्या विधवा को स्थान और आश्रय की कमी थी!

पन्द्रह बरस बाद काशी में ग्रहण था। रात में घाटों पर नहाने का बड़ा सुन्दर प्रबन्ध था। चन्द्रग्रहण हो गया। घाट पर बड़ी भीड़ थी। आकाश में एक गहरी नीलिमा फैली नक्षत्रों में चौगुनी चमक थी, परन्तु खगोल में कुछ प्रसन्नता न थी। देखते-देखते एक अच्छे चित्र के समान पूर्णमासी का चन्द्रमा आकाश पट पर से

धो दिया गया। धार्मिक जनता में कोलाहल मच गया। लोग नहाने, गिरने तथा भूलने भी लगे। कितनों का साथ छूट गया।

विधवा रामा अब सधवा होकर अपनी कन्या तारा के साथ भण्डारीजी के साथ आयी थी। भीड़ के एक ही धक्के में तारा अपनी माता तथा साथियों से अलग हो गयी। यूथ से बिछड़ी हुई हिरनी के समान बड़ी-बड़ी आँखों से वह इधर-उधर देख रही थी। कलेजा धक-धक करता था, आँखें छलछला रही थीं और उसकी पुकार उस महा कोलाहल में विलीन हुई जाती थी। तारा अधीर हो गयी थी। उसने पास आकर पूछा, 'बेटी, तुम किसको खोज रही हो?'

तारा का गला रुँध गया, वह उत्तर न दे सकी।

तारा सुन्दरी थी, होनदार सौंदर्य उसके प्रत्येक अंग में छिपा था। वह युवती हो चली थी, परन्तु अनाघ्रात कुसुम के रूप में पंखुरियाँ विकसित न थीं। अधेड़ स्त्री ने स्नेह से उसे छाती से लगा लिया और कहा, 'मैं अभी तेरी माँ के पास पहुँचा देती हूँ, वह तो मेरी बहन है, मैं तुझे भलीभाँति जानती हूँ। तू घबड़ा मत।'

हिन्दू स्कूल का एक स्वयंसेवक पास आ गया, उसने पूछा, 'क्या तुम भूल गयी हो?'

तारा रो रही थी। अधेड़ स्त्री ने कहा, 'मैं जानती हूँ, यहीं इसकी माँ है, वह भी खोजती थी। मैं लिवा जाती हूँ।'

स्वयंसेवक मंगल चुप रहा। युवक छात्र एक युवती बालिका के लिए हठ न कर सका। वह दूसरी ओर चला गया और तारा उसी स्त्री के साथ चली।

इरावती

जयशंकर प्रसाद का अपूर्ण उपन्यास जिसका प्रकाशन उनकी मृत्यु के बाद 1940 ई. में हुआ। दो उपन्यासों में प्रसाद ने वर्तमान समाज को अंकित किया है पर इरावती में वे पुनः अतीत की ओर लौट गये हैं।

बौद्ध धर्म का प्रभाव

इस अधूरे उपन्यास की कथा सामग्री इतिहास से ग्रहण की गयी है। बौद्ध धर्म किसी समय भारत का प्रमुख धर्म रहा है। उसकी करुणा और दया ने राष्ट्र के प्रमुख सम्राटों को प्रभावित किया। धर्म की वाणी घर-घर में गूँजी। लंका, चीन, ब्रह्मा आदि अनेक पड़ोसी देश भी उनसे प्रभावित हुए और बौद्ध धर्म दूर-दूर

स्थानों पर अपना मानवीय सन्देश प्रचारित करने में समर्थ हुआ पर सम्राट अशोक के समाप्त होते ही जैसे इस महान धर्म को पाला मार गया।

कथावस्तु

'इरावती' की मुख्य भूमिका एक महाधर्म की पतनोन्मुख अवस्था से सम्बन्धित है। अम्बात्त्यकुमार बृहस्पति मित्र अपनी हिंसात्मक प्रकृति का प्रकाशन इरावती में स्थल-स्थल पर करता है। ऐसा प्रतीत होता है कि जैसे वह अहिंसा का एक विपर्याय बनकर आया है। मौर्य साम्राज्य का यह प्रतिनिधि प्रियदर्शी अशोक की तुलना में उसका विरोधी प्रतीत होता है। इसी प्रकार बदले हुए वातावरण का संकेत करते हुए एक स्थान पर 'इरावती' में जयशंकर प्रसाद ने एक पात्र से कहलाया है -

'धर्म के नाम पर शील का पतन, काम सुखों की उत्तेजना और विलासिता का प्रचार तुम को भी बुरा नहीं लगता न! स्वर्गीय देवप्रिय सम्राट अशोक का धर्मानुशासन एक स्वप्न नहीं था। सम्राट उस धर्म-विजय को सजीव रखना चाहते थे किंतु वह शासकों की कृपा से चलने पावे तब तो! तुम्हारी छाया के नीचे ये व्यभिचार के अड्डे, चरित्र के हत्यागृह और पाखण्ड के उद्‌गम स्थल हैं।'.....

देवमन्दिरों में विलासिता का वातावरण धर्म की पतनावस्था को घोषित करता है। मन्दिरों के प्रयोग में नर्तकियों का गायन इसका प्रमाण है। इस अधूरे उपन्यास का गौरव एक ओर यदि इतिहास के माध्यम से सांस्कृतिक पतन के चित्रण में है तो दूसरी ओर उसके परिपुष्ट शिल्प में निहित है।

भाषा

बौद्ध युग के वातावरण को सजीव रूप में अंकित करने का सामर्थ्य प्रसाद की भाषा में हैं। इतिहास युग के अनुरुप सामग्री का संचयन इरावती में हुआ है, यथा -

'एक साथ तूर्य्य, शंख, पटक की मन्दध्वनि से वह प्रदेश गूँज उठा! स्वर्ण-कपाट के दोनों ओर खड़े कवच धारी प्रहरियों ने स्वयंनिर्मित राजचिह्न को ऊपर उठा लिया...।'

वातावरण

इससे यह स्पष्ट है कि प्रसाद ने उस युग का विस्तृत अध्ययन किया था। काव्यमयी भाषा इरावती में संबंध सांस्कृतिक तथा ऐतिहासिक वातावरण को जागृत रखती है। उपन्यास का आरम्भ ही कितना काव्यमय है-

उसकी आँखें आशाबिहीन संध्या और उल्लभबिहीन उषा की तरह काली और रतनारी थी। कभी-कभी उनमें विद्राह का भ्रम होता, ये जल उठती परंतु फिर जैसे बुझ जाती। वह न वेदना थी न प्रसन्नता...।

इरावती के लिए प्रसाद से कुछ पत्र तैयार किये थे जिनसे यह ज्ञात होता है कि मानवता के भावात्मक विकास की एक रूपरेखा इरावती के निर्माण के समय उनके समक्ष थी।

पुस्तक के कुछ अंश

शुंगकालीन ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर लिखा गया यह अधूरा उपन्यास इरावती कौतूहल, जिज्ञासा, रोमांस और मनोरंजन आदि तत्वों के कथात्मक इस्तेमाल की दृष्टि से ही महत्वपूर्ण नहीं है बल्कि मनुष्य की जैविक आवश्यकताओं की निरुद्धि से उत्पन्न विकृतियों और कुण्ठाओं के परिणामों की दृष्टि से भी महत्वपूर्ण है।

इरावती, कालिन्दी, अग्निमित्र, पुष्यमित्र और वृहस्पति मित्र ब्रह्मचारी आदि चरित्र केवल कथा की वृद्धि नहीं करते हैं या केवल रहस्य को घना करके उपन्यास को रोमांचक ही नहीं बनाते हैं, बल्कि मानव मन का उद्‌घाटन करके यथार्थ के चरणों की और संकेत करते हैं।

बौद्ध धर्म की जड़ता और रसहीनता के साथ ही साथ इसमें अहिंसा और करुणा की प्रतिवादिता से उत्पन्न उन समस्याओं की ओर संकेत किया गया है, जो सत्याग्रह आन्दोलन से पैदा हो रही थीं। मूल्यों के रूढ़ि में बदलने की प्रक्रिया के संकेत के साथ प्रसाद जी इसमें सामाजिक रूढ़ियों और विकृतियों के प्रति विद्रोह को रेखांकित करते हैं।

सामन्ती मूल्यों के साथ ही साथ इसमें उस सामाजिक परिवर्तन का संकेत किया गया है जो वर्ग और जाति की दीवारों को तोड़कर उपजता है और नये समाज में रूपान्तरित हो जाता है।

उपन्यास इतिहास और कल्पना, आदर्श और यथार्थ, अतीत और वर्तमान, आन्तरिक और बाह्यता की द्विभाजिकताओं के बीच से मनुष्य की रस धारा को सही परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत करता है।

6

यशपाल

यशपाल (3 दिसम्बर 1903 –26 दिसम्बर 1976) हिन्दी साहित्य के प्रेमचंदोत्तर युगीन कथाकार हैं। ये विद्यार्थी जीवन से ही क्रांतिकारी आन्दोलन से जुड़े थे। इन्हें साहित्य एवं शिक्षा के क्षेत्र में भारत सरकार द्वारा सन् 1970 में पद्म भूषण से सम्मानित किया गया था।

जीवनी

यशपाल का जन्म 3 दिसम्बर 1903 को पंजाब में, फीरोजपुर छावनी में एक साधारण खत्री परिवार में हुआ था। उनकी माँ श्रीमती प्रेमदेवी वहाँ अनाथालय के एक स्कूल में अध्यापिका थीं। यशपाल के पिता हीरालाल एक साधारण कारोबारी व्यक्ति थे। उनका पैतृक गाँव रंघाड़ था, जहाँ कभी उनके पूर्वज हमीरपुर से आकर बस गए थे। पिता की एक छोटी-सी दुकान थी और लोग उन्हें 'लाला' कहते थे। बीच-बीच में वे घोड़े पर सामान लादकर फेरी के लिए आस-पास के गाँवों में भी जाते थे। अपने व्यवसाय से जो थोड़ा-बहुत पैसा उन्होंने इकट्ठा किया था उसे वे, बिना किसी पुख्ता लिखा-पढ़ी के, हथ उधारू तौर पर सूद पर उठाया करते थे। अपने परिवार के प्रति उनका ध्यान नहीं था। इसीलिए यशपाल की माँ अपने दो बेटों-यशपाल और धर्मपाल-को लेकर फिरोजपुर छावनी में आर्य समाज के एक स्कूल में पढ़ाते हुए अपने बच्चों की शिक्षा-दीक्षा के बारे में कुछ अधिक ही सजग थीं। यशपाल के विकास में गरीबी

के प्रति तीखी घृणा आर्य समाज और स्वाधीनता आंदोलन के प्रति उपजे आकर्षण के मूल में उनकी माँ और इस परिवेश की एक निर्णायक भूमिका रही है। यशपाल के रचनात्मक विकास में उनके बचपन में भोगी गई गरीबी की एक विशिष्ट भूमिका थी।

अंग्रेजी राज और यशपाल जी

अपने बचपन में यशपाल ने अंग्रेजों के आतंक और विचित्र व्यवहार की अनेक कहानियाँ सुनी थीं। बरसात या धूप से बचने के लिए कोई हिन्दुस्तानी अंग्रेजों के सामने छाता लगाए नहीं गुजर सकता था। बड़े शहरों और पहाड़ों पर मुख्य सड़कें उन्हीं के लिए थीं, हिन्दुस्तानी इन सड़कों के नीचे बनी कच्ची सड़क पर चलते थे। यशपाल ने अपने होश में इन बातों को सिर्फ सुना, देखा नहीं, क्योंकि तब तक अंग्रेजों की प्रभुता को अस्वीकार करनेवाले क्रांतिकारी आंदोलन की चिंगारियाँ जगह-जगह फूटने लगी थीं। लेकिन फिर भी अपने बचपन में यशपाल ने जो भी कुछ देखा, वह अंग्रेजों के प्रति घृणा भर देने को काफी था। वे लिखते हैं, ''मैंने अंग्रेजों को सड़क पर सर्व साधारण जनता से सलामी लेते देखा है। हिन्दुस्तानियों को उनके सामने गिड़गिड़ाते देखा है, इससे अपना अपमान अनुमान किया है और उसके प्रति विरोध अनुभव किया।..'

अंग्रेजों और प्रकारांतर से ब्रिटिश साम्राज्यवाद के विरुद्ध अपनी घृणा के संदर्भ में यशपाल अपने बचपन की दो घटनाओं का उल्लेख विशेष रूप से करते हैं। इनमें से पहली घटना उनके चार-पाँच वर्ष की आयु की है। तब उनके एक संबंधी युक्तप्रांत के किसी कस्बे में कपास ओटने के कारखाने में मैनेजर थे। कारखाना स्टेशन के पास ही काम करने वाले अंग्रेजों के दो-चार बँगले थे। आस-पास ही इन लोगों का खूब आतंक था। इनमें से एक बँगले में मुर्गियाँ पली थीं, जो आस-पास की सड़क पर घूमती-फिरती थीं। एक शाम यशपाल उन मुर्गियों से छेड़खानी करने लगे। बँगले में रहनेवाली मेम साहिबा ने इस हरकत पर बच्चों के फटकार दिया। शायद 'गधा' या 'उल्लू' जैसी कोई गाली भी दी। चार-पाँच वर्ष के बालक यशपाल ने भी उसकी गाली का प्रत्युत्तर गाली से ही दिया। जब उस स्त्री ने उन्हें मारने की धमकी दी, तो उन्होंने भी उसे वैसे ही धमकाते हुए जवाब दिया और फिर भागकर कारखाने में छिप गए। लेकिन घटना यूँ ही टाल दी जानेवाली नहीं थी। इसकी शिकायत उनके संबंधी से की गई। उन्होंने यशपाल की माँ से शिकायत की और अनेक आशंकाओं और आतंक के

बीच यह भी बताया कि इससे पूरे कारखाने के लोगों पर कैसा संकट आ सकता है। फिर इसके परिणाम का उल्लेख करते हुए यशपाल लिखते हैं, 'मेरी माँ ने एक छड़ी लेकर मुझे खूब पीटा मैं जमीन पर लोट-पोट गया परंतु पिटाई जारी रही। इस घटना के परिणाम से मेरे मन में अंग्रेजों के प्रति कैसी भावना उत्पन्न हुई होगी, यह भाँप लेना कठिन नहीं है।...'

दूसरी घटना कुछ इसके बाद की है। तब यशपाल की माँ युक्तप्रांत में ही नैनीताल जिले में तिराई के कस्बे काशीपुर में आर्य कन्या पाठशाला में मुख्याध्यापिका थीं। शहर से काफी दूर, कारखाने से ही संबंधी को बड़ा-सा आवास मिला था और यशपाल की माँ भी वहीं रहती थी। घर के पास ही 'द्रोण सागर' नामक एक तालाब था। घर की स्त्रियाँ प्राय: ही वहाँ दोपहर में घूमने चली जाती थीं। एक दिन वे स्त्रियाँ वहाँ नहा रही थीं कि उसके दूसरी ओर दो अंग्रेज शायद फौजी गोरे, अचानक दिखाई दिए। स्त्रियाँ उन्हें देखकर भय से चीखनें लगीं और आत्मरक्षा में एक-दूसरे से लिपटते हुए, भयभीत होकर उसी अवस्था में अपने कपड़े उठाकर भागने लगीं। यशपाल भी उनके साथ भागे। घटित कुछ विशेष नहीं हुआ लेकिन अंग्रेजों से इस तरह डरकर भागने का दृश्य स्थायी रूप से उनकी बाल-स्मृति में टँक गया।..'अंग्रेज से वह भय ऐसा ही था जैसे बकरियों के झुंड को बाघ देख लेने से भय लगता होगा अर्थात् अंग्रेज कुछ भी कर सकता था। उससे डरकर रोने और चीखने के सिवाय दूसरा कोई उपाय नहीं था।..' (वही, पृ.44)

आर्य समाज और कांग्रेस वे पड़ाव थे, जिन्हें पार करके यशपाल अंतत: क्रांतिकारी संगठन की ओर आए। उनकी माँ उन्हें स्वामी दयानंद के आदर्शों का एक तेजस्वी प्रचारक बनाना चाहती थीं। इसी उद्देश्य से उनकी आरंभिक शिक्षा गुरुकुल कांगड़ी में हुई। आर्य समाजी दमन के विरुद्ध उग्र प्रतिक्रिया के बीज उनके मन की धरती पर यहीं पड़े। यहीं उन्हें पुनरुत्थानवादी प्रवृत्तियों को भी निकट से देखने-समझने का अवसर मिला। अपनी निर्धनता का कचोट-भरा अनुभव भी उन्हें यहीं हुआ। अपने बचपन में भी गरीब होने के अपराध के प्रति वे अपने को किसी प्रकार उत्तरदायी नहीं समझ पाते। इन्हीं संस्कारों के कारण वे गरीब के अपमान के प्रति कभी उदासीन नहीं हो सके।

कांग्रेस यशपाल का दूसरा पड़ाव थी। अपने दौर के अनेक दूसरे लोगों की तरह वे भी कांग्रेस के माध्यम से ही राजनीति में आए। राजनैतिक दृष्टि से फिरोजपुर छावनी एक शांत जगह थी। छावनी से तीन मील दूर शहर के लेक्चर

और जलसे होते रहते थे। खद्दर का प्रचार भी होता था। 1921 में, असहयोग आंदोलन के समय यशपाल अठारह वर्ष के नवयुवक थे–देश-सेवा और राष्ट्रभक्ति के उत्साह से भरपूर, विदेशी कपड़ों की होली के साथ वे कांग्रेस के प्रचार-अभियान में भी भाग लेते थे। घर के ही लुग्गड़ से बने खद्दर के कुर्त्ता-पायजामा और गाँधी टोपी पहनते थे। इसी खद्दर का एक कोट भी उन्होंने बनवाया था। बार-बार मैला हो जाने से ऊबकर उन्होंने उसे लाल रँगवा लिया था। इस काल में अपने भाषणों में, ब्रिटिश साम्राज्यवाद विरोधी आँकड़ों के स्रोत के रूप में, वे देश-दर्शन नामक जिस पुस्तक का उल्लेख करते हैं, वह संभवतः 1904 में प्रकाशित सखाराम गणेश देउस्कर की बांला पुस्तक देशेरकथा है, भारतीय जन-मानस पर जिसकी छाप व्यापक प्रतिक्रिया और लोकप्रियता के कारण ब्रिटिश सरकार ने जिस पर पाबंदी लगा दी थी।

महात्मा गाँधी और गाँधीवाद से यशपाल के तात्कालिक मोहभंग का कारण भले ही 12 फरवरी सन् 1922 को, चौरा-चौरी काण्ड के बाद महात्मा गाँधी द्वारा आंदोलन के स्थगन की घोषणा रहा हो, लेकिन इसकी शुरुआत और पहले हो चुकी थी। यशपाल और उनके क्रांतिकारी साथियों का सशस्त्र क्रांति का जो एजेंडा था, गाँधी का अहिंसा का सिद्धांत उसके विरोध में जाता था। महात्मा गाँधी द्वारा धर्म और राजनीति का घाल-मेल उन्हें कहीं बुनियादी रूप से गलत लगता था। मैट्रिक के बाद लाहौर आने पर यशपाल नेशनल कॉलेज में भगतसिंह, सुखदेव और भगवतीचरण बोहरा के संपर्क में आए। नौजवान भारत सभा की गतिविधियों में उनकी व्यापक और सक्रिय हिस्सेदारी वस्तुतः गाँधी और गाँधीवाद से उनके मोहभंग की एक अनिवार्य परिणाम थी। नौजवान भारत सभा के मुख्य सूत्राधार भगवतीचरण और भगत सिंह थे।

यशपाल लिखते हैं, 'नौजवान भारत सभा का कार्यक्रम गाँधीवादी कांग्रेस की समझौतावादी नीति की आलोचना करके जनता को उस राजनैतिक कार्यक्रम की प्रेरणा देना और जनता में क्रांतिकारियों और महात्मा गाँधी तथा गाँधीवादियों के बीच एक बुनियादी अंतर की ओर संकेत करना उपयोगी होगा। लाला लाजपतराय की हिन्दूवादी नीतियों से घोर विरोध के बावजूद उनपर हुए लाठी चार्ज के कारण, जिससे ही अंततः उनकी मृत्यु हुई, भगतसिंह और उनके साथियों ने सांडर्स की हत्या की। इस घटना को उन्होंने एक राष्ट्रीय अपमान के रूप में देखा जिसके प्रतिरोध के लिए आपसी मतभेदों को भुला देना जरूरी था। भगतसिंह द्वारा असेम्बली में बम-कांड इसी सोच की एक तार्किक परिणति थी,

लेकिन भगतसिंह, सुखदेव और राजगुरु की फाँसी के विरोध में महात्मा गाँधी ने जनता की ओर से व्यापक दबाव के बावजूद, कोई औपचारिक अपील तक जारी नहीं की।

अपने क्रांतिकारी जीवन के जो संस्मरण यशपाल ने सिंहावलोकन में लिखे, उनमें अपनी दृष्टि से उन्होंने उस आंदोलन और अपने साथियों का मूल्यांकन किया। तार्किकता, वास्तविकता और विश्वसनीयता पर उन्होंने हमेशा जोर दिया है। यह संभव है कि उस मूल्यांकन से बहुतों को असहमति हो या यशपाल पर तथ्यों को तोड़-मरोड़कर प्रस्तुत करने का आरोप हो। आज भी कुछ लोग ऐसे हैं, जो यशपाल को बहुत अच्छा क्रांतिकारी नहीं मानते। उनके क्रांतिकारी जीवन के प्रसंग में उनके चरित्रहनन की दुरभिसंधियों को ही वे पूरी तरह सच मानकर चलते हैं और शायद इसीलिए यशपाल की ओर मेरी निरंतर और बार-बार वापसी को वे 'रेत की मूर्ति' गढ़ने-जैसा कुछ मानते हैं।

'क्रांति' को भी वे बम-पिस्तौलवाली राजनीति क्रांति तक ही सीमित करके देखते हैं। राजनीतिक क्रांति यशपाल के लिए सामाजिक व्यवस्था में क्रांतिकारी परिवर्तन का ही एक हिस्सा थी। साम्राज्यवाद को वे एक शोषणकारी व्यवस्था के रूप में देखते थे, जो भगतसिंह के शब्दों में, 'मनुष्य के हाथों मनुष्य के और राष्ट्र के हाथों राष्ट्र के शोषण का चरम रूप है'..(भगतसिंह और उनके साथियों के दस्तावेज (सं.) जगमोहन और चमनलाल, संस्करण '19, पृ.321) इस व्यवस्था के आधार स्तंभ-जागीरदारी और जमींदारी व्यवस्था भी उसी तरह उनके विरोध के मुख्य एजेंडे के अंतर्गत आते थे। देश में जिस रूप में स्वाधीनता आई और बहुतों की तरह, वे भी संतुष्ट नहीं थे। स्वाधीनता से अधिक वे इसे सत्ता का हस्तांतरण मानते थे। और यह लगभग वैसा ही था जिसे कभी प्रेमचंद ने जॉन की जगह गोविंद को गद्दी पर बैठ जाने के रूप में अपनी आशंका व्यक्त की थी।

क्रांतिकारी राष्ट्र भक्ति और बलिदान की भावना से प्रेरित-संचालित युवक थे। अवसर आने पर उन्होंने हमेशा बलिदान से इसे प्रमाणित भी किया। लेकिन यशपाल अपने साथियों को ईर्ष्या-द्वेष, स्पर्धा-आकांक्षावाले साधारण मनुष्यों के रूप में देखे जाने पर बल देते हैं। अपने संस्मरणों में आज राजेन्द्र यादव जिसे आदर्श घोषित करते हैं—'वे देवता नहीं हैं'—उसकी शुरुआत हिन्दी में वस्तुतः यशपाल के इन्हीं संस्मरणों से होती है। ये क्रांतिकारी सामान्य मनुष्यों से कुछ अलग, विशिष्ठ और अपने लक्ष्यों के लिए एकांतिक रूप से समर्पित होने पर भी

सामान्य मानवीय अनुभूतियों से अछूते नहीं थे। हो भी सकते थे। शरतचंद्र ने पथेरदावी में क्रांतिकारियों का जो आदर्श रूप प्रस्तुत किया, यशपाल उसे आवास्तविक मानते थे, जिससे राष्ट्रभक्ति की प्रेरणा मिलती हो, उसे क्रांतिकारी आंदोलन और उस जीवन को वास्तविकता का एक प्रतिनिधि और प्रामाणिक चित्र नहीं माना जा सकता। सुबोधचंद्र सेन गुप्त पथेरदावी में बिजली पानीवाली झंझावाती रात में सव्यसाची के निषक्रमण को भावी महानायक सुभाषचंद्र बोस के पलायन के एक रूपक के तौर पर देखते हैं, जबकि यशपाल सव्यसाची के अतिमानवीय से लगने वाले कार्य-कलापों और खोह-खंडहरों में बिताए जानेवाले जीवन को वास्तविक और प्रामाणिक नहीं मानते। क्रांतिकारी जीवन के अपने लंबे अनुभवों को ही वे अपनी इस आलोचना के मुख्य आधार के रूप में इस्तेमाल करते हैं।

2, मार्च सन् 1938 को जेल से रिहाई के बाद, जब उसी वर्ष नवंबर में यशपाल ने विप्लव का प्रकाशन-संपादन शुरू किया तो अपने इस काम को उन्होंने 'बुलेट बुलेटिन' के रूप में परिभाषित किया। जिस अहिंसक और समतामूलक समाज का निर्माण वे राजनीतिक क्रांतिकारी के माध्यम से करना चाहते थे, उसी अधूरे काम को आगे बढ़ाने के लिए उन्होंने लेखन को अपना आधार बनाया। अपने समय की सामाजिक-राजनीतिक समस्याओं के केन्द्र में रखकर लिखे गए साहित्य को प्रायः हमेशा ही विचारवादी कहकर लांछित किया जाता है। नंद दुलारे वाजपेयी का प्रेमचंद के विरुद्ध बड़ा आरोप यही था। अपने ऊपर लगाए गए प्रचार के आरोप का यशपाल ने उत्तर भी लगभग प्रेमचंद की ही तरह दिया।

अपने पहले उपन्यास दादा कॉमरेड की भूमिका में उन्होंने लिखा, 'कला के प्रेमियों को एक शिकायत मेरे प्रति है कि (मैं) कला को गौण और प्रचार को प्रमुख स्थान देता हूँ। मेरे प्रति दिए गए इस फैसले के विरुद्ध मुझे अपील नहीं करनी। संतोष है अपना अभिप्राय स्पष्ट कर पाता हूँ...(दादा कॉमरेड, संस्करण' 59, पृ.4) अपने लेखकीय सरोकारों पर और विस्तार से टिप्पणी करते हुए बाद में उन्होंने लिखा, 'मनुष्य के पूर्ण विकास और मुक्ति के लिए संघर्ष करना ही लेखक की सार्थकता है। जब लेखक अपनी कला के माध्यम से मनुष्य की मुक्ति के लिए पुरानी व्यवस्था और विचारों में अंतर्विरोध दिखाता है और नए आदर्श सामने रखता है तो उस पर आदर्शहीन और भौतिकवादी होने का लांछन लगाया जाता है। आज के लेखक की जड़ें वास्तविकता में हैं, इसलिए वह

भौतिकवादी तो है ही परंतु वह आदर्शहीन भी नहीं है। उसके आदर्श अधिक यथार्थ हैं। आज का लेखक जब अपनी कला द्वारा नए आदर्शों का समर्थन करता है तो उस पर प्रचारक होने का लांछन लगाया जाता है। लेखक सदा ही अपनी कला से किसी विचार या आदर्श के प्रति सहानुभूति या विरोध पैदा करता है। साहित्य विचारपूर्ण होगा।

साहित्य और यशपाल जी

यशपाल के लेखन की प्रमुख विधा उपन्यास है, लेकिन अपने लेखन की शुरूआत उन्होने कहानियों से ही की। उनकी कहानियाँ अपने समय की राजनीति से उस रूप में आक्रांत नहीं हैं, जैसे उनके उपन्यास। नई कहानी के दौर में स्त्री के देह और मन के कृत्रिम विभाजन के विरुद्ध एक संपूर्ण स्त्री की जिस छवि पर जोर दिया गया, उसकी वास्तविक शुरूआत यशपाल से ही होती है। आज की कहानी के सोच की जो दिशा है, उसमें यशपाल की कितनी ही कहानियाँ बतौर खाद इस्तेमाल हुई है। वर्तमान और आगत कथा-परिदृश्य की संभावनाओं की दृष्टि से उनकी सार्थकता असंदिग्ध है। उनके कहानी-संग्रहों में पिंजरे की उड़ान, ज्ञानदान, भस्मावृत्त चिनगारी, फूलों का कुर्ता, धर्मयुद्ध, तुमने क्यों कहा था मैं सुन्दर हूँ और उत्तमी की माँ प्रमुख हैं।

जो और जैसी दुनिया बनाने के लिए यशपाल सक्रिय राजनीति से साहित्य की ओर आए थे, उसका नक्शा उनके आगे शुरू से बहुत कुछ स्पष्ट था। उन्होंने किसी युटोपिया की जगह व्यवस्था की वास्तविक उपलब्धियों को ही अपना आधार बनाया था। यशपाल की वैचारिक यात्रा में यह सूत्र शुरू से अंत तक सक्रिय दिखाई देता है कि जनता का व्यापक सहयोग और सक्रिय भागीदारी ही किसी राष्ट्र के निर्माण और विकास के मुख्य कारक हैं। यशपाल हर जगह जनता के व्यापक हितों के समर्थक और संरक्षक लेखक हैं। अपनी पत्रकारिता और लेखन-कर्म को जब यशपाल 'बुलेट की जगह बुलेटिन' के रूप में परिभाषित करते हैं तो एक तरह से वे अपने रचनात्मक सरोकारों पर ही टिप्पणी कर रहे होते हैं। ऐसे दुर्धर्ष लेखक के प्रतिनिधि रचनाकर्म का यह संचयन उसे संपूर्णता में जानने-समझने के लिए प्रेरित करेगा, ऐसा हमारा विश्वास है। वर्षों 'विप्लव' पत्र का संपादन-संचालन। समाज के शोषित, उत्पीड़ित तथा सामाजिक बदलाव के लिए संघर्षरत व्यक्तियों के प्रति रचनाओं में गहरी आत्मीयता। धार्मिक ढोंग और समाज की झूठी नैतिकताओं पर करारी चोट। अनेक रचनाओं के देशी-विदेशी

भाषाओं में अनुवाद। 'मेरी तेरी उसकी बात' नामक उपन्यास पर साहित्य अकादमी पुरस्कार।

पुरस्कार
'देव पुरस्कार' (1955)
'सोवियत लैंड नेहरू पुरस्कार' (1970)
'मंगला प्रसाद पारितोषिक' (1971)
'पद्म भूषण'
साहित्य अकादमी पुरस्कार

प्रमुख प्रकाशित कृतियाँ

दिव्या, देशद्रोही, झूठा सच, दादा कामरेड, अमिता, मनुष्य के रूप, मेरी तेरी उसकी बात (उपन्यास), पिंजड़े की उड़ान, फूलो का कुर्ता, भस्मावृत चिंगारी, धर्मयुद्ध, सच बोलने की भूल (कहानी-संग्रह) तथा चक्कर क्लब (व्यंग्य-संग्रह)।

उपन्यास
दिव्या
देशद्रोही
झूठा सच
दादा कामरेड
अमिता
मनुष्य के रूप
तेरी मेरी उसकी बात
कहानी संग्रह
पिंजरे की उड़ान
फूलो का कुर्ता
धर्मयुद्ध
सच बोलने की भूल
भस्मावृत चिंगारी
उत्तनी की मां
चित्र का शीर्षक
तुमने क्यों कहा था मैं सुंदर हूं

ज्ञान दान
वो दुनिया
व्यंग्य संग्रह
चक्कर क्लब

कुत्ते की पूँछउपन्यास में यशपाल का दृष्टिकोण और भी अधिक अच्छी तरह उभर सका हैं। उनका पहला उपन्यास 'दादा कामरेड' क्रान्तिकारी जीवन का चित्रण करते हुए मजदूरों के संघठन को राष्ट्रोद्धार का अधिक संगत उपाय बतलाया है। 'देश द्रोही' कला की दृष्टि से 'दादा कामरेड' से कई कदम आगे है। इस उपन्यास में गाँधीवाद तथा कांग्रेस की तीव्र आलोचना करते हुए लेखक ने समाजवादी व्यवस्था का आग्रह किया है। 'दिव्या' यशपाल के श्रेष्ठ उपन्यासों में एक से है। इस उपन्यास में युग-युग की उस दलित-पीड़ित नारी की करुण कथा है, जो अनेकानेक संघर्षों से गुजरती हुई अपना स्वस्थ मार्ग पहचान लेती है। 'मनुष्य के रूप' में परिस्थितियों के घात-प्रतिघात से मनुष्य के बदलते हुए रूपों को प्रभावशाली ढंग से चित्रित किया गया है। 'अमिता' उपन्यास 'दिव्या' की भाँति ऐतिहासिक है।

कुछ समय पहले ही यशपाल का अत्यन्त विशिष्ट उपन्यास 'झूठा-सच' प्रकाशित हुआ है। विभाजन के समय देश में जो भीषण रक्तपात और अव्यवस्था उत्पन्न हुई, उसके व्यापक फलक पर झूठ-सच का रंगीन चित्र खींचा गया है। इसके दो भाग हैं--वतन और देश तथा देश का भविष्य। प्रथम भाग में विभाजन के फलस्वरूप लोगों के वतन छूटने और द्वितीय भाग में बहुत सी समस्याओं के समाधान का चित्रण हुआ है। देश के समसामयिक वातावरण को यथासम्भव ऐतिहासिक यथार्थ के रूप में रखा गया है। विविध समस्याओं के साथ-साथ इस उपन्यास में जिन नये नैतिक मूल्यों की प्रतिष्ठा की गयी है, वे रूढ़िग्रस्त विचारों को प्रबल झटका देते हैं।

साहित्यिक जीवन

यशपाल में लिखने की प्रवृत्ति विद्यार्थी काल से ही थी, पर उनके क्रान्तिकारी जीवन ने उन्हें अनुभव सम्बद्ध किया, अनेकानेक संघर्षों से जूझने का बल दिया। राजनीतिक तथा साहित्यिक, दोनों क्षेत्रों में वे क्रान्तिकारी हैं। उनके लिए राजनीति तथा साहित्य दोनों साधन हैं और एक ही लक्ष्य की पूर्ति में सहायक हैं। साहित्य के माध्यम से उन्होंने वैचारिक क्रान्ति की भूमिका तैयार

करने का प्रयास किया है। विचारों से वे काफी दूर तक मार्क्सवादी हैं, पर कट्टरता से मुक्त होने के कारण इससे उनकी साहित्यिकता को प्रायः क्षति नहीं पहुँची है, उससे वे लाभान्वित ही हुए हैं।

कहानीकार

यशपाल पहले-पहल कहानीकार के रूप में हिन्दी जगत में आये। अब तक उनके लगभग सोलह 'कहानी संग्रह' प्रकाशित हो चुके हैं। यशपाल मुख्यतः मध्यमवर्गीय जीवन के कलाकार हैं और इस वर्ग से सम्बद्ध उनकी कहानियाँ बहुत ही मार्मिक बन पड़ीं हैं। मध्यवर्ग की असंगतियों, कमजोरियों, विरोधाभासों, रूढ़ियों आदि पर इतना प्रबल कशाघात करने वाला कोई दूसरा कहानीकार नहीं है। दो विरोधी परिस्थितियों का वैषम्य प्रदर्शित कर व्यंग्य की सर्जना उनकी प्रमुख विशेषता है। यथार्थ जीवन की नवीन प्रसंगोदभावना द्वारा वे अपनी कहानियों को और भी प्रभावशाली बना देते हैं।

मध्यवर्ग अपनी ही रूढ़ियों में जकड़ा हुआ कितना दयनीय हो जाता है, इसका अच्छा खासा उदाहरण 'चार आने' है। झूठी और कृत्रिम प्रतिष्ठा के बोझ को ढ़ोते-ढ़ोते यह वर्ग अपने दैन्य और विवशता में उजागर हो उठा है। 'गवाही' और 'सोमा का साहस' में समाज के गलीज, नकाब और कृत्रिामता की तस्वीरें खींची गयीं हैं। इस वर्ग के वैमनस्य में निम्न वर्ग को रखकर उसके अंहकार और अमानवीय व्यवहार को बहुत ही मार्मिक ढंग से अभिव्यक्त करने में यशपाल खूब कुशल हैं। 'एक राज' में मालकिन और नौकर की मनोवृत्तियों की विषमताओं को इस तरह से उभारा गया है कि पाठक नौकर की सहानुभूति में तिलमिला उठता है। 'गुडबाई दर्द दिल' में रिक्शेवाले के प्रति की गयी अमानुषिकता पाठकों के मन में गहरी कचोट पैदा करती है। इस प्रकार की विषमता को अंकित करने के लिए यशपाल ने प्रायः उच्च मध्यवर्गीय व्यक्तियों को सामने रखा है, क्योंकि सामान्य मध्यवर्गीय व्यक्ति तो अपनी उलझनों से ही खाली नहीं हो पाता।

यशपाल के व्यंग्य का तीखा रूप '80/100', 'ज्ञानदान' आदि में देखा जा सकता है। सामान्यतः कहा जाता है कि उन्होंने अपनी कथा के लिए रोटी और सेक्स की समस्याएँ चुनी हैं। यशपाल की कहानियों में कोई न कोई जीवन्त समस्या है, पर वे पूर्णतः कलात्मक आवरण में व्यक्त हुई हैं। जहाँ उनकी समस्या को कलात्मक आच्छादन नहीं मिल सका, वहाँ कहानी का कहानीपन संदिग्ध हो गया है।

यशपाल के उपन्यासों में नारी चेतना

यशपाल प्रतिभा संपन्न और अनुभवी औपन्यासिक सृजन के मालिक रहे हैं। इनके लेखन में समाज, संस्कृति, इतिहास राजनीति एवं मानवीय सभी पक्षों का पुट देखने को मिलता है। साहित्यिक क्षेत्र में पदार्पण करने से पहले क्रांतिकारी दल की तद्युगीन स्थितियों में स्वयं की सहभागिता से जो अनुभव प्राप्त किए, उनकी साहित्यिक उपज की पृष्ठभूमि का कार्य करते दिखाई देती है। वह जीवन के विभिन्न पक्षों को अभिव्यक्त करने वाले समर्थ साहित्यकारों के वर्ग के प्रतिनिधि लेखक रहे हैं। दिव्या उपन्यास में यशपाल जी ने नारी मुक्ति को आधार बना कर चित्रित किया है। दिव्या की कथा भले ही बौद्धकालीन हो, उसकी चिताएं वर्तमान की हैं। ऐतिहासिक कल्पनाओं में नारी की समस्याएं आज की हैं। दिव्या में नारी मुक्ति की तीन अवस्थाएं हैं। वर्णाश्रम धर्म व्यवस्था, बौद्ध धर्म व्यवस्था और चार्वाक दर्शन, जो विवेकवाद और बेहतर जीवन दर्शन से पर्याप्त हैं। दिव्या जैसी नारी न तो वर्णाश्रम व्यवस्था के अंदर स्वतंत्र है और न बौद्ध धर्म व्यवस्था के भीतर। धर्म के नाम पर नारी का त्याग व दान होता आया है। भोग के नाम पर उसे सामंत लूटते आए हैं।

इसलिए दिव्या उस काल की तीनों दशाओं के प्रतीक रुद्र धीर, पृथुसेन और मॉरिश में से मॉरिश का वरण करके उसके साथ नाट्य जीवन में संतोष की अनुभूति हेतु उतर जाती है, जो लेखक का उद्देश्य है।'दिव्या' नामक ऐतिहासिक उपन्यास के पश्चात 'अमिता' का स्थान है। इस ऐतिहासिक उपन्यास में प्रमाणिक घटना केवल कलियुग विजय के लिए आक्रमण व परिणाम स्वरूप युद्ध न करने की प्रतिज्ञा अशोक सम्राट द्वारा लेना ही है। उपन्यास में 'पंचशील' को विश्व शांति का एकमात्र उपाय बतलाया है। नारी चेतना हेतु उपन्यास की नायिका जिसके आधार पर उपन्यास का नामकरण किया है। चरित्र का बीज उसकी माता के उपदेश हैं। अमिता की माता महारानी नंदा बौद्ध धर्म में दीक्षित होने के कारण अहिंसा त्याग और क्षमा में विश्वास रखती हैं। 'अप्सरा का शाप' उपन्यास भी नारी के प्रति सामाजिक अन्याय, पुरुष के अहं, उच्छश्रृंलता और भोग वृत्ति को चित्रित करने के उद्देश्य से लिखा गया है। प्राचीन कथाओं व कालिदास के शाकुंतलम पर आधारित होते हुए भी उपन्यास के कथानक में यशपाल जी की अप्सरा-मेनका के शाप की कल्पना इसमें प्रमुख है, जिस समय इस उपन्यास को रचा गया, उस समय 'वुमन लिव' की लहर पूरे चरम पर थी। इसके संकेत

भारतीय नारी में भी दिखने प्रारंभ हो गए थे। उसे भी अपने अस्तित्त्व का ज्ञान होने लगा था। वह भी दासी के आवरण के बाहर आना चाह रही थी। पुरुष के साथ कंधे से कंधा मिलाकर हर क्षेत्र में आगे बढ़ना चाहती थी। उपन्यास में शकुंतला के प्रति हुए अन्याय को, मेनका के वचनों द्वारा न्यायसंगत ठहराया गया है। यशपाल जी के अनुसार समाजवाद ही स्त्री मुक्ति का एक सा मार्ग है। समाजवाद में स्त्री व्यक्ति विशेष की संपत्ति न होकर उसके साथ कंधे से कंधा मिलाकर कर काम करने वाली स्वतंत्र व्यक्तित्त्व व अस्तित्त्व होगी। 'मनुष्य के रूप' उपन्यास में यशपाल जी की नायिका सोमा है, जो जीवन के विभिन्न घटनाक्रमों को पार करती हुठ सिने की प्रख्यात नायिका बनकर संघर्षों को सफलता में परिवर्तित करती है। ' दादा कामरेड' उपन्यास में यशपाल जी ने यशोदा के माध्यम से घर की सीमाओं में बँधी नारी को सामाजिक, राजनीतिक कार्यों में लगाकर उसकी मुक्ति का संघर्ष एवं चेतन दिखाने का प्रयत्न किया गया है। निष्कर्ष स्वरूप कहा जा सकता है कि यशपाल ने अपने उपन्यासों के माध्यम से नारी की चेतना को सुप्तावस्था से जागृत कर एक साहस भरा व प्रशंसनीय कार्य करके नारी को राष्ट्रीय जीवन धारा का अभिन्न अंग माना है।

दादा कामरेड

'दादा कामरेड' यशपाल का पहला उपन्यास है। इस उपन्यास में यशपाल ने क्रान्तिकारी जीवन का चित्रण करते हुए मजदूरों के संगठन को राष्ट्रोद्धार का अधिक संगत उपाय बतलाया है। यह उपन्यास लेखक की पहली रचना थी जिसने हिन्दी में रोमान्स और राजनीति के मिश्रण का आरम्भ किया। यह उपन्यास बांग्ला उपन्यास सम्राट शरत बाबू के प्रमुख राजनीतिक उपन्यास 'पथेरदावी' के द्वारा क्रान्तिकारियों के जीवन और आदर्श के सम्बन्ध में उत्पन्न हुई भ्रामक धारणाओं का निराकरण करने के लिए लिखा गया था परन्तु इतना ही नहीं यह 'श्री जैनेन्द्र' की आदर्श नारी पुरुष की खिलौना 'सुनीता' का भी उत्तर है।

संसार में आज अनेक वादों–पूँजीवाद, नाजीवाद, गाँधीवाद, समाजवाद का संघर्ष चल रहा है। इस विचार संघर्ष की नींव में परिस्थितियों, व्यवस्था और धारणाओं में सामंजस्य बैठाने का प्रयत्न है। इन वादों के संघर्षों से उत्पन्न समन्वय ही मनुष्य की नयी सभ्यता का आधार होगा। मनुष्य होने के नाते हम इस संघर्ष की उपेक्षा नहीं कर सकते। इस संघर्ष के परिणाम के सम्बन्ध में हमारी चिन्ता की भावना नहीं, स्वयं अपने और समाज के जीवन की चिन्ता है। हमें यह सोचना

ही पड़ेगा कि मनुष्य-समाज की आयु बढ़ने के परिणामस्वरूप जब समाज के बचपन के युग की अँगुलिया उसके बदन को दबाने लगे तब उसके लिये नये विचारों का विस्तृत कपड़ा बना लेना बेहतर होगा या शरीर को दबाकर पुरानी सीमाओं में ही रखना है ?'' 'दादा कामरेड' में इसी प्रश्न पर विचार करने का अनुरोध किया गया है।

यशपाल के इस उपन्यास से चिढ़कर रूढ़िवाद के अन्ध अनुयायियों ने लेखक को कत्ल की धमकी दी थी परन्तु देश की प्रगतिशील जनता की रुचि के कारण 'दादा कॉमरेड' के न केवल हिन्दी के कई संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं, बल्कि गुजराती, मराठी, सिन्धी और मलयालम में भी यह उपन्यास अनुवादित हो चुका है।

'दादा कामरेड' उपन्यास के रूप में प्रस्तुत है। उपन्यास का रूप होने से यह रचना भी साहित्य के क्षेत्र में आ जाती है। इससे पूर्व 'पिंजड़े की उड़ान' और 'न्याय का संघर्ष' पेश कर साहित्य के किसी कोने में स्थान पाने की आशा की थी। आशा से बहुत अधिक सफलता मिली, उसके लिए पाठकों को धन्यवाद।

मेरी पुस्तक 'मार्क्सवाद' विप्लवी-ट्रैक्ट के रूप में अपनाये हुए कार्य का अंग था, परन्तु 'दादा कामरेड' में उस 'कार्य से कुछ अधिक भी है। वह है, अपनी रचना की प्रवृत्ति को अवसर देने की इच्छा या कला के मार्ग पर प्रयत्न।

कला की भावना से जो प्रयत्न मैंने 'पिजड़े की उड़ान' के रूप में किया था, उसकी कद्र उत्साहवर्धक जरूर हुई, परन्तु साहित्य और कला के प्रेमियों को मेरे प्रति एक शिकायत है कि कला को गौण और प्रचार को प्रमुख स्थान देता हूँ। मेरे प्रति दिये गये इस फैसले के विरुद्ध मुझे अपील नहीं करनी है। संतोष है, अपना अभिप्राय स्पष्ट कर पाता हूँ।

दिव्या

'दिव्या' यशपाल के श्रेष्ठ उपन्यासों में एक से है। इस उपन्यास में युग-युग की उस दलित-पीड़ित नारी की करुण कथा है, जो अनेकानेक संघर्षों से गुजरती हुई अपना स्वस्थ मार्ग पहचान लेती है। 'दिव्या' उपन्यास 'अमिता' की भाँति ऐतिहासिक उपन्यास है। यशपाल जी का 'दिव्या' एक काल्पनिक ऐतिहासिक उपन्यास है। उन्होंने ने इसे मार्क्सवादी दृष्टिकोण से लिखा है। इस उपन्यास की नायिका दिव्या अनेक प्रकार के संघर्ष झेलती है। यह एक रोमांस विरोधी उपन्यास

है। यशपाल जी की दिव्या भगवतीचरण वर्मा की चित्रलेखा से इस मामले में अलग है कि जहां चित्रलेखा को परिस्थितियों के कारण जीवन में कोई राह नहीं सूझती, वही दिव्या में राह की खोज है। 'अमिता' यशपाल जी का दूसरा ऐतिहासिक उपन्यास है, किन्तु इसमें वह ऊंचाई नहीं है जो 'दिव्या' में है।

इतिहास के मन्थन से प्राप्त अनुभव के अनेक प्रयत्नों में सबसे प्रकाशमान तथ्य है–मनुष्य भोक्ता नहीं, कर्ता है। सम्पूर्ण माया मनुष्य की ही क्रीड़ा है। इसी सत्य को अनुभव कर हमारे विचारकों ने कहा था–''न मानुषात् श्रेष्ठतर हि किंचित् !'' मनुष्य से बड़ा है–केवल उसका अपना विश्वास और स्वयं उसका ही रचा हुआ विधान। अपने विश्वास और विधान के सम्मुख ही मनुष्य विवशता अनुभव करता है और स्वयं ही वह उसे बदल भी देता है। इसी सत्य को अपने चित्रमय अतीत की भूमि पर कल्पना में देखने का प्रयत्न 'दिव्या' है। दिव्या' का कथानक बौद्धकाल की घटनाओं पर आधारित है। इस युग की राजनीतिक, सामाजिक एवं धार्मिक परिस्थितियों का कुछ ऐसा सजीव चित्रण इन्होंने किया है कि सब कुछ काल्पनिक होते हुए भी यथार्थ-सा प्रतीत होता है। उपन्यास में वर्णित घटनाएं पाठक के हृदय को गहराई से प्रभावित करती हैं। 'दिव्या' जीवन की आसक्ति का प्रतीक है।

'दिव्या' इतिहास नहीं, ऐतिहासिक कल्पना मात्र है। ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर व्यक्ति और समाज की प्रवृत्ति और गति का चित्र है। लेखक ने कला के अनुराग से काल्पनिक चित्र में ऐतिहासिक वातावरण के आधार पर यथार्थ का रंग देने का प्रयत्न किया है। चित्र में त्रुटि रह जाना सम्भव है। उस समय का हमारा इतिहास यथेष्ट प्राप्य नहीं। जो प्राप्य है, उस पर लेखक का विशेष अधिकार नहीं। अपनी यह न्यूनता जान कर भी लेखक ने कल्पना का आधार उसी समय को बनाया, कारण है-उस समय के चित्रमय ऐतिहासिक काल के प्रति लेखक का मोह। सूक्ष्मदर्शी पाठक के प्रति इनसे अन्याय हो सकता है। असंगति देख कर उन्हें विरक्ति हो सकती है।

यशपाल ने 'दिव्या' उपन्यास में बौद्धकालीन परिवेश के अंतर्गत भारतीय संस्कृति का सुंदर चित्रण किया है। संस्कृति का बाह्य पहलू जिसमें उत्सव-मेले, शौर्य और कला की विभिन्न प्रतियोगिताएँ भारतीय संस्कृति का एक महत्त्वपूर्ण अंग रही है, का उपन्यास में निर्वाह करते हुए यशपाल ने 'दिव्या' का प्रारंभ किया है। यशपाल ने 'दिव्या' में नृत्य-कला–संगीत का न केवल चरमोत्कर्ष दिखाया है परंतु एक सजग रचनाकार के दायित्व का निर्वाह करते हुए कला-जीवी स्त्रियों

की करुण स्थिति की भी अभिव्यक्ति की है। जिस बौद्धकालीन रूढ़ियों और धर्म के कठोर नियमों ने दिव्या को ठुकराया था उसी दिव्या द्वारा यथार्थवादी दृष्टिकोण वाले मारिश का वरण करवाकर यशपाल ने आधुनिक नारी स्वातंत्य के विचार बोध का समर्थन किया है। शौर्य प्रदर्शन की प्रतियोगिता में यशपाल ने हमारी संस्कृति के कलंक समान दासप्रथा और वर्णव्यवस्था की कुरीतियों का यथार्थ करके निरूपण सामंतवादी और आभिजात्यवादी व्यवस्था पर भी प्रहार किये हैं। उपन्यास के उत्तरार्ध में अपने बल पर पृथुसेन विदेशी आक्रांता केन्द्रस पर विजय प्राप्त कर सागल का मुख्य सेनापति और राज्य का अग्रणी बनता है जिसमें यशपाल ने जन्मगत वर्णव्यवस्था को तोड़कर कर्म के आधार पर व्यक्ति की महत्ता स्वीकृत की है। वहीं उपन्यास के अन्त में आभिजात्य वर्ग की ही तरह भोग-विलास में लिपटे पृथुसेन का भी राजनीति की कुटिल चालों द्वारा पराभाव दिखाकर शासन व्यवस्था की शिथिलता का यथार्थ आलेखन किया है। जिस भारतीय संस्कृति ने नारी को देवी कह कर महत्त्वपूर्ण स्थान प्रदान किया था वही परिवर्तित काल में दीन-हीन होकर, पुरुष की भोग्या मात्र बनकर रह जाती है। नारी के अस्तित्त्व की पहचान की समस्या का मार्मिक निरूपण भी यशपाल ने दिव्या के माध्यम से प्रस्तुत किया है।

धार्मिक आस्था में विश्वास रखनेवाली जनता के समक्ष बौद्ध धर्म की क्रूरता का संकेत निश्चय ही पाठक वर्ग के समक्ष प्रश्न खड़ा कर देता है। मूलतः मारिश बौद्धकालीन परिवेश का प्रगतिशील विचारक है जो भारत के प्रथम निरीश्वरवादी दार्शनिक चार्वाक के मत का अनुमोदन करते हुए, बौद्धकालीन धर्म और समाज में रहते हुए भी ईश्वर, धर्म, भाग, कर्मफल की तर्क की कसौटी पर व्याख्या करता है तथा नारी को सृष्टि की आदि शक्ति मानते हुए समाज में सम्मानजनक, पुरुष के समकक्ष स्थान प्रदान करता है। परमात्मा-जीवात्मा, भाग्य-कर्मफल आदि के कारण जीवन की निरर्थकता स्वीकार कर लेने वाली रत्नप्रभा और अंशुमाला को सांस्कृतिक-धार्मिक संकुचित दृष्टि से मुक्त करने वाला, सांस्कृतिक चेतना का पक्षधर मारिश, यशपाल के विचारों को ही प्रस्तुत करता है। धर्म और संस्कृति की आड़ में कुटिल राजनीति खेलने वाली सामंतशाही शासन व्यवस्था के यथार्थ का यशपाल ने कलात्मक ढंग से निरूपण किया है। कुल मिलाकर यशपाल ने कला, संगीत, न्याय, दर्शन और शौर्य जैसे भारतीय संस्कृति के मूल्यवान अंगों का सफलतापूर्वक निरूपण किया है वहीं दूसरी तरफ वर्ण-व्यवस्था, दास-प्रथा, धार्मिक रूढ़ियाँ, नारी-स्वातंत्य की

समस्या और राजनीति व शासन-व्यवस्था की अनैतिकता पर कुठाराघात करते हुए सांस्कृतिक चेतना की अभिव्यक्ति की है।

अतीत के रंग-रूप की रक्षा के लिए 'दिव्या' में कुछ असाधारण भाषा और शब्दों का प्रयोग आवश्यक हुआ है। इन शब्दों की अर्थसहित तालिका पुस्तक के अंत में दे दी गई है।

'अपने ऐतिहासिक ज्ञान की न्यूनता को स्वीकार करता हूँ। यदि लखनऊ म्यूजियम के अध्यक्ष श्री वासुदेवशरण अग्रवाल, पी.एच.डी. और बम्बई प्रिंस-आफ वेल्स म्यूजियम, पुरातत्त्व विभाग के अध्यक्ष 'श्री मोतीचन्द', पी.एच.डी. तथा 'श्री भगवतशरण उपाध्याय' का उदार सहयोग मुझे प्राप्त न होता तो पुस्तक सम्भवतः असह्य रूप से त्रटिपूर्ण होती। लखनऊ बौद्ध-विहार के वयोवृद्ध 'महास्थविर भदन्त बोधानन्द' के प्रति भी मैं कृतज्ञ हूँ। उनकी कृपा से बौद्ध परिपाटी के विषय में जानने की सुविधा हुई।

बौद्धकालीन वेश-भूषा और वातावरण को हृदयंगम करने में विशेष सहायता अजन्ता और एलोरा की यात्रा से मिली। अजन्ता और एलोरा के कलाकारों के प्रति कलाप्रेमी संसार सदा आभारी रहेगा, परन्तु इस कला के दर्शन के लिए मैं अपने मित्र और चिकित्सक 'डॉक्टर प्रेमलाल शाह' का कृतज्ञ हूँ। बहुत समय से यह पुस्तक लिखने के लिये इस यात्रा का विचार था परन्तु कठिन समय में असुविधाओं के विचार से शैथिल्य और निरुत्साह रहा। डॉक्टर ने घसीट कर कर्तव्य पूरा कराया। इसी से यह काल्पनिक चित्र पुस्तक का रूप ले पाया है।

सबसे अधिक आभारी हूँ मैं अपनी प्रेरणा के स्रोत अपने पाठकों का जिनके बिना कला की साधना सम्भव नहीं। --यशपाल (19 मई, 1945)

संस्कृति मानव समाज द्वारा संचित नित-नवीन अनुभवों की उत्तरोत्तर संवर्च्धत पूँजी है। मनुष्य समाज में जन्म लेता है, समाज और उसकी परंपरा से सीखता है और पर्याप्त अनुभव प्राप्त करने के पश्चात् उस समाज के मूल्यों, मान्यताओं, कला, चिंतन में यथाशक्ति योगदान देकर अपनी सांस्कृतिक धरोहर में अभिवृद्धि करता है। शनैः-शनैः संस्कृति का क्रमशः विकास होता है, वह संवर्च्धत होती है। इस प्रकार मनुष्य विरासत में प्राप्त संस्कृति का उत्कर्ष और परिष्कार करता है। चूँकि संस्कृति मनुष्य द्वारा पीढ़ी-दर-पीढ़ी किये गये प्रयत्नों की अर्जित पूँजी है, अतः प्रत्येक समाज की संस्कृति में एक समान स्तर मिलना संभव नहीं है। एक से दूसरे समाज में गति करने पर सांस्कृतिक भिन्नता के विविध स्तर सहज ही देखें जा सकते हैं।

व्युत्पत्ति की दृष्टि से संस्कृति शब्द संस्कृत की 'कृ' धातु से बना है। 'lE' उपसर्ग के साथ के योग से संस्कृति शब्द बना है, जिसका अर्थ है 'परिमार्जित अथवा परिष्कृत करना'। हिन्दी में संस्कृति शब्द अँगरेज़ी के 'कल्चर' शब्द के पर्याय के रूप में प्रयुक्त होता है, जो cultivate (कल्टिवेट)शब्द से व्युत्पन्न है। इस प्रकार संस्कृति शब्द में संस्कार का भाव है जो व्यक्ति को समाज, उसके परिवेश से प्राप्त होता है और इसी संस्कार के बल पर परिष्कृत हुए लोगों से समाज बनता है जो उस समाज की संस्कृति की अस्मिता का कारण बनती है।

संस्कृति व्यक्ति के विचारों को बल प्रदान करती है, जीवन की जटिल अवस्थाओं में मार्गदर्शक का काम करती है। व्यक्ति जिस सांस्कृतिक परंपरा में जन्म पाकर विकसित होता है, उसी के प्रतीकों के द्वारा अपने आप को संप्रेषित करता है। वह प्रतीक ही है जिसके माध्यम से व्यक्ति वस्तुओं, विचारों और अभिव्यक्तिओं पर अपने अर्थ और मूल्यों को आरोपित करता है, स्वयं को संप्रेषित करता है। इस प्रकार संस्कृति ही वह तत्त्व है जो हमारी चेतना, हमारे विचार को समृद्ध, सुंदर विवेकशील और सर्जनशील बनाती है। भौतिक स्तर पर जीवन निर्वाह में उपयोगी ज्ञान एवं क्रिया-कलापों में खोए मनुष्य को इस स्थूल धरातल से उपर उठाने में संस्कृति एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है।

संस्कृति से समान अर्थ रखने वाला शब्द है सभ्यता, संस्कृति और सभ्यता के बीच की भेदक रेखा को सुलझाते हुए डॉ. देवराज ने संस्कृति को इस प्रकार परिभाषित किया है–"सभ्यता से तात्पर्य उन आविष्कारों, उत्पादन के साधनों एवं सामाजिक राजनीतिक संस्थाओं से समझना चाहिए जिनके द्वारा मनुष्य की जीवन यात्रा सरल होती है एवं स्वतंत्रता का मार्ग प्रशस्त होता है। इसके विपरीत संस्कृति का अर्थ चिंतन तथा कलात्मक सर्जन की वे क्रियाएं समझना चाहिए, जो मानव व्यक्तित्त्व और जीवन के लिए साक्षात् उपयोगी न होते हुए उसे समृद्ध बनाती हैं। इस दृष्टि से हम विभिन्न शास्त्रों, दर्शन, आदि में होने वाले चिंतन, साहित्य, चित्रांकन आदि कलाओं एवं परहित साधन आदि नैतिक आदर्शो तथा व्यापारों को संस्कृति की संज्ञा देंगे।" साहित्य सृजन में संस्कृति की महत्वपूर्ण पीठिका का समर्थन करते हुए डॉ. देवराज ने साहित्य समीक्षा और संस्कृतिबोध (1977) में संस्कृति को एक प्रतिमान के रूप में प्रस्तावित करते हुए अनिवार्य माना है, "प्रतिमान के रूप में संस्कृति को मैं उतना ही महत्व देता हूँ, जितना क्लासिकी विचारक, काव्य के प्राण तत्त्व के रूप में, रस को देते हैं।"

आधुनिक हिन्दी उपन्यास साहित्य में यशपाल का नाम बड़े आदर के साथ लिया जाता है। उनके 'दादा कामरेड़', 'पाट कामरेड़',जैसे उपन्यास हिन्दी साहित्य में महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। 'दिव्या' और 'अमिता' भी उनके बहुचर्च्चचत, बौद्धकालीन परिवेश की पृष्ठभूमि में निर्मित उपन्यास हैं। इस दृष्टि से, 'दिव्या' विशेष रूप से उल्लेखनीय उपन्यास है। यशपाल ने इस उपन्यास में बौद्धकालीन संस्कृति, समाज, कला और दर्शन की अविस्मरणीय गाथा को अभिव्यक्ति प्रदान की है। यशपाल की सृजन-कला का संस्पर्श पाकर तत्कालीन कला और संस्कृति पाठकों के हृदय में अपनी जगह बना लेती है। उपन्यास के प्राक्कथन में ही यशपाल ने ऐतिहासिक परिवेश को यथार्थ के ताने-बाने में बुन कर कथ्य को प्रस्तुत करने की ओर इंगित किया है, "कला के अनुराग से काल्पनिक चित्र में ऐतिहासिक वातावरण के आधार पर यथार्थ का रंग देने का प्रयत्न किया है।"

जब हम किसी रचना में सांस्कृतिक पक्ष का अध्ययन करते हैं तब हमारा ध्यान प्रायः दो पहलू पर केन्द्रित होता है –एक संस्कृति का बाह्य पक्ष, जिसमें समाज के रीति-रिवाज, कला-नृत्य, मेले-उत्सव आदि का समावेश होता है तथा दूसरा वैचारिक पक्ष जो कथ्य की आत्मा के रूप में कृति को जीवंतता प्रदान करता है। यशपाल ने दिव्या में संस्कृति के दोनों पक्षों का आलेखन किया है। भारतीय सांस्कृतिक परंपरा में मेला-उत्सव, कला-कौशल की प्रतियोगिताएँ और शौर्य-प्रदर्शन जनता के बीच प्रचलित थे। व्यस्त जीवन में मनोरंजन प्राप्ति एवं प्रजा में समूह भावना के विकास हेतु ऐसे आयोजन किये जाते थे। ऐसे आयोजनों से एक तरफ राज्य अपने विशेष कार्यो को लोकतांत्रिक रीति से जनता के समक्ष प्रस्तुत करता था तो दूसरी तरफ जनता की सहभागिता के भी दर्शन होते थे। 'दिव्या' उपन्यास की शुरूआत चैत्री-पूर्णिमा के दिन सागल में आयोजित मधु-पर्व के उत्सव से होती है। "सागल के मनोहर और विशाल ताल पुष्करणी में जल और तर पर जन लहरें ले रहा था। सूर्यास्त में अभी एक पहर शेष था, परंतु जहाँ तक दृष्टि जाती, जन समूह उमड़ रहा था। उस बढ़ते हुए विस्तार में जन-उत्सव का मण्डप ऐसा लग रहा था जैसे वर्षा काल के बाद से दूर तक फैल गए नदी के जल में कोई छोटा सा द्वीप हो।"

इस उत्सव में तत्कालीन परिवेश के अनुसार शस्त्रधारी सैनिक कुलीन लोगों का रक्षण कर रहे हैं। उत्सव में विशिष्ट परिधान में सजी कलनारियों के आकर्षक रूप का बड़ा ही लालित्यपूर्ण चित्रांकन किया गया है। वेदी के चारों तरफ़ दीप-दंड प्रज्वलित है। वयोवृद्ध मिथोद्रश, महाप्रतापी, धर्मिक यवनराज

मिलिन्द और मद्र सेनापति आसन ग्रहण करते हैं, सांस्कृतिक परंपरा के अनुसार मंगल वाद्य कर्णप्रिय नाद के साथ मंगलाचरण प्रस्तुत किया जाता है, चारण तुर्यनाद करते हुए कला की देवी राजनर्तकी मल्लिका के सभास्थल में प्रवेश की घोषणा करते हैं। "कला की अधिष्ठात्री, नगर श्री, राजनर्तकी देवी मल्लिका सभास्थल में पधार रही है।"

इस समग्र वर्णन को पढ़कर पाठक भारतीय संस्कृति के ऐतिहासिक चित्र-बिम्बों की मनोहर आभा से अभिभूत हुए बिना नहीं रह सकता। कला की अधिष्ठात्री मल्लिका का सम्मान मात्र मल्लिका का सम्मान नहीं है, यह कला का सम्मान है और आगे के कार्यक्रम में तक्षशिला और मगध से शस्त्र-शास्त्र की शिक्षा प्राप्त करके लौटे युवकों की प्रतियोगिता में शौर्य संपन्न ज्ञान के सुदृढ़ सांस्कृतिक उत्कर्ष का विधान है।

कला की अधिष्ठात्री मल्लिका की शिष्या दिव्या 'सरस्वती-पुत्री' का सम्मान प्राप्त करती है और सर्वश्रेष्ठ खड़गधारी पृथुसेन को पुष्पों से बना मुकुट प्रदान करती है। सागल राज्य में सम्मान की इस सांस्कृतिक परंपरा के अनुसार श्रेष्ठ खड़गधारी 'सरस्वती-पुत्री' का सम्मान प्राप्त करनेवाली शिष्या की पालखी को कंधा देता है। इस सांस्कृतिक परंपरा के अनुसार पृथुसेन जब पालकी को कंधा देने अग्रसर होता है तब कुलीन वंश के युवक रूद्रधीर द्वारा उसे कंधा देने से रोक लिया जाता है। दास-पुत्र पृथुसेन जो अब नगर के अग्रणी महाश्रेष्ठी प्रेस्थ का पुत्र है, जीवन में प्रथम बार हुए वर्ग-भेद के कटु अनुभव से आवेश में आकर खड़ग निकाल कर अपने अधिकार हेतु लड़ने के लिए तैयार हो जाता है। यहाँ पर यशपाल ने तत्कालीन समाज में प्रचलित दास प्रथा को सूचित करते हुए 'जन्म का अपराध' पर प्रश्न उठाया है जिसमें रूढ़िवादी परंपरा के अवगुण पर तीक्ष्ण प्रहार करते हुए, दिव्या के धर्मस्थ के साथ वाद-विवाद में मनुष्य को मनुष्य की दृष्टि से देखने की संस्तुति की है।

धर्मस्थ देवशर्मा के न्यायालय का वर्णन करते हुए यशपाल ने दर्शन, कला और संस्कृति की त्रिवेणी से समृद्ध परिवेश को प्रस्तुत किया है। श्रुति-स्मृति, दर्शन, न्याय और तर्क पर गोष्ठी-सुख प्राप्त करती मनीषियों की सभा हमारी संस्कृति की समृद्धि की ओर संकेत करती है। यथा -"बहुद्रष्टा, उदार, महापण्डित, धर्मस्थ का सम्पन्न प्रासाद विद्या और संस्कृति का श्रेष्ठ केन्द्र था। उस प्रासाद में श्रुति-स्मृति, दर्शन, न्याय और तर्क का मन्थन वर्णाश्रम नीति के

पण्डितों, यवन दार्शनिकों और बौद्ध भिक्षुओं द्वारा मत-निर्णय और गोष्ठी-सुख के लिए भी निरंतर होता रहता है।"

दिव्या, जो प्रपितामह धर्मस्थ देवशर्मा के सबसे निकट है, में ज्ञान, कला और संस्कृति का सुंदर समन्वय है। पृथुसेन के लिए न्याय की हिमायत करने वाली दिव्या के तर्कपूर्ण प्रश्न उसके धर्म और न्याय के क्षेत्र के ज्ञान की ओर इंगित करते हैं, जिसके उत्तर खोजने में न केवल धर्मस्थ, बल्कि सुधी पाठक भी कठिनता का अनुभव करते हैं। नृत्य-कला की वह आराधिका है। भारतीय संस्कृति के निर्वाह के अनेक उदाहरण उपन्यास में बिखरे पड़े हैं। आतिथ्य सत्कार की तत्कालीन परंपरा का एक प्रसंग दृष्टव्य है -"दिव्या दासी के हाथों में रजत आधार पर ताम्बूल और अर्घ्य लेकर आस्थानागार में पहुँची दिव्या ने अभ्यागत के सम्मुख बद्ध कर नासिका तक उठाकर नमस्कार के साथ स्वागत किया।

अमिता

'अमिता' उपन्यास साहित्यकार यशपाल का 'दिव्या' की भाँति ऐतिहासिक है। 'अमिता' ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में कल्पना को आधार बनाकर लिखा गया उपन्यास है। इस उपन्यास के प्राक्कथन में यशपाल स्वयं इसके मूल मन्तव्य की ओर इशारा करते हैं-'विश्वशान्ति के प्रयत्नों में सहयोग देने के लिए मुझे भी तीन वर्ष में दो बार यूरोप जाना पड़ा है। स्वभावत: इस समय (1954-1956) में लिखे मेरे इस उपन्यास में, मुद्दों द्वारा लक्ष्यों को प्राप्त करने अथवा समस्याओं को सुलझाने की नीति की विफलता का विचार कहानी का मेरुदंड बन गया है।'

यशपाल जी का नया उपन्यास 'अमिता' प्रियदर्शन सम्राट अशोक की कलिंग विजय के आधार पर लिखा गया है। इसके बहुत पहले यशपाल जी ने अतीत से राजनीतिक कथानक लेकर 'दिव्या' नामक उपन्यास लिखा था।

'अमिता' यशपाल का ऐतिहासिक उपन्यास है। अशोक प्रथम बार कलिंग पर आक्रमण करता है तो कलिंग के सिपाही बहादुरी से लड़ते है किन्तु सम्राट की मृत्यु हो जाती है। कलिंग की महारानी बौद्ध धर्म में दीक्षित हो जाती है। महामंत्री और सेनापति महारानी की पुत्री अमिता के नाम पर शासन करते है। अन्तत: अशोक विजयी होता है और अमिता की बालसुलभ सरलता से उसका हृदय परिवर्तन हो जाता है।

कलिंग पर अशोक के आक्रमण की घटना में परिवर्तन करके यशपाल ने इस उपन्यास का केन्द्र कलिंग की बालिका राजकुमारी अमिता को बनाया है। उपन्यास के माध्यम से वे जो सन्देश युद्ध-त्रस्त संसार को देना चाहते हैं, वह उन्हीं के शब्दों में : 'मनुष्य ने अपने अनुभव और विकास से शान्ति की रक्षा का अधिक विश्वास योग्य उपाय खोज लिया है। यह सत्य बहुत सरल है। मनुष्य अन्तर्राष्ट्रीय रूप में दूसरों की भावना और सदिच्छा पर विश्वास करे, दूसरों के लिए भी अपने समान ही जीवित रहने और आत्म-निर्णय से सह-अस्तित्त्व के अधिकार को स्वीकार करे। सभी राष्ट्र और समाज अपने राष्ट्रों की सीमाओं में, अपने सिद्धान्तों और विश्वासों के अनुसार व्यवस्था रखने में स्वतन्त्र हों। जीवन में समृद्धि और सन्तोष पाने का मार्ग अपनी शक्ति को उत्पादन में लगाना है, दूसरों को डरा कर और मारकर छीन लेने की इच्छा करना नहीं है।'

अमिता नायिका प्रधान उपन्यास है और अमिता इस उपन्यास की नायिका है। अन्य पात्रों में महारानी नन्दा, आचार्य सुकण्ठ, श्रेष्ठि सौमित्र, दासी हिता, दास मोद और अशोक आदि है। सम्पूर्ण उपन्यास में अमिता में बाल सुगम सरलता और बालहठ की अभिव्यक्ति हुई है। महारानी नन्दा बौद्ध धर्म के पति आस्था रखने वाली नारी है और आचार्य सुकण्ठ में देश प्रेम की अभिव्यक्ति हुई है। दासी हिता और दास मोद उस युग की दास प्रथा के परिचायक है। श्रेष्ठि सौमित्र उस युग के शोषक वर्ग का प्रतिनिधित्व करते है। अशोक के ऐतिहासिक रुप को अभिव्यक्त करते हुए हृदय परिवर्तन के सिद्धान्त का पुतला बना दिया है। नायिका अमिता, महारानी नन्दा और आचार्य सुकण्ठ आदि पात्र लेखक की सिद्धान्तवादिता के आग्रह से मुक्त है, किन्तु दास मोद और दासी हिता के द्वारा लेखक युग के शोषण का चित्र खीचना चाहता है। दासी हिता और दास मोद की प्रेम कहानी ने उनकी मानव हदय की रागात्मक वृत्तियो का परिचय दिया गया है। अमिता एक सप्राण पात्र है किन्तु वह पूर्ण रुप से सपाट है, उसके चरित्र में उतार-चढ़ाव का अभाव है। महारानी नन्दा और आचार्य सुकण्ठ, दासी हिता, दास मोद और श्रेष्ठि सौमित्र सभी सपाट है, जीवन के उतार चढावों का उनमे अभाव है। आचार्य सुकण्ठ और महारानी नन्दा राजनीति के कुचक्र बनकर रह गए हैं और अशोक की तरह उनमें भी लेखक प्राण चेतना नहीं फूँक सका है। सभी 'प्रतिनिधि परिस्थितियों के प्रतिनिधि पात्र' हैं और वे अपनी अपनी परिस्थितियों का प्रतिनिधित्व करते है।

'अमिता' इतिहास नहीं, ऐतिहासिक कल्पना मात्र है। ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर व्यक्ति और समाज की प्रवृत्ति और गति का चित्र है। लेखक ने कला के अनुराग से काल्पनिक चित्र में ऐतिहासिक वातावरण के आधार पर यथार्थ का रंग देने का प्रयत्न किया है।

यशपाल ने बालिका अमिता की बाल सुलभ क्रिया कलापों का सुंदर चित्रण किया है। –बालिका महाराजकुमारी प्रति दो पग दौड़कर तीसरे पग पर उछलती आ रही थी। उनके पीछे-पीछे आता वृद्ध कंचुकी उद्दाल लम्बे चोंगे पर राजकीय चिह्न बाँधे, द्रुत गति के कारण हाँफ रहा था। उद्दाल का चेहरा अतिवार्धक्य के कारण पीले पड़ गये दाढ़ी-मूँछ से ढँका हुआ था। उसके माथे पर अनुभव की रेखायें थीं जिन्हें उत्तरदायित्व के बोझ ने और भी गहरा कर दिया था। उद्दाल के पीछे हाँफती हुई प्रौढ़ा दासी वापी आ रही थी। वापी के हाथ में राजकुमारी के लिए लाल चमड़े के छोटे-छोटे, सुन्दर जूते थे।

झूठा सच

झूठा सच यशपाल द्वारा लिखित प्रसिद्ध उपन्यास है। हिन्दी साहित्य में अगर सबसे श्रेष्ठ उपन्यास चुनने के लिए कहा जाए तो एक नाम सबसे पहले आता हैं और वो है यशपाल के द्वारा लिखा गया –झूठा सच। यह उपन्यास 'वतन और देश' और 'देश का भविष्य' दो भागों में लिखा गया है।

''यह कहना अतिशयोक्ति न होगा कि 'झूठासच' हिन्दी का सर्वोत्कृष्ट यथार्थवादी उपन्यास है।...'झूठा सच' उपन्यास-कला की कसौटी पर खरा उतरता ही है, पाठकों के मनोरंजन की दृष्टि से भी सफल हुआ है।...इस उपन्यास की गणना हम गर्व के साथ विश्व के दस महानतम उन्यासों में कर सकते हैं।'' –नवनीत, जनवरी, 1959

'झूठा सच' यशपाल जी के उपन्यासों में सर्वश्रेष्ठ है। उसकी गिनती हिन्दी के नये पुराने श्रेष्ठ उपन्यासों में होगी-यह निश्चित है। यह उपन्यास हमारे सामाजिक जीवन का एक विशद् चित्र उपस्थित करता है। इस उपन्यास में यथेष्ट करुणा है, भयानक और वीभत्स दृश्यों की कोई कमी नहीं। श्रृंगार रस को यथासम्भव मूल कथा-वस्तु की सीमाओं में बाँध कर रखा गया है। हास्य और व्यंग्य ने कथा को रोचक बनाया है और उपन्यासकार के उद्देश्य को निखारा है। –रामविलास शर्मा

'झूठा सच' देश विभाजन और उसके परिणाम के चित्रण की काफी ईमानदारी से लिखी गई कहानी है। पर यह उपन्यास इसी कहानी तक ही सीमित नहीं है। देश-विभाजन की सिहरन उत्पन्न करने वाली इस कहानी में स्नेह, मानसिक और शारीरिक आकर्षण, महात्वाकांक्षा, घृणा, प्रतिहिंसा आदि की अत्यंत सहज प्रवाह से बढ़ने वाली मानवतापूर्ण कहानी भी आपको मिलेगी। ''...'झूठा सच' हिन्दी उपन्यास साहित्य की अत्यंत श्रेष्ठ और प्रथम कोटि की रचना है। –आजकल, अक्टूबर, 1959

काशीनाथ सिंह ने कहा कि यशपाल का उपन्यास झूठा सच हिन्दी साहित्य में एक मील का पत्थर है। इसमें विभाजन की त्रसदी को व्यापक फलक पर प्रस्तुत किया गया है। हिन्दी में विभाजन के बारे में लिखा गया यह सर्वोत्तम उपन्यास है।

झूठासच में सच को कल्पना से रंग कर उसी जन समुदाय को सौंप रहा हूँ जो सदा झूठ से ठगा जाकर भी सच के लिये अपनी निष्ठा और उसकी ओर बढ़ने का साहस नहीं छोड़ता। -यशपाल

यशपाल में कथा कहने की अद्भुत क्षमता थी। यशपाल का 'झूठा सच' स्वतंत्रता पूर्व और प्राप्ति के बाद के यथार्थ को चित्रित करने वाला उपन्यास है। इसका पहला खण्ड 'वतन और देश' और दूसरा खण्ड 'देश का भविष्य' आजादी के पूर्व और अजादी के बाद के भारत की संघर्ष कथा को बड़ी सजीवता से रूपायित करते हैं। इस उपन्यास ने सिद्ध कर दिया कि यशपाल बहुत विशाल फलक पर जीवन के विविध रूपों, आयामों, समस्याओं और जटिलताओं को अपने ढ़ंग से प्रभावशाली रूप में प्रस्तुत कर सकते हैं। इसलिए इस उपन्यास को औपन्यासिक महाकाव्य की संज्ञा दी जा सकती है।

'झूठा सच' के दोनों भागों –'वतन और देश' और 'देश का भविष्य' में देश के सामयिक और राजनीतिक वातावरण को यथा-सम्भव ऐतिहासिक यथार्थ के रूप में चित्रित करने का यत्न किया गया है। उपन्यास के वातावरण को ऐतिहासिक यथार्थ का रूप देने और विश्वसनीय बना सकने के लिये कुछ ऐतिहासिक व्यक्तियों के नाम ही आ गये हैं, परन्तु उपन्यास में वे ऐतिहासिक व्यक्ति नहीं, उपन्यास के पात्र हैं। कथानक में कुछ ऐतिहासिक घटनायें अथवा प्रसंग अवश्य हैं, परन्तु सम्पूर्ण कथानक कल्पना के आधार पर उपन्यास है, इतिहास नहीं है। झूठा सच उपन्यास के पात्र तारा, जयदेव, कनक, गिल, डाक्टर

नाथ, नैयर, सूद जी, सोमराज, रावत, ईसाक, असद और प्रधान मंत्री भी काल्पनिक पात्र हैं।

अप्सरा का शाप

स्वातन्त्र्योत्तर भारत के शिखरस्थ लेखकों में प्रमुख, यशपाल ने अपने प्रत्येक उपन्यास को पाठक के मन-रंजन से हटाकर उसकी वैचारिक समृद्धि को लक्षित किया है। विचारधारा से उनकी प्रतिबद्धता ने उनकी रचनात्मकता को हर बार एक नया आयाम दिया, और उनकी हर रचना एक नए तेवर के साथ सामने आई।

'अप्सरा का शाप' में उन्होंने दुष्यन्त-शकुन्तला के पौराणिक आख्यान को आधुनिक संवेदना और तर्कणा के आधार पर पुनराख्यायित किया है। यशपाल के शब्दों में -'शकुन्तला की कथा पतिव्रत धर्म में निष्ठा की पौराणिक कथा है। महाभारत के प्रणेता तथा कालिदास ने उस कथा का उपयोग अपने-अपने समय की भावनाओं, मान्यताओं तथा प्रयोजनों के अनुसार किया है। उन्हीं के अनुकरण में 'अप्सरा का शाप' के लेखक ने भी अपने युग की भावना तथा दृष्टि के अनुसार शकुन्तला के अनुभवों की कल्पना की है।'' उपन्यास की केन्द्रीय वस्तु दुष्यन्त का शकुन्तला से अपने प्रेम सम्बन्ध को भूल जाना है, इसी को अपने नजरिए से देखते हुए लेखक ने इस उपन्यास में नायक 'दुष्यन्त' की पुनर्स्थापना की है और बताया है कि नायक ने जो किया, उसके आधार पर आज के युग में उसे धीरोदत्त की पदवी नहीं दी जा सकती।

इस देश को 'भारत' नाम महाराज भरत के प्रताप से मिला है। प्रतापी भरत की माता सती शकुन्तला महाराज दुष्यंत की रानी थी। शकुन्तला राजर्षि विश्वामित्र और अप्सरा मेनका की सन्तान थी। भरत की माता शकुन्तला के जन्म तथा जीवन के प्रसंग पुराणों, महाभारत तथा प्राचीन काव्यों में यत्र-तत्र मिलते हैं, परन्तु ये वर्णन स्फुट हैं। शकुन्तला के जीवन-वृत्तान्त के अनेक व्यौरे ऐसे थे, जिनका महत्व सम्भवत: तत्कालीन समाज की दृष्टि में विशेष नहीं था। अत: उस समय के इतिहासकारों और कवियों ने भी उन घटनाओं का वर्णन नहीं किया है। आधुनिक समाज की परिस्थितियों, समस्याओं और चिन्तन की दृष्टि से शकुन्तला के जीवन के, तत्कालीन लेखकों द्वारा उपेक्षित अनुभवों पर भी विचार करना उपयोगी होगा। पौराणिक वर्णन के अनुसार शकुन्तला की माता मेनका इस लोक की नारी नहीं, देवलोक की अप्सरा थी। एक समय देवताओं पर विकट संकट

आ गया था। उस संकट का उपाय करने के लिये देवराज इन्द्र ने मेनका को कुछ समय के लिये नारी शरीर धारण कर मर्त्यलोक में रहने का आदेश दिया था। उस प्रसंग का उल्लेख इस प्रकार है–

महर्षि विश्वामित्र ब्रह्मऋर्षि पद प्राप्त करना चाहते थे। विश्वामित्र ने ब्रह्मत्व के अधिकार और पद को पाने के लिये घोर तप किया। ब्राह्मणों और देवताओं ने विश्वामित्र के तप की श्लाघा से उन्हें महर्षि से ऊँचा, राजर्षि पद देना स्वीकार कर लिया, परन्तु विश्वामित्र के क्षत्रिय कुलोद्भव होने के कारण देवताओं और ब्राह्मणों ने उन्हें समाज के विधायक ब्रह्मर्षि का पद देना स्वीकार न किया।

विश्वामित्र देवताओं और ब्राह्मणों की व्यवस्था और शासन में ब्राह्मणों के प्रति पक्षपात देखकर देवताओं की सृष्टि और ब्राह्मणों की व्यवस्था से असंतुष्ट हो गये। उन्होंने ब्रह्मर्षि पद प्राप्त करने की प्रतिज्ञा पूरी करने के लिये देवताओं और ब्राह्मणों द्वारा नियंत्रित तथा शासित सृष्टि और व्यवस्था की प्रतिद्वन्द्विता में नयी सृष्टि तथा नयी व्यवस्था की रचना का निश्चय कर लिया। देवताओं और ब्राह्मणों ने सृष्टि की व्यवस्था पर अपने अधिकार के प्रति विश्वामित्र की इस चुनौती को क्षुद्र मानव का क्षुब्ध अहंकार ही समझा, परन्तु विश्वामित्र दृढ़ निश्चय से नयी सृष्टि की व्यवस्था की रचना के लिये तप में लग गये।

अनसूया क्षोभ से अधीर हो, परन्तु विनय से अंजलि-बद्ध हो बोली–'महाराज, विशालमति नीतिज्ञों की ऐसा विस्मृति से तो माया का भ्रम होता है। हम तीनों अल्पमति जो महाराज के रूप में, मुद्रा, कंठस्वर, सब कुछ पहचान रहे हैं और महाराज को, आश्रम कन्या के प्रति अनुराग की अधीरता में कूप से स्वयं जल कलश खींचकर वाटिका सींचने की इच्छा, शकुन्तला के स्नेह के लिए आश्रम के पोष्य कुरंग से स्पर्धा, शकुन्तला के पाणिग्रहण की इच्छा से माता गौतमी के सम्मुख प्रार्थना, शकुन्तला के गर्भ से अपने पुत्र को राज्य का उत्तराधिकार देने की प्रतिज्ञा, इसके साथ अनेक दिवा-रात्रि का सहवास, इसे सम्मानपूर्वक राज प्रासाद में बुला लेने का आश्वासन, सब कुछ विस्मृत हो गया।

दुष्यन्त भृकुटी उठाकर विचार में मौन रहा और उसने अनुसूया से प्रश्न किया–'देवी का क्या अभिप्राय है? देवी किस प्रसंग का संकेत कर रही हैं।'

7

अमृतलाल नागर

नागर जी ने साहित्य को जीवन का बहुत ही महत्वपूर्ण अंग माना है, उनका कहना है कि जीवन चलाने के लिए साहित्य से अलग रहकर दूसरे काम भी व्यक्ति को करने पड़ते हैं। उन्होंने वस्तुत: परिवार एवं समाज दोनों के प्रति व्यक्ति का उत्तरदायित्व माना है। उनके उपन्यासों में स्वस्थ सामाजिक जीवन दर्शन की अभिव्यक्ति के मूल में यही कारण है।

नागर जी राजनीति और राजनीति की दलदल से सदैव बहुत दूर रहे-साहित्य एवं राजनीति दोनों ही प्रकार की राजनीतिक दलदल से। किसी भी राजनीतिक विचारधारा के प्रति कभी भी उनका लगाँव नहीं रहा। उनका बाह्य एवं अन्तर सब कुछ विशुद्ध भारतीय है।

डॉ. रामबिलास शर्मा ने उनके विषय में लिखा है कि "नागर जी जो बात कहते हैं, बेलाग कहते हैं, वह बेलाग होती है और उसे वह मुँह पर कहते हैं। मुझसे ही नहीं, वर्षों से बहुतों से उनकी दोस्ती है, शायद उसका रहस्य यहीं है, वह अपनी पीढ़ी के तमाम लेखकों को जोड़ने वाले और नई-पुरानी पीढ़ी के बीच की कड़ी हैं वह निष्ठावान साहित्यकार हैं। साहित्यिक मूल्यों के प्रति उनकी अटूट आस्था है। यशपाल जी ने इनकी एक कमजोरी के प्रति हमारा ध्यान खींचा है और वह कमजोरी है-उनका अन्याय के प्रति आवेश में आपे से बाहर हो जाना।"

उपन्यासकार अमृतलाल नागर-नागरजी की उपन्यास-सम्पदा विपुल है। उनके विशेष प्रसिद्ध उपन्यास हैं-सेठ बाँकेमल, महाकाल, बूंद और समुद्र तथा

अमृत और विष। इनके अतिरिक्त 'नवाबी मसनद', 'गदर के फूल', 'शतरंज के मोहरे', 'ये कोठे वालियाँ' तथा 'सुहाग के नूपुर' हल्के किन्तु बहुचर्चित उपन्यास हैं। नागरजी के अधिकांश उपन्यास सामाजिक हैं।

उनमें समाज का यथार्थपूर्ण सजीव चित्रण पाया जाता है। सेठ बाँकेमल इसी प्रकार का एक हास्य व्यंग्यपूर्ण उपन्यास है, जिसका प्रकाशन सन् 1955 में हुआ. इसमें दो पात्र हैं-सेठ बाँकेमल और पारसनाथ चौबे। इन दो पात्रों के माध्यम से उपन्यासकार ने नवीन और प्राचीन युगों का सजीव चित्रण प्रस्तुत किया है।

द्वितीय विश्वयुद्ध के दिनों के भारतीय जीवन की न मालूम कितनी बातों की आलोचना नागरजी के सेठ बाँकेमल हँसी-हँसी में कर जाते हैं। इसमें आगरा की आंचलिक भाषा अपने ठेठ रूप में देखने को मिलती है,

'महाकाल' का प्रकाशन सन् 1947 में हुआ। यह उपन्यास बंगाल के सन् 1943 वाले दुर्भिक्ष की पृष्ठभूमि पर आधारित है। इस उपन्यास में मानवीय दुर्बलताओं का सुन्दर चित्रण किया गया है। यथार्थ चित्रण के साथ प्रेम, अहिंसा, सहानुभूति आदि मानवीय भावनाओं का महत्व प्रदर्शित किया है। 'बूंद और समुद्र' (1956) इनका श्रेष्ठतम उपन्यास है। इसमें व्यष्टि और समष्टि का सामंजस्य प्रस्तुत किया गया है, 'सुहाग के नूपुर' (1960) में यह दिखाया गया है कि केवल नारी का सती रूप ही पुरुष को बल दे सकता है।

ये कोठे वालियाँ' में वेश्या–समस्या के विरुद्ध जेहाद का स्वर मुखर है, 'अमृत और विष' नागरजी का श्रेष्ठ उपन्यास है। इसमें विष रूप में समाज में व्याप्त भ्रष्टाचार और अनैतिकताओं का चित्रण है तथा अमृत को नैतिक मूल्यों के रूप में रूपायित किया गया है।

अमृत अच्छाई का और विष बुराई का प्रतीक है, 'मानस का हंस' में गोस्वामी तुलसीदास की जीवन-कथा यथाशक्ति प्रामाणिक रूप में प्रस्तुत की गई है। 'खंजन नयन' में सूरदास की गाथा को गरिमामय ढंग से प्रस्तुत किया गया है।

अब मैं नाच्यौ बहुत गोपाल में सामाजिक विकृतियों का चित्रण करते हुए उनका पर्यवसान आदर्शवाद में किया गया है। अज्ञेय जी से भेंटवार्ता में नागरजी ने स्वीकार किया है कि मोपासा की कहानियाँ उनकी प्रेरणा का स्रोत रही हैं। उन्होंने मोपासा की 5-6 कहानियों के हिन्दी में अनुवाद भी किए।

जीचन परिचय

अमृत लाल नागर का जन्म 17 अगस्त 1916 ई0 को गोकुलपुरा, आगरा (उत्तर प्रदेश) में एक गुजराती ब्राह्मण परिवार में हुआ। आपके पिता का नाम राजाराम नागर था। आपके पितामह पं. शिवराम नागर 1895 से लखनऊ आकर बस गए थे। आपकी पढ़ाई हाईस्कूल तक ही हुई। फिर स्वाध्याय द्वारा साहित्य, इतिहास, पुराण, पुरातत्त्व व समाजशास्त्र का अध्ययन। बाद में हिन्दी, गुजराती, मराठी, बांग्ला, अंग्रेजी पर अधिकार। पहले नौकरी, फिर स्वतंत्र लेखन, फिल्म लेखन का खासा काम किया। 'चकल्लस' का संपादन भी किया। आकाशवाणी, लखनऊ में ड्रामा प्रोड्यूसर भी रहे।

1932 में निरंतर लेखन किया। शुरूआत में मेघराज इंद्र के नाम से कविताएं लिखीं। 'तस्लीम लखनवी' नाम से व्यंग्यपूर्ण स्केच व निबंध लिखे तो कहानियों के लिए अमृतलाल नागर मूल नाम रखा। आपकी भाषा सहज, सरल दृश्य के अनुकूल है। मुहावरों, लोकोक्तियों, विदेशी तथा देशज शब्दों का प्रयोग आवश्यकतानुसार किया गया है। भावात्मक, वर्णनात्मक, शब्द चित्रात्मक शैली का प्रयोग इनकी रचनाओं में हुआ है।

अमृतलाल नागर ने एक छोटी सी नौकरी के बाद कुछ समय तक मुक्त लेखन एवं हास्यरस के प्रसिद्ध पत्र 'चकल्लस' के सम्पादन का कार्य 1940 से 1947 ई. तक कोल्हापुर में किया इसके बाद बम्बई एवं मद्रास के फिल्म क्षेत्र में लेखन का कार्य किया। यह हिन्दी फिल्मों में डबिंग कार्य में अग्रणी थे। दिसम्बर, 1953 से मई, 1956 तक आकाशवाणी, लखनऊ में ड्रामा, प्रोड्यूसर, उसके कुछ समय बाद स्वतंत्र लेखन का कार्य किया। नागर जी अपने व्यक्तित्त्व और सामाजिक अनुभवों की कसौटी पर विचारों को कसते रहते हैं और जितनी मात्रा में उन्हें खरा पाते हैं, उतनी ही मात्रा में ग्रहण करते हैं। चाहे उन पर देशी छाप हो या विदेशी, पुरानी छाप हो या नयी। उनकी कसौटी मूलभूत रूप से साधारण भारतीय जन की कसौटी है, जो सत्य को अस्थिर तर्कों के द्वारा नहीं, साधनालब्ध श्रद्धा के द्वारा पहचानती है। अन्धश्रद्धा को काटने के लिए वे तर्कों का प्रयोग अवश्य करते हैं, किन्तु तर्कों के कारण अनुभवों को नहीं झुठलाते, फलतः कभी-कभी पुराने और नये दोनों उन पर झुँझला उठते हैं। 'एकदा नैमिषारण्ये' में पुराणों और पौराणिक चरित्रों का समाजशास्त्रीय, अर्द्ध ऐतिहासिक स्वच्छन्द विश्लेषण या 'मानस का हंस' में युवा तुलसीदास के जीवन में 'मोहिनी

प्रसंग' का संयोजन आदि पुराणपंथियों को अनुचित दुस्साहस लगता है, तो बाबा रामजीदास और तुलसी के आध्यात्मिक अनुभवों को श्रद्धा के साथ अंकित करना बहुतेरे नयों को नागवार और प्रगतिविरोधी प्रतीत होता है। नागर जी इन दोनों प्रकारों के प्रतिवादों से विचलित नहीं होते। अपनी इस प्रवृत्ति के कारण वे किसी एक साहित्यिक खाने में नहीं रखे जा सकते।

अमृतलाल नागर हिन्दी के गम्भीर कथाकारों में सर्वाधिक लोकप्रिय हैं। इसका अर्थ ही यह है कि वे विशिष्टता और रंजकता दोनों तत्त्वों को अपनी कृतियों में समेटने में समर्थ हुए हैं। उन्होंने न तो परम्परा को ही नकारा है, न आधुनिकता से मुँह मोड़ा है। उन्हें अपने समय की पुरानी और नयी दोनों पीढ़ियों का स्नेह समर्थन मिला और कभी-कभी दोनों का उपालंभ भी मिला है। आध्यात्मिकता पर गहरा विश्वास करते हुए भी वे समाजवादी हैं, किन्तु जैसे उनकी आध्यात्मिकता किसी सम्प्रदाय कठघरे में बन्दी नहीं है, वैसे ही उनका समाजवाद किसी राजनीतिक दल के पास बन्धक नहीं है। उनकी कल्पना के समाजवादी समाज में व्यक्ति और समाज दोनों का मुक्त स्वस्थ विकास समस्या को समझने और चित्रित करने के लिए उसे समाज के भीतर रखकर देखना ही नागर जी के अनुसार ठीक देखना है। इसीलिए बूँद (व्यक्ति) के साथ ही साथ वे समुद्र (समाज) को नहीं भूलते।

नागर जी की जगत् के प्रति दृष्टि न अतिरेकवादी है, न हठाग्रही। एकांगदर्शी न होने के कारण वे उसकी अच्छाइयों और बुराइयों, दोनों को देखते हैं। किन्तु बुराइयों से उठकर अच्छाइयों की ओर विफलता को भी वे मनुष्यत्व मानते हैं। जीवन की क्रूरता, कुरूपता, विफलता को भी वे अंकित करते चले हैं, किन्तु उसी को मानव नियति नहीं मानते। जिस प्रकार संकीर्ण आर्थिक स्वार्थों और मृत धार्मिकता के ठेकेदारों से वे अपने लेखन में जूझते रहे हैं, उसी प्रकार मूल्यों के विघटन, दिशाहीनता, अर्थहीनता आदि का नारा लगाकर निष्क्रियता और आत्महत्या तक का समर्थन करने वाली बौद्धिकता को भी नकारते रहे हैं। अपने लेखक-नायक अरविन्द शंकर के माध्यम से उन्होंने कहा है, जड़-चेतन, भय, विष-अमृत मय, अन्धकार-प्रकाशमय जीवन में न्याय के लिए कर्म करना ही गति है। मुझे जीना ही होगा, कर्म करना ही होगा, यह बन्धन ही मेरी मुक्ति भी है। इस अन्धकार में ही प्रकाश पाने के लिए मुझे जीना है। नागर जी आरोपित बुद्धि से काम नहीं करते, किसी दृष्टि या वाद को जस का तस नहीं लेते।

नागर जी किस्सागोई में माहिर हैं। यद्यपि गम्भीर उत्तरदायित्वों का निर्वाह करने के कारण कहीं-कहीं उनके उपन्यासों में बहसों के दौरान तात्विक विवेचन के लम्बे-लम्बे प्रंसग भी आ जाते हैं। तथापि वे अपनी कृतियों को उपदेशात्मक या उबाऊ नहीं बनने देते। रोचक कथाओं और ठोस चरित्रों की भूमिका से ही विचारों के आकाश की ओर भरी गयी इन उड़ानों को साधारण पाठक भी झेल लेते हैं। उनके साहित्य का लक्ष्य भी साधारण नागरिक है, अपने को असाधारण मानने वाला साहित्यकार या बुद्धिजीवी समीक्षक नहीं। समाज में खूब घुल-मिलकर अपने देखे-सुने और अनुभव किये चरित्रों, प्रसंगों को तनिक कल्पना के पुट से वे अपने कथा साहित्य में ढालते रहे हैं। अपनी आरम्भिक कहानियों में उन्होंने कहीं-कहीं स्वछन्दतावादी भावुकता की झलक दी है। किन्तु उनका जीवन बोध ज्यों-ज्यों बढ़ता गया त्यों-त्यों वे अपने भावातिरेक को संयत और कल्पना को यथार्थाश्रित करते चले गये। अपने पहले अप्रौढ़ उपन्यास महाकाल में सामाजिक यथार्थ के जिस स्वच्छ बोध का परिचय उन्होंने दिया था, निहित स्वार्थ के विविध रूपों को साम्राज्यवादी उत्पीड़न, जमींदारों, व्यापारियों द्वारा साधारण जनता के शोषण, साम्प्रदायिकतावादियों के हथकंडों आदि को बेनकाब करने का जो साहस दिखाया था, वह परवर्ती उपन्यासों में कलात्मक संयम के साथ-साथ उत्तरोत्तर निखरता चला गया।

'बूँद और समुद्र' तथा 'अमृत और विष' जैसे वर्तमान जीवन पर लिखित उपन्यासों में ही नहीं, 'एकदा नैमिषारण्ये' तथा 'मानस का हंस' जैसे पौराणिक-ऐतिहासिक पीठिका पर रचित सांस्कृतिक उपन्यासों में भी उत्पीड़कों का पर्दाफाश करने और उत्पीड़ितों का साथ देने का अपना व्रत उन्होंने बखूबी निभाया है। अतीत को वर्तमान से जोड़ने और प्रेरणा के स्रोत के रूप में प्रस्तुत करने के संकल्प के कारण ही 'एकदा नैमिषारण्ये' में पुराणकारों के कथा-सूत्र को भारत की एकात्मकता के लिए किये गये महान सांस्कृतिक प्रयास के रूप में, तथा 'मानस का हंस' में तुलसी की जीवन कथा को आसक्तियों और प्रलोभनों के संघातों के कारण डगमगा कर अडिग हो जाने वाली 'आस्था के संघर्ष की कथा' एवं उत्पीड़ित लोकजीवन को संजीवनी प्रदान करने वाली 'भक्तिधारा के प्रवाह की कथा' के रूप में प्रभावशाली ढंग से अंकित किया है। सामाजिक परिस्थितियों से जूझते हुए व्यक्ति के अंतर्मन में कामवृत्ति के घात प्रतिघात का चित्रण भी उन्होंने विश्वसनीय रूप से किया है। काम को इच्छाशक्ति गीत और सृजन के प्रेरक के रूप में ग्रहण करने के कारण वे उसे बहुत अधिक

महत्व देते हैं। काम अपने आधारों (व्यक्तियों) के सत, रज, तम के अंशों की न्यूनाधिकता के कारण सहस्रों रूप धारण कर सकता है। अपने निकृष्ट रूप में वह बलात्कार या इन्द्रिय भोग मात्र बनकर रह जाता है तो अपने उत्कृष्ट रूप में प्रेम की संज्ञा पाता है। नागर जी ने कुंठारहित होकर किन्तु उत्तरदायित्व के बोध के साथ काम कि विकृत (विरहेश और बड़ी, लच्छू और उमा माथुर, लवसूल और जुआना आदि), स्वरूप (सज्जन और वनकन्या, रमेश और रानीवाला आदि) और दिव्य (सोमाहुति और हज्या, तुलसी और रत्नावली) एवं इनके अनेकानेक मिश्रित रूपों की छवियाँ अपनी कृतियों में आँकी हैं। पीड़िता नारी के प्रति उनकी सदा सहानुभूति रही है, चाहे वह कन्नगी के सदृश्य एकनिष्ठ हो, चाहे माधवी के सदृश्य वेश्या। स्वार्थी पुरुष की भोग-वासना ही नारी को वेश्या बनाती है। अतः पुरुष होने के कारण उनके प्रति नागर जी अपने मन में अपराध बोध का अनुभव करते हैं। जिसका आंशिक परिमार्जन उन्होंने सद्भावना पूर्ण भेंटवार्ताओं पर आधारित ये कोठेवालियाँ जैसी तथ्यपूर्ण कृति के द्वारा किया है।

भाषा

भाषा के क्षेत्रीय प्रयोगों को विविध वर्गों में प्रयुक्त भिन्नताओं के साथ ज्यों का त्यों उतार देने में नागर जी को कमाल हासिल है। बोलचाल की सहज, चंचल भाषा गम्भीर दार्शनिक सामाजिक प्रसंगों की गुरुता एवं अंतरंग प्रणय प्रसंगों की कोमलता का निर्वाह करने के लिए किस प्रकार बदल जाती है, इसे देखते ही बनता है। सचमुच भाषा पर नागर जी का असाधारण अधिकार है। नागर जी शिल्प के प्रति उदासीन हैं। अपने पुराने शिल्प से आगे बढ़ने की चेष्टा बराबर करते रहे हैं। 'बूँद और समुद्र' में पौराणिक शिल्प के अभिनव प्रयोग के अनन्तर 'अमृत और विष' में अपने पात्रों की दुहरी सत्ताओं के आधार पर दो-दो कथाओं को साथ-साथ चलाना, 'मानस का हंस' में फ्लैश बैक के दृश्य रूप का व्यापक प्रयोग करना उनकी शिल्प सजगता के उदाहरण हैं। फिर भी यह सत्य है कि उनके लिए कथ्य ही मुख्य है शिल्प नहीं।

पुरस्कार

नागर जी को 'बूँद' और 'समुद्र' पर काशी नागरी प्रचारिणी सभा का बटुक प्रसाद पुरस्कार एवं सुधाकर रजत पदक, 'सुहाग के नूपुर' पर उत्तर प्रदेश शासन का 'प्रेमचन्द पुरस्कार', 'अमृत और विष' पर साहित्य अकादमी का 1967 का

पुरस्कार एवं सोवियत लैंड नेहरू पुरस्कार 1970 तथा साहित्यिक सेवाओं पर युगान्तर का 1972 का पुरस्कार प्रदान किया जा चुका है।

'अमृतलाल नागर के उपन्यासों की लेखन शैली

प्रेमचंदोत्तर हिंदी साहित्य को जिन साहित्यकारों ने अपनी रचनाओं से संवारा है, उनमें अमृतलाल नागर का नाम प्रमुखता से लिया जाता है। किस्सागोई के धनी अमृतलाल नागर ने कई विधाओं से साहित्य को समृद्ध किया।

अमृतलाल नागर ने कहानी और उपन्यास के अलावा नाटक, रेडियो नाटक, रिपोर्ताज, निबंध, संस्मरण, अनुवाद, बाल साहित्य आदि के क्षेत्र में भी महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। साहित्य जगत में उपन्यासकार के रूप में सर्वाधिक ख्याति प्राप्त इस साहित्यकार का हास्य-व्यंग्य भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं है।

अमृतलाल नागर का जन्म एक गुजराती परिवार में 17 अगस्त, 1916 ई. को गोकुलपुरा, आगरा, उत्तर प्रदेश में हुआ था। आगरा में इनकी ननिहाल थी। इनके पितामह पंडित शिवराम नागर 1895 में लखनऊ आकर बस गए थे। पिता पंडित राजाराम नागर की मृत्यु के समय नागर जी सिर्फ 19 वर्ष के थे।

पिता के असामयिक निधन के कारण जीवकोपार्जन का दबाव आन पड़ा और इस कारण अमृतलाल नागर की विधिवत शिक्षा हाईस्कूल तक ही हो पाठ। विद्या के धुनी नागरजी ने निरंतर स्वाध्याय जारी रखा और साहित्य, इतिहास, पुराण, पुरातत्त्व, समाजशास्त्र, मनोविज्ञान आदि विषयों पर और हिंदी, गुजराती, मराठी, बांग्ला एवं अंग्रेजी आदि भाषाओं पर अधिकार हासिल कर लिया।

रोजी-रोटी के लिए अमृतलाल नागर ने एक छोटी सी नौकरी की और कुछ समय तक मुक्त लेखन एवं 1940 से 1947 ई. तक कोल्हापुर में हास्यरस के प्रसिद्ध पत्र 'चकल्लस' का संपादन किया। इसके बाद वे बंबई एवं मद्रास के फिल्म क्षेत्र में लेखन करने लगे। दिसंबर, 1953 से मई, 1956 तक वे आकाशवाणी, लखनऊ में ड्रामा, प्रोड्यूसर, रहे और उसके कुछ समय बाद स्वतंत्र रूप लेखन करने लगे।

किस्सागोई में माहिर नागरजी के साहित्य का लक्ष्य साधारण नागरिक रहा। अपनी शुरुआती कहानियों में उन्होंने कहीं-कहीं स्वछंदतावादी भावुकता की झलक दी है।

'बूंद और समुद्र' तथा 'अमृत और विष' जैसे वर्तमान जीवन पर लिखित उपन्यासों में ही नहीं, 'एकदा नैमिषारण्ये' तथा 'मानस का हंस' जैसे

पौराणिक-ऐतिहासिक पीठिका पर रचित सांस्कृतिक उपन्यासों में भी उन्होंने उत्पीड़कों का पर्दाफाश करने और उत्पीड़ितों का साथ देने का अपना व्रत बखूबी निभाया है। नागर जी की जिंदादिली और विनोदी वृत्ति उनकी कृतियों को कभी विषादपूर्ण नहीं बनने देती। 'नवाबी मसनद' और 'सेठ बांकेमल' में हास्य व्यंग्य की जो धारा प्रवाहित हुई है, वह अनंत धारा के रूप में उनके गंभीर उपन्यासों में भी विद्यमान है और विभिन्न चरित्रों एवं स्थितियों में बीच-बीच में प्रकट होकर पाठक को उल्लासित करती रहती है।

नागर जी के चरित्र समाज के विभिन्न वर्गों से गृहीत हैं। उनमें अच्छे बुरे सभी प्रकार के लोग हैं, किन्तु उनके चरित्र-चित्रण में मनोविश्लेषणात्मकता को कम और घटनाओं के मध्य उनके व्यवहार को अधिक महत्त्व दिया गया है।

8

गौरा पंत 'शिवानी'

गौरा पंत 'शिवानी' (जन्म–17 अक्टूबर, 1923, मृत्यु–21 मार्च, 2003) हिन्दी की सुप्रसिद्ध उपन्यासकार थीं। हिंदी साहित्य जगत में शिवानी एक ऐसी शख्सियत रहीं, जिनकी हिंदी, संस्कृत, गुजराती, बंगाली, उर्दू तथा अंग्रेजी पर अच्छी पकड़ थी और जो अपनी कृतियों में उत्तर भारत के कुमायूँ क्षेत्र के आस-पास की लोक संस्कृति की झलक दिखलाने और किरदारों के बेमिसाल चरित्र चित्रण करने के लिए जानी गई। महज 12 वर्ष की उम्र में पहली कहानी प्रकाशित होने से लेकर उनके निधन तक उनका लेखन निरंतर जारी रहा। उनकी अधिकतर कहानियाँ और उपन्यास नारी प्रधान रहे। इसमें उन्होंने नायिका के सौंदर्य और उसके चरित्र का वर्णन बड़े दिलचस्प अंदाज में किया।

शिवानी हिन्दी की एक प्रसिद्ध उपन्यासकार थीं। इनका वास्तविक नाम गौरा पन्त था किन्तु ये शिवानी नाम से लेखन करती थीं। इनका जन्म 17 अक्टूबर 1923 को विजयदशमी के दिन राजकोट, गुजरात में हुआ था। इनकी शिक्षा शन्तिनिकेतन में हुई। साठ और सत्तर के दशक में, इनकी लिखी कहानियां और उपन्यास हिन्दी पाठकों के बीच अत्यधिक लोकप्रिय हुए और आज भी लोग उन्हें बहुत चाव से पढ़ते हैं। शिवानी का निधन 2003 ई. में हुआ। उनकी लिखी कृतियों में कृष्णकली, भैरवी,आमादेर शन्तिनिकेतन, विषकन्या चौदह फेरे आदि प्रमुख हैं।

हिंदी साहित्य जगत में शिवानी एक ऐसी शिख्सयत रहीं जिनकी हिंदी, संस्कृत, गुजराती, बंगाली, उर्दू तथा अंग्रेजी पर अच्छी पकड रही और जो अपनी कृतियों में उत्तर भारत के कुमाऊँ क्षेत्र के आसपास की लोक संस्कृति की झलक दिखलाने और किरदारों के बेमिसाल चरित्र चित्रण करने के लिए जानी गई। महज 12 वर्ष की उम्र में पहली कहानी प्रकाशित होने से लेकर 21 मार्च 2003 को उनके निधन तक उनका लेखन निरंतर जारी रहा। उनकी अधिकतर कहानियां और उपन्यास नारी प्रधान रहे। इसमें उन्होंने नायिका के सौंदर्य और उसके चरित्र का वर्णन बड़े दिलचस्प अंदाज में किया

कहानी के क्षेत्र में पाठकों और लेखकों की रुचि निर्मित करने तथा कहानी को केंद्रीय विधा के रूप में विकसित करने का श्रेय शिवानी को जाता है। वह कुछ इस तरह लिखती थीं कि लोगों की उसे पढ़ने को लेकर जिज्ञासा पैदा होती थी। उनकी भाषा शैली कुछ-कुछ महादेवी वर्मा जैसी रही पर उनके लेखन में एक लोकप्रिय किस्म का मसविदा था।

उनकी कृतियों से यह झलकता है कि उन्होंने अपने समय के यथार्थ को बदलने की कोशिश नहीं की। शिवानी की कृतियों में चरित्र चित्रण में एक तरह का आवेग दिखाई देता है। वह चरित्र को शब्दों में कुछ इस तरह पिरोकर पेश करती थीं जैसे पाठकों की आँखों के सामने राजारवि वर्मा का कोई खूबसूरत चित्र तैर जाए। उन्होंने संस्कृतनिष्ठ हिंदी का इस्तेमाल किया। जब शिवानी का उपन्यास कृष्णकली धर्मयुग, में प्रकाशित हो रहा था तो हर जगह इसकी चर्चा होती थी। मैंने उनके जैसी भाषा शैली और किसी की लेखनी में नहीं देखी। उनके उपन्यास ऐसे हैं जिन्हें पढ़कर यह एहसास होता था कि वे खत्म ही न हों। उपन्यास का कोई भी अंश उसकी कहानी में पूरी तरह डुबो देता था।

भारतवर्ष के हिंदी साहित्य के इतिहास का बहुत प्यारा पन्ना थीं। अपने समकालीन साहित्यकारों की तुलना में वह काफी सहज और सादगी से भरी थीं। उनका साहित्य के क्षेत्र में योगदान बड़ा है

जीवन परिचय

शिवानी आधुनिक अग्रगामी विचारों की समर्थक थीं। शिवानी का जन्म 17 अक्टूबर, 1923 को विजयादशमी के दिन गुजरात के पास राजकोट शहर में हुआ था। शिवानी के पिता श्री अश्विनीकुमार पाण्डे राजकोट में स्थित राजकुमार कॉलेज के प्रिंसिपल थे, जो कालांतर में माणबदर और रामपुर की रियासतों में

दीवान भी रहे। शिवानी के माता और पिता दोनों ही विद्वान संगीत प्रेमी और कई भाषाओं के ज्ञाता थे। शिवानी ने पश्चिम बंगाल के शांति निकेतन से बी.ए. किया। साहित्य और संगीत के प्रति एक गहरा रुझान 'शिवानी' को अपने माता और पिता से ही मिला। शिवानी के पितामह संस्कृत के प्रकांड विद्वान पंडित हरिराम पाण्डे, जो बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय में धर्मोपदेशक थे, वह परम्परानिष्ठ और कट्टर सनातनी थे।

महामना मदनमोहन मालवीय से उनकी गहरी मित्रता थी। वे प्राय: अल्मोड़ा तथा बनारस में रहते थे, अत: शिवानी का बचपन अपनी बड़ी बहन तथा भाई के साथ दादाजी की छत्रछाया में उक्त स्थानों पर बीता। शिवानी की किशोरावस्था शान्तिनिकेतन में और युवावस्था अपने शिक्षाविद् पति के साथ उत्तर प्रदेश के विभिन्न भागों में बीती। शिवानी के पति के असामयिक निधन के बाद वे लम्बे समय तक लखनऊ में रहीं और अन्तिम समय में दिल्ली में अपनी बेटियों तथा अमेरिका में बसे पुत्र के परिवार के साथ रहीं।

कार्यक्षेत्र

शिवानी का कार्यक्षेत्र मूलरूप से कुमाऊँ क्षेत्र की निवासी के रूप में बीता। शिवानी की शिक्षा शांति निकेतन में और जीवन का अधिकांश समय शिवानी ने लखनऊ में बिताया। शिवानी की माँ गुजरात की विदुषी, पिता अंग्रेजी के लेखक थे। पहाड़ी पृष्ठभूमि और गुरुदेव की शरण में शिक्षा ने शिवानी की भाषा और लेखन को बहुयामी बनाया। बांग्ला साहित्य और संस्कृति का शिवानी पर गहरा प्रभाव पड़ा।

लेखन की शुरुआत

शिवानी के लेखन तथा व्यक्तित्त्व में उदारवादिता और परम्परानिष्ठता का जो अद्‌भुत मेल है, उसकी जड़ें, इसी विविधतापूर्ण जीवन में थीं। शिवानी की पहली रचना अल्मोड़ा से निकलने वाली 'नटखट' नामक एक बाल पत्रिका में छपी थी। तब वे मात्र बारह वर्ष की थीं। इसके बाद वे मालवीय जी की सलाह पर पढ़ने के लिए अपनी बड़ी बहन जयंती तथा भाई त्रिभुवन के साथ शान्तिनिकेतन भेजी गई, जहाँ स्कूल तथा कॉलेज की पत्रिकाओं में बांग्ला में उनकी रचनाएँ नियमित रूप से छपती रहीं। गुरुदेव रवीन्द्रनाथ टैगोर शिवानी को 'गोरा' पुकारते थे।

रवीन्द्रनाथ टैगोर की सलाह को कि हर लेखक को मातृभाषा में ही लेखन करना चाहिए, शिरोधार्य कर शिवानी ने हिन्दी में लिखना प्रारम्भ किया। 'शिवानी' की एक लघु रचना 'मैं मुर्गा हूँ' 1951 में 'धर्मयुग' में छपी थी। इसके बाद आई उनकी कहानी 'लाल हवेली' और तब से जो लेखन-क्रम शुरू हुआ, उनके जीवन के अन्तिम दिनों तक चलता रहा। उनकी अन्तिम दो रचनाएँ 'सुनहुँ तात यह अकथ कहानी' तथा 'सोने दे' उनके विलक्षण जीवन पर आधारित आत्मवृत्तात्मक आख्यान हैं।

प्रमुख रचनाएँ

उपन्यास, कहानी, व्यक्तिचित्र, बाल उपन्यास और संस्मरणों के अतिरिक्त, लखनऊ से निकलने वाले पत्र 'स्वतन्त्र भारत' के लिए 'शिवानी' ने वर्षों तक एक चर्चित स्तम्भ 'वातायन' भी लिखा। उनके लखनऊ स्थित आवास-66, गुलिस्ताँ कालोनी के द्वार, लेखकों, कलाकारों, साहित्य-प्रेमियों के साथ समाज के हर वर्ग जुड़े उनके पाठकों के लिए सदैव खुले रहे। शिवानी की 'आमादेर शांति निकेतन' और 'स्मृति कलश' इस पृष्ठभूमि पर लिखी गई श्रेष्ठ पुस्तकें हैं। 'कृष्णकली' उनका सबसे प्रसिद्ध उपन्यास है। इसके दस से भी अधिक संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं। उपन्यास, कहानी, व्यक्तिचित्र, बाल उपन्यास और संस्मरणों के अतिरिक्त, लखनऊ से निकलने वाले पत्र 'स्वतन्त्र भारत' के लिए 'शिवानी' ने वर्षों तक एक चर्चित स्तम्भ 'वातायन' भी लिखा।

शिवानी की रचनाएँ

उपन्यास

कृष्णकली
कालिंदी
अतिथि
पूतों वाली
चल खुसरों घर आपने
श्मशान चंपा
मायापुरी
कैंजा

गेंदा
भैरवी
स्वयंसिद्धा
विषकन्या
रति विलाप
आकाश
यात्रा विवरण
चरैवैति
यात्रिक

कहानी संग्रह

शिवानी की श्रेष्ठ कहानियाँ
शिवानी की मशहूर कहानियाँ
झरोखा, मृण्माला की हँसी

संस्मरण

अमादेर शांति निकेतन
स्मृति कलश
वातायन
जालक
धारावाहिक
'सुरंगमा'
'रतिविलाप',
'मेरा बेटा'
'तीसरा बेटा'
आत्मकथ्य
सुनहुँ तात यह अमर कहानी

समाकालीन साहित्यकारों की राय

वरिष्ठ रचनाकार ममता कालिया के अनुसार हिंदी साहित्य की मुख्यधारा में उनका योगदान कितना रहा, यह कहना मुश्किल है पर यह जरूर है कि

कहानी के क्षेत्र में पाठकों और लेखकों की रुचि निर्मित करने तथा कहानी को केंद्रीय विधा के रूप में विकसित करने का श्रेय शिवानी को जाता है। उन्होंने कहा कि वह कुछ इस तरह लिखती थीं कि लोगों की उसे पढ़ने को लेकर जिज्ञासा पैदा होती थी। उनकी भाषा शैली कुछ-कुछ महादेवी वर्मा जैसी रही पर उनके लेखन में एक लोकप्रिय किस्म का मसविदा था। उनकी कृतियों से यह झलकता है कि उन्होंने अपने समय के यथार्थ को बदलने की कोशिश नहीं की। ममता कालिया कहती हैं, शिवानी की कृतियों में चरित्र चित्रण में एक तरह का आवेग दिखाई देता है। वह चरित्र को शब्दों में कुछ इस तरह पिरोकर पेश करती थीं जैसे पाठकों की आँखों के सामने राजा रवि वर्मा का कोई खूबसूरत चित्र तैर जाए। उन्होंने संस्कृतनिष्ठ हिंदी का इस्तेमाल किया पर कहानी की विधा में ही रहने के चलते वह हिंदी के विचार जगत में एक नया पथ-प्रदर्शन नहीं कर पाई। शिवानी की करीबी रहीं वरिष्ठ साहित्यकार पद्मा सचदेव के अनुसार जब शिवानी का उपन्यास 'कृष्णकली' धर्मयुग में प्रकाशित हो रहा था तो हर जगह इसकी चर्चा होती थी। मैंने उनके जैसी भाषा शैली और किसी की लेखनी में नहीं देखी। उनके उपन्यास ऐसे हैं जिन्हें पढ़कर यह एहसास होता था कि वे खत्म ही न हों। उपन्यास का कोई भी अंश उसकी कहानी में पूरी तरह डुबो देता था। उन्होंने कहा, शिवानी भारतवर्ष के हिंदी साहित्य के इतिहास का बहुत प्यारा पन्ना थीं। अपने समकालीन साहित्यकारों की तुलना में वह काफी सहज और सादगी से भरी थीं। उनका साहित्य के क्षेत्र में योगदान बड़ा है पर फिर भी हिंदी जगत ने उन्हें पूरा सम्मान नहीं दिया जिसकी वह हकदार रहीं। शिवानी के आखिरी दिनों में भी उनके संपर्क में रहीं पद्मा सचदेव ने कहा कि उन्हें गायन का काफी शौक था। उन्हें आखिर तक कुमाऊँ से बेहद प्यार रहा। उन्हें वहीं के नजारे याद आते थे।

पुरस्कार

1982 में शिवानी जी को भारत सरकार द्वारा पद्मश्री से अलंकृत किया गया।

मृत्यु

शिवानी का 21 मार्च, 2003 को दिल्ली में 79 वर्ष की आयु में निधन हुआ।

मूल्यांकन

बहुत से लेखकों की रचनाओं को पढ़ते समय अपने मन-मस्तिष्क पर जोर देना पड़ता है, पर 'शिवानी' के नाम से प्रसिद्ध गौरा पंत का लेखन सहज और स्वाभाविक रूप से पाठकों के हृदय में उतरता चला जाता था। पाठक को लगता था कि वह अपने मन की बात अपनी ही भाषा में पढ़ रहा है।

शिवानी का परिवार यों तो मूलतः अल्मोड़ा (उत्तराखंड) का निवासी था, पर उनके पिता श्री अश्विनी कुमार पांडे राजकोट (गुजरात) के प्रसिद्ध 'प्रिंसेज कॉलिज' के प्रधानाचार्य थे। वे अंग्रेजी के सिद्धहस्त लेखक भी थे। उनकी गुजराती पत्नी लीलावती भी विद्वान और गीत-संगीत की प्रेमी थीं। राजकोट में ही 17 अक्टूबर, 1923 (विजयादशमी) को गौरा का जन्म हुआ। अश्विनी कुमार जी आगे चलकर माणबदर और रामपुर रियासतों के दीवान भी रहे।

गौरा के दादा श्री हरिराम पांडे संस्कृत के प्रख्यात विद्वान थे। वे काशी हिन्दू वि0वि0 में धर्मोपेदशक थे। मालवीय जी से उनकी बहुत घनिष्ठता थी। गौरा का बचपन अपनी बड़ी बहन के साथ दादा जी की छत्रछाया में अल्मोड़ा की सुरम्य पहाड़ियों और बनारस में गंगा की धारा के साथ खेलते हुए बीता।

गौरा में लेखन की प्रतिभा बचपन से ही थी। 12 वर्ष की अवस्था में उनकी पहली रचना अल्मोड़ा से छपने वाली बाल पत्रिका 'नटखट' में छपी। कुछ समय बाद मालवीय जी के परामर्श पर गौरा, उसकी दीदी जयंती और भाई त्रिभुवन को पढ़ने के लिए 'शांति निकेतन' भेज दिया गया। वहाँ उन्होंने प्रथम श्रेणी में स्नातक की परीक्षा उत्तीर्ण की। इसके साथ ही गुरुदेव रवीन्द्रनाथ टैगोर के सान्निध्य में उनकी लेखन कला को सुघढ़ता एवं नये आयाम मिले।

कई स्थानों पर रहने से उन्हें हिन्दी, अंग्रेजी, गुजराती, उर्दू तथा बांग्ला का अच्छा ज्ञान हो गया। शांतिनिकेतन में उन्होंने अपने विद्यालय की पत्रिका के लिए बांग्ला में कई रचनाएं लिखीं। वहाँ रहने से उनके मन पर बांग्ला साहित्य और संस्कृति का काफी प्रभाव पड़ा, जो उनके लेखन में सर्वत्र दिखाई देता है।

एक बार रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने कहा कि सहज लेखन के लिए व्यक्ति को अपनी मातृभाषा में ही लिखना चाहिए। इस पर गौरा ने 'शिवानी' उपनाम रखकर स्थायी रूप से हिन्दी को ही अपने लेखन का माध्यम बना लिया। उनके लेखन में जहाँ एक ओर नारी जीवन को प्रधानता दी गयी है, वहाँ अल्मोड़ा के सुंदर पहाड़, स्थानीय परम्पराएं और कठिनाइयां भी बार-बार प्रकट होती हैं।

विवाह के बाद उनका अधिकांश समय उत्तर प्रदेश की शासकीय सेवा में कार्यरत अपने शिक्षाविद पति के साथ विभिन्न स्थानों पर बीता। पति के असमय निधन के बाद उन्होंने लखनऊ को स्थायी निवास बना लिया। अब वे बच्चों की देखरेख के साथ ही लेखन की ओर अधिक ध्यान देने लगीं।

शिवानी ने मुख्यत: उपन्यास, कहानी और संस्मरणों के रूप में साहित्य सृजन किया। साठ और सत्तर के दशक में मुंबई से निकलने वाली साप्ताहिक पत्रिका 'धर्मयुग' का बहुत बड़ा नाम था। इसमें उनके कई उपन्यास धारावाहिक रूप से प्रकाशित हुए। इससे शिवानी का नाम घर-घर में पहचाना जाने लगा।

'कृष्णकली' उनका सर्वाधिक लोकप्रिय उपन्यास है। इसके अतिरिक्त 12 उपन्यास, चार कहानी संग्रह, चार संस्मरण, अनेक व्यक्ति चित्र तथा बाल उपन्यास भी उन्होंने लिखे। लखनऊ के दैनिक स्वतंत्र भारत में वे 'वातायन' नामक स्तम्भ लिखती थीं। 'सुनहु तात यह अकथ कहानी' तथा 'सोने दे' शीर्षक से अपना आत्मवृत्त लिखकर उन्होंने लेखन को विराम दे दिया।

❐❐❐